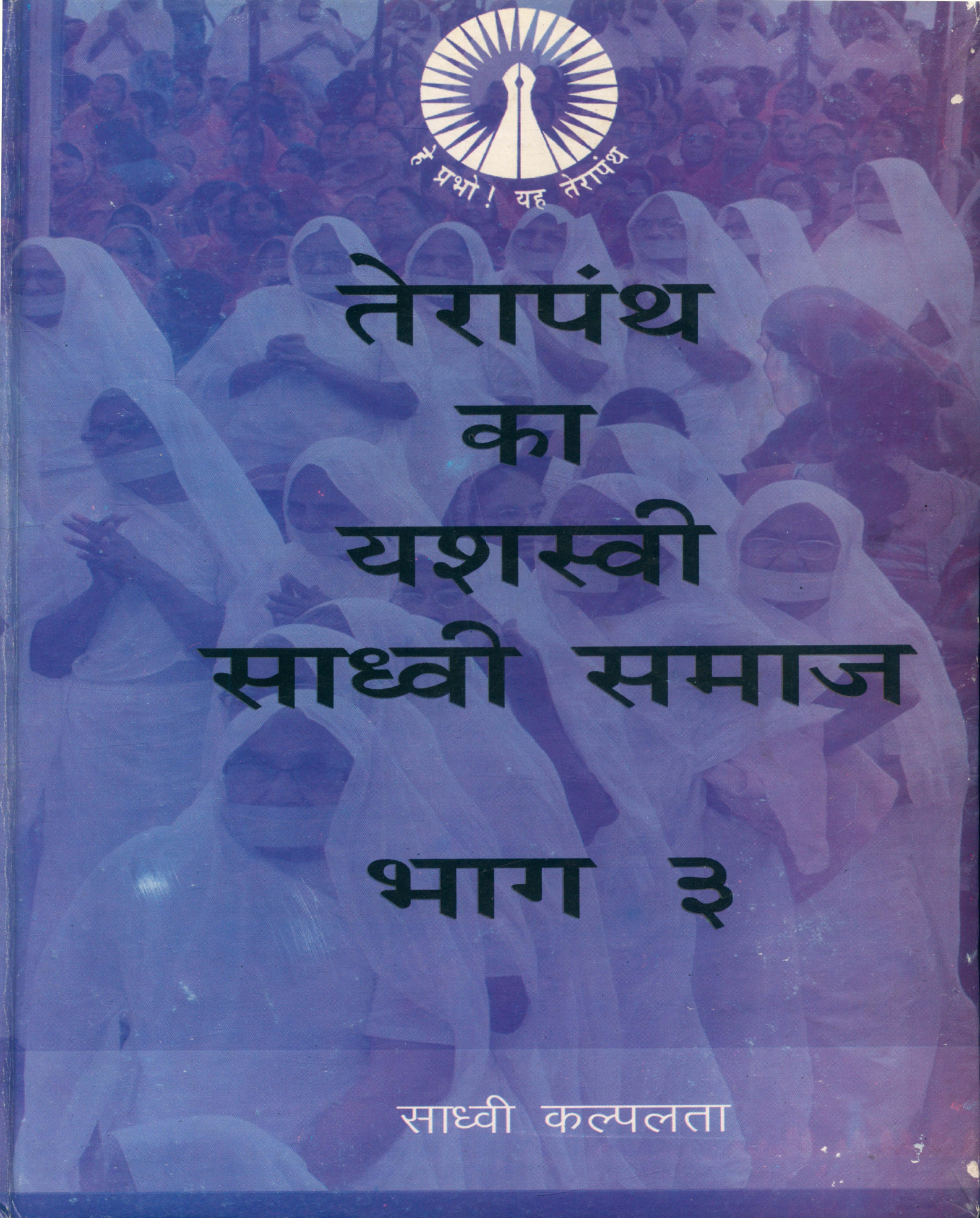

तेरापंथ का यशस्वी साध्वी समाज

भाग ३

साध्वी कल्पलता

तेरापंथ का यशस्वी साध्वी-समाज

भाग-3

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

तेरापंथ का यशस्वी साध्वी-समाज

भाग-3

साध्वी कल्पलता

© आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

तेरापंथ का यशस्वी साध्वी-समाज

लेखक : साध्वी कल्पलता

प्रकाशक : आदर्श साहित्य संघ
210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली-110 002

प्रथम संस्करण : सन 2011

मूल्य : एक सौ पचास रुपये

प्रकाशन सहयोग : श्री भरतकुमार बाबूलाल राठौड़ चारभुजा (राज.) व गोरेगांव मुम्बई

मुद्रक : पवन प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

TERAPANTH KA YASHASVI SADHVI-SAMAJ by Sadhvi Kalplata **Rs. 150.00**

सन्देश

18 जून 2011

अर्हम्

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ का इतिहास बहुत सुरक्षित है। इसको पढ़ने से ज्ञात होता है कि इस संघ की साध्वियों का पराक्रम भी गरिमापूर्ण रहा है। परम पूज्य गुरुदेव आचार्य महाप्रज्ञ जी के समय यह निर्णय हुआ कि साध्वियों का इतिहास भी व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया जाए। साध्वी कल्पलताजी को यह दायित्व सौंपा गया।

साध्वी कल्पलता जी एक विदुषी और श्रमशील साध्वी हैं। उन्हें धर्मसंघ की सेवा का अवसर भी लम्बे काल से मिल रहा है। उनके परिश्रम से निष्पन्न 'तेरापंथ का यशस्वी साध्वी समाज' ग्रन्थ सामने आ रहा है। इनके माध्यम से पाठकवर्ग तेरापंथ के साध्वी समाज की यशोगाथाओं से परिचित हो सकेगा। शुभाशंसा।

आत्मा

आचार्य महाश्रमण

पुरोवाक्

पुस्तक लेखक के समय का आईना होती है, यह बात विचारप्रधान पुस्तक पर घटित हो सकती है। किन्तु इतिहास इसका अपवाद है। इतिहास में मुख्यतः अतीत का आकलन होता है और उसके साथ वर्तमान का भी प्रतिबिम्ब रहता है। विचारप्रधान पुस्तकों में लेखक के अपने विचारों के साथ सम सामयिक विचारों का भी प्रभाव रहता है। पर यह आवश्यक नहीं है कि उन विचारों के साथ पाठक की सहमति हो। क्योंकि विचार सागर की सतह पर हवा के थपेड़ों से उत्पन्न हुई लहरों के समान हैं। उनमें कहीं संगति हो भी सकती है और नहीं भी। किन्तु इतिहास प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर लिखा गया ऐसा दस्तावेज है, जो अतीत को परत–दर–परत खोलकर रख सकता है।

इतिहास के अन्तर्गत अनेक विषयों का समावेश हो सकता है। एक ओर व्यक्ति से लेकर सम्पूर्ण विश्व तक उसकी परिधि में सिमटे हुए हैं तो दूसरी ओर धर्म, दर्शन, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता आदि भाव और विचारप्रधान विषयों पर भी इतिहास का आलेखन किया जा सकता है। भारतीय इतिहासकारों ने धर्म, दर्शन आदि का सुव्यवस्थित इतिहास कम लिखा है, फिर भी यहां का इतिहासप्रधान साहित्य काफी समृद्ध है। उस साहित्य में धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक शिखर पुरुषों के साथ उन व्यक्तित्वों पर भी कलम चलाई गई है, जिन्होंने सामान्य भूमिका में रहते हुए भी कुछ विशिष्ट काम कर अपनी पहचान बना ली।

<u>तेरापंथ धर्मसंघ में इतिहास का लेखन</u>

हिन्दुस्तान की धार्मिक परम्पराओं में जैनधर्म का अपना इतिहास है। जैन इतिहास में तेरापंथ धर्मसंघ का इतिहास बहुत ही प्रेरक और चामत्कारिक है। इस इतिहास में संगठन की रीति–नीति के साथ इसके संचालक आचार्यों का व्यक्तित्व, कर्तृत्व एवं वर्चस्व भी समुचित रूप से उजागर हुआ है। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि तेरापंथ धर्मसंघ में दीक्षित खास और आम प्रत्येक सदस्य इतिहास के पृष्ठों पर अंकित हैं। मुनि नवरत्नमलजी (मोमासर) द्वारा लिखित 'शासन समुद्र' ग्रथावली (खण्ड पचीस) में आचार्य भिक्षु के युग से लेकर आचार्य तुलसी युग तक नौ आचार्यों के सभी साधु–साध्वियों का संक्षिप्त या विस्तृत विवरण संकलित है। तेरापंथ के आचार्यों के जीवनवृत्त गद्यात्मक और पद्यात्मक दोनों शैलियों में उपलब्ध हैं। इतिहास के रूप में उनका आलेखन शासन गौरव मुनिश्री बुद्धमलजी ने किया है। आख्यान या काव्यशैली में तेरापंथ के आचार्यों ने प्रशासनिक कार्यों की व्यस्तता के बावजूद पूर्ववर्ती आचार्यों के जीवनवृत्त लिखकर अपने दायित्व का पूरी जागरूकता से निर्वाह

किया है। अब तक लिखित और मुद्रित आख्यान/काव्य इस प्रकार हैं –

आख्यान	रचनाकार
भिक्खुजस रसायण	आचार्य जीतमलजी (जयाचार्य)
भारीमाल चरित्र	आचार्य रायचन्दजी
ऋषिराय चरित्र	आचार्य जीतमलजी (जयाचार्य)
जय–सुजश	आचार्य मघराजजी
मघवा–सुजश	आचार्य माणकलालजी
माणक–महिमा	आचार्य तुलसी
डालिम–चरित्र	आचार्य तुलसी
कालूयशोविलास	आचार्य तुलसी
तुलसीयशोविलास (अपूर्ण)	आचार्य महाप्रज्ञ

शोध का नया विषय

मुनि बुद्धमलजी द्वारा लिखित आठ आचार्यों के जीवनवृत्त तेरापंथ का इतिहास भाग 1 और भाग 2 में प्रकाशित हैं। आचार्य तुलसी का जीवनवृत्त उनके द्वारा लिखा हुआ है, पर वह अपूर्ण है। साध्वी कनकश्रीजी (लाडनूं) उस कार्य को आगे बढ़ा रही हैं। तेरापंथ के विशिष्ट साधुओं, श्रावकों और श्राविकाओं के मुनि बुद्धमलजी ने काफी लिखा है, पर साध्वियों के बारे में बहुत कम लिखा है। जैन परम्परा के समग्र इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि साध्वियां और श्राविकाएं इतिहास की उपेक्षित पात्र रही हैं। इसका कारण क्या हो सकता है? यह तो शोध का विषय है। शोधकर्ता तटस्थभाव से शोध करें तो संभव है, कुछ मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारण उजागर हो सकें।

तेरापंथ में चतुर्थ तीर्थ की सिद्धश्री

तेरापंथ धर्मसंघ में साध्वी समाज का इतिहास बहुत गौरवमय रहा है। इस इतिहास का एक महत्वपूर्ण घटक यह है कि तेरापंथ में गृहस्थ जीवन से दीक्षा की शुरुआत साध्वियों के द्वारा की गई। तेरापंथ की स्थापना विक्रम संवत 1817, आषाढ पूर्णिमा के दिन हुई। लगभग चार वर्षों तक साध्वियां तो थीं ही नहीं, साधु भी अन्य सम्प्रदाय से आकर दीक्षित होने वाले थे। बहनों की दीक्षा से पहले एक भी भाई दीक्षित नहीं हुआ। वि. सं. 1821 में स्थानकवासी समाज की तीन बहनें दीक्षा की प्रार्थना लेकर आई। आचार्य भिक्षु ने उनको कसौटियों पर कसा। उस परीक्षण में वे सफल रहीं। उसके बाद ही उनको धर्मसंघ में प्रवेश मिला तेरापंथ के चतुर्थ तीर्थ की

आधारशिला रखने वाली वे भाग्यशालिनी साध्वियां थीं – साध्वी कुशालांजी, साध्वी मट्टूजी और साध्वी अजबूजी। साध्वीत्रय का संघ में आगमन इतना मंगलमय रहा कि आचार्य भिक्षु के युग में ही साध्वियों की संख्या साधुओं से अधिक हो गई। संख्या का यह ग्राफ उत्तरोत्तर वर्धमान होता गया। आचार्य तुलसी के युग में पहुँचते–पहुँचते साध्वियों की संख्या पांच सौ से अधिक हो गई। समण श्रेणी को साथ में जोड़ा जाए तो यह संख्या छह सौ से ऊपर है। तेरापंथ धर्मसंघ में अब तक सतरह सौ इकसठ (1761) साध्वियां दीक्षित हो चुकी हैं।

आचार्य भिक्षु का दृष्टिकोण

आचार्य भिक्षु परम आत्मार्थी महापुरुष थे। पदप्रतिष्ठा की भूख उन्हें छू भी नहीं पाई थी। यदि उसका थोड़ा भी प्रभाव होता तो वे आचार्यश्री रघुनाथजी महाराज के संभावित उत्तराधिकार को छोड़कर अभिनिष्क्रमण की कल्पना ही नहीं कर पाते। अभिनिष्क्रान्त होने के बाद भी उन्होंने नया संघ स्थापित करने का कोई सपना नहीं देखा। यह तो तेरापंथ की नियति थी कि अनायास ही जोधपुर में नामकरण हो गया और भिक्षु स्वामी के मेधा ने उसको गंभीर अर्थ देकर स्वीकार कर लिया। नए संघ की स्थापना के बाद भी उनके मन में शिष्य–वृद्धि की आकांक्षा नहीं जनमी। उन्होंने संख्याबल की अपेक्षा गुणवत्ता पर अपना ध्यान केन्द्रित किया, साधु–साध्वियों द्वारा अपने–अपने शिष्य–शिष्या बनाने की प्रथा का मूलोच्छेद किया और स्पष्ट निर्देश दिया कि 'जिण–जिण ने मत मूंडज्यो दीक्षा दीज्यो देख–देख' पूरी जांच–पड़ताल के बाद ही दीक्षा देना। जिस–तिस को दीक्षित करने की भूल मत करना।

आचार्य भिक्षु द्वारा निर्धारित कसौटियों पर कसने और पूरा परीक्षण करने के बाद भी संघ में कुछ ऐसी साध्वियों का प्रवेश हो गया, जिनकी अर्हता प्रमाणित न होने के कारण उन्हें संघ से मुक्त किया गया या किन्हीं कारणों से वे स्वयं मुक्त हो गई। पर संघ में साधनारत सभी साध्वियों की साधना, शिक्षा, सेवा और चित्तसमाधि के लिए आचार्य निरन्तर जागरूक रहते हैं। प्रकृति की परवशता और असातवेदनीय का उदय, मुख्यतः ये दो निमित्त न हो तो साधु जीवन में प्राप्त होने वाली समाधि या आनन्द को अनिर्वचनीय माना जा सकता है।

इतिहास लेखन के मानक धर्मसंघ में दीक्षित प्रायः सभी साध्वियों का जीवन भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरक बन सकता है। उनका संक्षिप्त विवरण उपलब्ध भी है। किन्तु सलक्ष्य सामग्री–संकलन के अभाव में बहुत महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय घटना–प्रसंग समय के प्रवाह में बह गए। पूज्यवरों का इस दिशा में काम करने का निर्देश/संकेत पाकर साध्वी कल्पलताजी की लेखन–चेतना परिस्पन्दित हुई। उन्होंने

तेरापंथ धर्मसंघ की कतिपय विशिष्ट साध्वियों के जीवन को कलमबद्ध करने का संकल्प किया, योजना बनाई और कार्य प्रारंभ कर दिया। वैसे तो प्रत्येक साध्वी का जीवन अपने आप में विशिष्ट होता है, पर जहां कुछ का चयन किया जाता है, उसके मानक निर्धारित करने होते हैं। प्रमुख रूप से संघनिष्ठा, आज्ञानिष्ठा, संघविस्तार, आगम–स्वाध्याय, तपस्या, कष्ट सहिष्णुता, श्रद्धा, समर्पण आदि मानकों को आधार बनाकर साध्वियों के प्रेरक, रोचक और रोमांचक जीवन प्रसंगो का आलेखन किया गया है।

सन्दर्भ प्रस्तुत ग्रन्थावली का

साध्वी कल्पलताजी द्वारा लिखित 'तेरापंथ का यशस्वी साध्वी समाज' तेरापंथ के इतिहास की शृंखला में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है और साध्वी समाज के इतिहास को विशद रूप में प्रस्तुत करने का एक सार्थक प्रयास है। उन्होंने विभिन्न स्रोतों से मौखिक और लिखित रूप में प्राप्त सामग्री को समुचित तरीके से समायोजित करने में अपने समय एवं बुद्धिकौशल को नियोजित किया है। इतिहास–रसिक पाठकों के लिए यह उपक्रम उपयोगी बनेगा और उनकी स्वाध्यायशीलता को बढ़ाएगा, ऐसी आशा है। प्रथम बार में प्रस्तुत ग्रन्थ के तीन खण्ड पाठकों को उपलब्ध हो सकेंगे। पाठकों के अनुभव, सुझाव और प्रतिक्रियाएं लेखिका के सृजन को अधिक परिष्कृत बना सकेंगी, यह भी ध्यातव्य है। साध्वी कल्पलताजी की इस सृजनयात्रा में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रकाशस्तम्य बनने वाले और पाथेय प्रदान करने वाले परमपूज्य गुरुवर आचार्य तुलसी, आचार्य महाप्रज्ञ और आचार्य महाश्रमण का आशीर्वाद और कृपाभाव इस यात्रा को आगे बढ़ाने के लिए उनमें निरन्तर ऊर्जा संप्रेषित करता रहेगा, यह विश्वास उनके लिए सबसे बड़ा आश्वासन है।

लाम्बोड़ी (मेवाड़) — साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

2 जुलाई 2011

स्वकथ्य

आचार्य भिक्षु विचार क्रान्ति के पुरोधा थे, आत्मदर्शी साधक थे। वे सत्य के प्रति जितने समर्पित थे, असत्य के प्रति उतने ही अधिक बागी थे। लक्ष्य पाने के लिए वे मेरु से अडोल और सहिष्णु थे तो लक्ष्य से भटकाने वाले सिद्धात और व्यवहार के प्रति वे उतने ही असहिष्णु थे। सामुदायिक चेतना के प्रति अत्यधिक जागरूक थे तो व्यक्तिवादी मनोवृत्ति को पनपने के लिए एक इंच जमीन देने के लिए तैयार नहीं थे। उस समय उनके सामने कोई प्रिय–अप्रिय व्यक्ति नहीं होता मात्र सिद्धान्त, मान्यता और परम्परा की स्थापना का विशुद्ध दृष्टिकोण होता। यही कारण था कि उन्होंने कबीर की तरह निर्भय होकर पाखण्ड का प्रतिकार किया, यथार्थ को प्रस्तुति दी और उन्होंने धर्म के आस–पास उगे कांटों को उखाड़ फेंका।

सम्पूर्ण तेजस्विता के साथ चमकने वाले प्रचण्ड सूर्य के आस–पास निस्तेज ग्रह–नक्षत्र टिक सके, असंभव बात थी। वहाँ शक्तिसम्पन्नता पहली शर्त थी, क्योंकि तेजस्वी बनकर ही तेज की उपासना की जा सकती है। नैतिक मूल्यों को जीना जितना कठिन होता है उससे अधिक संघर्षपूर्ण होता है अनैतिक मूल्यों को चुनौती देना। मानवीय दुर्बलताओं के महाभारत में विजय प्राप्त करने के लिए आचार्य भिक्षु ने जीवन भर तप तपा, अपमान और उपेक्षा का विष पान किया, अभावों के अनगिनत पर्वत लांघे। नीचे धरती और ऊपर आसमां का आश्रय लेकर आत्म–साधना के राजपथ पर वह वीर महावीर बन चल पड़ा।

कठिनाई, संघर्ष, विरोध के बीहड़ जंगल में कई साथियों के साहस का दीपक जलता रहा तो कई साथी भय की अंधेरी खोह में गुम हो गए। वि. सं. 1817 की आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन तेरह व्यक्तियों के जुड़े छब्बीस हाथों ने कहा 'हे प्रभो! यह तेरापंथ' का घोष समुच्चारित कर नए संघ की सिद्धश्री लिखी। उन दुर्लभ ऐतिहासिक क्षणों की जो अपूर्व कुण्डली बनी, तेरापंथ का विश्वव्यापी कर्त्तृत्व उसी का चमत्कार कहा जा सकता है।

तेरापंथ धर्मसंघ की जन्मकुण्डली में ऐसा कौन–सा नक्षत्र प्रभावी था कि एक साथ साधु–साध्वी, श्रावक–श्राविका चारों तीर्थ का उदय नहीं हो पाया। यह एक ज्योतिर्विद के लिए अनुसंधान का विषय है। पर यह सुनिश्चित है कि तेरापंथ स्थापना के चार वर्ष बाद चौथे तीर्थ (साध्वियों) का प्रवर्तन हुआ।

तेरापंथ में साध्वियों की दीक्षा जब तक नहीं हुई, विरोधी लोग व्यंग्यात्मक भाषा में कहते – 'भीखणजी! तुम्हारे संघ का लड्डू अपूर्ण है। चतुर्विध संघ की जगह त्रिविध संघ है।'

आचार्य भिक्षु जिस ठोस भूमिका पर खड़े थे उनके सामने सत्य ही महत्त्वपूर्ण था। न संख्या का मोह था और न साध्वियों के अभाव का क्षोभ था। वे चाहते थे – जो साधक आए वे शुद्ध लक्ष्य के प्रति समर्पित हों। इसलिए व्यंग्यपूर्ण प्रश्न को समाहित करते हुए उन्होंने कहा – हमारा मोदक अपूर्ण भले हो पर जो है चौगुनी चीनी का है अर्थात् जितना है वह स्वादिष्ट है और जैसा होना चाहिए वैसा है।

आचार्य भिक्षु ने अपने सीधे सपाट कथन से यह स्पष्ट कर दिया कि चीनी के अभाव में लड्डू स्वादिष्ट नहीं बनता और उसे कोई पसंद नहीं करता, वैसे ही चारित्र के अभाव में धर्मसंघ की चतुर्विधता भी महत्त्वपूर्ण नहीं होती है।

संयोग की बात थी, इस प्रसंग के कुछ समय बाद ही आचार्य भिक्षु के पास तीन बहिनें आई और उन्होंने दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की।

आचार्य भिक्षु उस समय ऐसी पगडंडियों से चल रहे थे जहाँ कांच और कांटे बिछे हुए थे। जिन गलियों से वे निकलते गालियों की बौछार और नफरत का तेजाब छिड़का जाता। भय और भ्रान्ति का तेज अंधड़ तो सदा उनके आगे–पीछे चलता ही रहता। इसलिए अपनी सूक्ष्मदर्शी सोच का उपयोग करते हुए – तीनों दीक्षार्थिनी बहनों को वर्तमान की संभावित परिस्थितियों से अवगत कराया और आगमोक्त कसौटी पर उनके वैराग्य को कसा। सोने की तरह उन्हें निकष पर चढ़ाते हुए आचार्य भिक्षु ने कहा – जैनागमों के अनुसार कम से कम तीन साध्वियों का साथ रहना आवश्यक है। यदि दीक्षा लेने के पश्चात् तुम तीनों में से एक का वियोग हो जाए तो शेष दो साध्वियों के लिए संलेखना के सिवाय कोई मार्ग नहीं है।

आत्मोत्सर्ग की शूली पर चढ़ने का साहस जुटाकर तीनों बहनों ने दीक्षा का अटल संकल्प पुनः व्यक्त किया, क्योंकि उनका वैराग्य विवेक से जनमा था, कोई दबाव, प्रलोभन, जोर जबरदस्ती या पारिवारिक मजबूरी नहीं थी। बहनों की वीरता और धीरता से आचार्य भिक्षु आह्लादित हुए। उनके वैराग्य भाव से पहले ही आश्वस्त थे। आचार्य भिक्षु ने पूर्ण परीक्षा के पश्चात् तीनों बहिनों को अपने धर्मसंघ में दीक्षित कर चौथे तीर्थ का प्रवर्तन किया। वह शुभ संवत 1821 का था।

प्रस्तुत सन्दर्भ में कुछ जिज्ञासाएं मन की धरती पर सहज अंकुरित होती हैं –

– तेरापंथ साध्वी समाज की नींव बनने वाली तीनों बलिदानी साध्वियों की जन्म भूमि कौन–सी थी?

– उन तीनों की शादी कब हुई? कहाँ हुई? कब उन पर वैधव्य का वज्रपात हुआ?

– बहिनों की भाग्यशाली त्रिवेणी आचार्य भिक्षु के चरणों में कैसे पहुंची?

– भय और भ्रान्तियों के सघन अन्धकार में उन्हें उदित होता तेरापंथ का धुंधला–सा प्रकाश कैसे दिखाई दिया?

– उन्होंने संयम रत्न की उपलब्धि किस पुण्य धरा पर प्राप्त की तथा वह शुभ दिन कौन–सा था?

प्रश्नों की इस लम्बी कतार को सामने रखकर तेरापंथ इतिहास को देखा, शासन समुद्र के पन्ने पलटे। शासन प्रभाकर, आचार्य भिक्षु धर्म परिवार आदि अनेक ग्रंथों को पढ़ा पर जिज्ञासा शान्त न हो सकी।

एक दिन इस प्रश्न का उत्तर मिला। तेरापंथ इतिहास मनीषी मुनिश्री सागरमलजी 'श्रमण' द्वारा लिखित एक लेख में जिसका शीर्षक है – धुंधले से प्रकाश में महासती कुशलांजी।

संयोग की बात है कि गहरे अंधकार में खोए प्रकाशमान व्यक्तित्व की किरणों को हमारे तक संप्रेषित करने में माध्यम बनी एक वयोवृद्धा साध्वी। जिनकी पहचान संघ में जूनी जोगण साध्वी के रूप में होती थी। स्वनाम धन्या धीर गंभीर धर्मसंघ की वरिष्ठ साध्वी थी – साध्वी श्री लाडांजी (लाडनूं)।

प्रभास्वर व्यक्तित्व के धनी सप्तमाचार्य डालगणी के कर–कमलों से दीक्षित साध्वी लाडांजी ने यह सारा दुर्लभ दस्तावेज साध्वी प्रमुखा जेठांजी से प्राप्त किया। साध्वीप्रमुखा जेठांजी ने परम पूज्य डालगणी के मुखारविन्द से सुना, इसलिए इसकी प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध है। साध्वी समाज के इतिहास के विस्तृत और सघन आकाश में विहरण करते समय मुनिश्री ने केवल बड़े–बड़े ग्रह नक्षत्रों पर ही अपनी नजरें नहीं टिकाई, छोटे से छोटे तारों को कहीं भी टिमटिमाते देखा, अपनी स्मृति प्रकोष्ठ में रख लिया। उसकी वजह से छितरी छितरी किरणें आज हमारे जिज्ञासा पथ को आलोकित कर रही हैं।

ऐहिहासिक दृष्टि से कहा जा सकता है कि तेरापंथ का इतिहास, भिक्षु जस रसायण आर्या दर्शन गीत तथा गुण वर्णन गीतिकाएं, शासन प्रभाकर, शासन विलास और शासन समुद्र आदि अनेक ग्रंथ निश्चित रूप से मील के पत्थर बनकर युग–युग तक सबका पथ दर्शन करते रहेंगे।

तेरापंथ के आचार्यों ने धर्मसंघ के विरासत की बड़े जतन और कूवत के साथ सुरक्षा की है। समय–समय पर युगीन सन्दर्भों में नई भाषा, शैली में प्रस्तुति देकर उसकी महत्ता और उपयोगिता को सहस्रगुणित किया। आज आचार्य भिक्षु का विश्वस्तरीय मूल्यांकन उनके दर्शन, चिन्तन और मंतव्य से है। आचार्यश्री तुलसी के युग में तेरापंथ द्विशताब्दी के ऐतिहासिक अवसर पर तेरापंथ दर्शन और तेरापंथ के

इतिहास को प्रस्तुति देने का जो भगीरथ प्रयास प्रारंभ हुआ, वह आज तक चल रहा है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने तेरापंथ दर्शन को आधुनिक शैली एवं साहित्यिक परिवेश मे व्याख्यायित कर उसकी आध्यात्मिक वैज्ञानिक दृष्टि को उजागर किया। वर्तमान में आचार्यश्री महाश्रमण भिक्षु–साहित्य समन्दर में अवगाहन कर उसके अनमोल रत्न जन–जन को उपलब्ध कराने का अनथक श्रम कर रहे हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ, आचार्यश्री महाश्रमण (उस समय युवाचार्यश्री महाश्रमण) और महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी संघीय साहित्य के सन्दर्भ में समवेत चिन्तन कर रहे थे। एक विचार आया – "साध्वी समाज का इतिहास अच्छे ढ़ंग से प्रस्तुत किया जाए।" आचार्यवर के इस निर्णय की क्रियान्विति के लिए महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी ने मुझे निर्देश दिया।

तेरापंथ मनीषी मुनिश्री नवरत्नमलजी द्वारा लिखित 'शासन समुद्र' मेरे लेखन का प्रामाणिक आधार था। मैंने उनको सामने रखा, और उसके साथ–साथ तेरापंथ इतिहास मनीषी मुनिश्री सागरमलजी 'श्रमण' के उपपात में बैठकर साध्वियों के सम्बन्ध में विविध आयामी जानकारी प्राप्त की। मुनिश्री की आत्मीयता भरी उदारता ने कई साध्वियों की जीवन–पोथी के नए–नए पृष्ठ खोले। इसके अलावा अनुभव समृद्ध वयोवृद्ध साध्वियों के पास बैठकर इधर–उधर बिखरी सामग्री को बटोरने का भी मैंने प्रयत्न किया। आश्चर्य तो उस समय हुआ, जब हमारी वयोवृद्धा साध्वियों ने श्रुतानुश्रुत परम्परा के आधार पर बहुत सारी नई बातें बताई। साध्वियों के बारे में संकलित हस्तलिखित जीवन चरित्र एवं प्रकाशित पुस्तकों की सामग्री भी मेरे लिए उपयोगी बनी। जैन भारती और भिक्षु स्मृति ग्रन्थ में प्रकाशित लेखों में तथा अन्यत्र भी यत्र तत्र साध्वियों के जीवन को उजागर करने वाली प्रकाश की किरणें दिखाई दी, उनको भी मैंने औचित्य के साथ सहजने का प्रयास किया है।

इतिहास के सन्दर्भ में एक बात मैं तहेदिल से स्वीकार करना चाहूंगी कि भरसक कोशिश के बावजूद समय, स्थान की प्रामाणिकता में संदिग्धता रहनी बहुत संभव है। इसी दृष्टि से पाठकों को कोई प्रामाणिक जानकारी हो और वे यदि भविष्य में मेरा मार्गदर्शन करेंगे तो मेरे अंतःकरण में उनके लिए साधुवादार्ह मानने का सम्माननीय स्थान आरक्षित रहेगा। इसी प्रकार किसी भी साध्वी के विषय में नए तथ्य तथा नई सामग्री उपलब्ध होगी तो अतिरिक्त प्रसन्नता का विषय होगा।

तेरापंथ–साध्वी समाज की विकास यात्रा विविध आयामी और विविध दिशागामी रही है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, कला, वैराग्य–निर्माण, संघ–विस्तार, प्रचार–प्रसार

और जन सम्पर्क में श्रद्धा समर्पण के साथ उनकी शक्ति और समय का नियोजन विशेष उल्लेखनीय है। तेरापंथ के महाप्रतापी आचार्यों के विकासकारी अनुशासन की धूप, आत्मीय अनुग्रह का पानी और प्रेरणा की अनुकूल हवा ने साध्वी–समाज के विकास की फसल को लहलहाने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया, उसी के परिणाम स्वरूप आज तेरापंथ का साध्वी समाज यशस्वी, तेजस्वी और वर्चस्वी है।

तेरापंथ का यशस्वी साध्वीसमाज – भाग 3 में तेरापंथ धर्मसंघ के आठवें आचार्यश्री कालूगणी के युग की कुछ चयनित यशस्वी साध्वियों का जीवन–वृत्त का समावेश किया गया है। इस ग्रन्थ में 29 साध्वियों के जीवनवृत्त हैं। उसमें साध्वीप्रमुखा झमकूंजी का जीवन इसलिए लिया है क्योंकि उनके कर्त्तृत्व का सम्बन्ध पूज्य कालूगणी के युग से अधिक रहा है। उल्लेखनीय है कि महासती झमकूंजी की दीक्षा आचार्यश्री डालगणी के कर–कमल से हुई थी।

कीर्तिधरशलाकापुरुष, प्रेरणा के महास्रोत परम पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री तुलसी ने मुझे इतिहास के उपवन में प्रवेश करने की प्रेरणा दी। विशेष रूप से श्राविकाओं के कर्त्तृत्व को उजागर करने का निर्देश दिया। आचार्यप्रवर के अंतिम लाडनूं प्रवास में इस दृष्टि से मैंने प्रयास शुरु किया और कई बहिनों को अपनी लेखनी का विषय बनाया। 'इतिहास के नुपुर' पुस्तक उसी प्रयास का परिणाम है। अनन्त ऊर्जास्रोत महाप्राण पूज्य गुरुदेव द्वारा प्राप्त प्रेरणा संजीवनी सदा–सदा मेरे लिए संजीवनी का काम करती रहे, यही अभीप्सा है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ और आचार्यश्री महाश्रमण की कृपा दृष्टि ने मेरी कर्मणा शक्ति को साध्वियों के इतिहास लेखन में नियोजित किया और समय–समय पर प्रेरणा का सिंचन देकर प्रोत्साहित किया, इसे मैं अपना सौभाग्य मानकर आह्लाद का अनुभव करती हूँ। आचार्यश्री महाश्रमण की मंगलमय छत्रछाया में बैठकर संयम–साधना के साथ मन वचन और कर्म को संघविकास के कार्यों में नियोजित कर पाई तो मैं अपने जीवन को सफलता एवं सार्थकता के करीब महसूस करूंगी। आचार्यश्री के मंगल आदेश निर्देश को मैं आगम वाक्य मानकर अपना पथ प्रशस्त करती रहूँ। यही मेरा जीवन व्रत है, यही मेरा लक्ष्य है और यही मेरी मंजिल है।

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाश्रीजी का अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, अप्रमत्त कर्मयोग और सहज समुन्नत साधना योग मेरे कदमों को गतिशील, हाथों को कर्मशील बनाने वाला है। गुरु–कृपा से महाश्रमणीजी की पावन सन्निधि मेरे पुरुषार्थ के दीप को प्रज्ज्वलित करने वाली है। पुरुषार्थ की दीये को अप्रमाद और समर्पण भाव का तेल निरन्तर

मिलता रहे, यही मनो भावना है। परम श्रद्धास्पद आचार्यवर एवं महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त कर सकूं, वे शब्द मेरे शब्दकोश में नही है। मैं गुरु–दृष्टि की आराधना करती हुई, आज्ञा और अनुशासन को श्वास की तरह जीती रहूं तथा मेरे मन में श्रद्धा–समर्पण की अनाविल ज्योति जलती रहे यही अन्तःकरण की कामना है।

मैं इतिहास मनीषी मुनिश्री सागरमलजी 'श्रमण' के प्रति अत्यन्त विनम्र भाव से प्रणत हूँ जिन्होंने वात्सल्य भाव से बड़ी उदारता के साथ मुझे इतिहास के विरल प्रसंगों की अवगति दी। जब कभी मैंने उनको निवेदन किया, उन्होंने अपनी सुविधा असुविधा को गौणकर मेरी अनुकूलता से मुझे समय दिया और मेरा मार्गप्रशस्त किया।

गुरुकुलवास का प्रेरक वातावरण और गुरुकुलवासी सभी साध्वियों के सौहार्द भाव के साथ साध्वी सुषमाकुमारीजी, चित्रलेखाजी, विभाश्रीजी विवेकश्रीजी, शशिप्रभाजी, सुनन्दाश्रीजी, स्वस्तिकप्रभाजी एवं लक्ष्यप्रभाजी का आत्मीय सहयोग मेरे कार्य को सहज सरल बनाता रहा है। उनके इस अनन्य सहयोग के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के साथ मंगल कामना करती हूँ कि भविष्य में सबका सहयोग उपलब्ध होता रहे।

पुस्तक–प्रकाशन से पूर्व सभी कार्यों का दायित्व अखिल भारतीय तेरापंथ महिला मण्डल की पूर्व अध्यक्ष श्रीमती पुष्पा बैंगाणी और पूर्वमंत्री श्रीमती प्रेम सेठिया ने संभाल कर मुझे निश्चिंत बना दिया। श्रीमती पुष्पा बैंगाणी एवं श्रीमती प्रेमसेठिया की स्वाध्याय रूचि मनोवृत्ति ने पुस्तक की सामग्री को सुव्यवस्थित करने में श्रम के साथ उत्साह से कार्य किया, इसके लिए वे वास्तव में ही साधुवाद की पात्र हैं। मुमुक्षु डां शान्ता जैन भी मेरे कार्य में समय–समय पर सहयोगी बनी रहीं। सभी बहिनों की संघनिष्ठा एवं अध्यात्म निष्ठा के विकास की मंगल भावना।

लाम्बोड़ी (मेवाड़) 2 जुलाई 2011 साध्वी कल्पलता

तेरापंथ का यशस्वी साध्वी–समाज

भाग – 3

अनुक्रमणिका

अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के युग की साध्वियां

1. साध्वीप्रमुखा झमकूजी चूरु (703)
2. साध्वी छगनांजी (बोरावड) (735)
3. " दाखांजी (दीवेर) (741)
4. " मुक्खांजी (सुजानगढ़) (744)
5. " छोटांजी (तारानगर) (752)
6. " हुलासांजी (सिरसा) (759)
7. " चान्दांजी (गोगुन्दा) (760)
8. " ज्ञानांजी पीतास मेवाड़ (765)
9. " अणचांजी (श्रीडूंगरगढ़) (770)
10. " जड़ावांजी सरदारशहर (771)
11. " प्यारांजी पुर (778)
12. " भूरांजी मंदारिया (780)
13. " निजर कंवरजी वास (781)
14. " प्रतापांजी बीदासर (786)
15. " मूलांजी भीनासर (789)
16. " चांदकंवरजी भीनासर (790)
17. " नोजांजी सरदारशहर (791)
18. " लिछमांजी सरदारशहर (793)
19. " इन्द्रूजी गडबोर (795)
20. " किस्तुरांजी, आशांजी राजलदेसर (802, 803)
21. " सुन्दरजी लाडनूं (807)
22. " संतोकांजी लाडनूं (818)

23. " चूनांजी बीदासर (819)
24 " साध्वी निजरकुंवरजी लाडनूं (820)
25 " साध्वी धनकंवरजी लाडनूं (823)
26. " सोनांजी साजनसर (825)
27 " साध्वी मनोहरांजी सुजानगढ़ (826)
28 " साध्वी तनसुखांजी लाडनूं (827)
29 " साध्वी दीपांजी सिरसा (960)

1. साध्वीप्रमुखा झमकूजी (चूरु) (703)

तेरापंथ धर्मसंघ तेजस्वी धर्मसंघ है। उसकी तेजस्विता वृद्धि में आचार्यों की पुण्यवत्ता के साथ साधु साध्वियों एवं श्रावक श्राविकाओं की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उनमें साध्वीप्रमुखाओं के पुरुषार्थ का भी योग रहा है। तेरापंथ की साध्वीप्रमुखाओं की गरिमामयी परम्परा का छठा नाम है – साध्वीप्रमुखा झमकूजी चूरु। राजस्थान का चूरू एक ऐसा गौरवशाली शहर है जिसका तीन साध्वीप्रमुखाओं के साथ इतिहास जुड़ा हुआ है। महासती सरदारांजी तेरापंथ की प्रथम साध्वीप्रमुखा चूरू की लाडली पुत्री थी। चौथी साध्वीप्रमुखा महासती जेठांजी चूरू की पुत्री और चूरू की ही पुत्रवधु थी। छठी साध्वीप्रमुखा झमकूजी का ससुरालय चूरू में था।

जन्म : जन्मभूमि एवं परिवार

बालिका झमकू का जन्म सं. 1944 कार्तिक कृष्णा तेरस को हुआ। जिसे लोकभाषा में धनतेरस कहते हैं। दीपावली की अगवानी में तेरस के दिन घर–घर में मंगल दीपक जलाए जाते हैं। रतननगर के हीरावत परिवार में शुभयोग से ऐसी दीपशिखा का अवतरण हुआ, जिसकी खुशी में घर–आंगन प्रसन्नता से जगमगा उठा। इसका एक निमित्त यह भी था कि जब बालिका गर्भ में थी। माता चांददेवी निश्चिंतता के साथ नींद में सोई हुई थी। उन्हें स्वप्न में आभास हुआ घर के आंगन में लक्ष्मी प्रवेश कर रही है। उनके मन में प्रश्न उपस्थित हुआ – कौन है? तभी चांददेवी के कानों से मधुर शब्द टकराए – तुम्हारे उदर में एक भाग्यवती कन्या ने प्रवेश किया है। यह कन्या तुम्हारे कुल के नाम को रोशन करेगी। स्वप्न की फलश्रुति शुभदिन में देख परिवार जन खुशियों में झूम उठे। बालिका के पिता दो पुत्रों के बाद सौभाग्यवती पुत्री को आंगन में खेलती देखकर अत्यन्त संतुष्ट थे। उनके कुल पांच संतान हुई उनमें झमकू दोनों भाइयों से छोटी थी और दोनों बहिनों में बड़ी थी।

रतननगर बीकानेर दरबार रतनसिंहजी के नाम पर बसा हुआ है, इससे पहले यह छोटी सी बस्ति थी जिसे थेलासर कहते थे। आज भी लोगों की जुबान पर दोनों नाम सुने जा सकते हैं। रतननगर का हीरावत परिवार मूलतः रामगढ के निवासी थे। रामगढ गांव सीकर रियासत में था और उस समय इसकी ख्याति लक्ष्मी और सरस्वती दोनों के आशीर्वाद से थी। कहते हैं एक ओर यह धनाधीश सेठों की नगरी कहलाती थी, यहां की पोद्दार जाति अपनी सम्पन्नता एवं उदारता के कारण बहुत विख्यात थी। दूसरी ओर संस्कृत भाषा के मर्मज्ञ विद्वानों का इस नगरी में अच्छा जमावड़ा था। वहीं हीरावत परिवार के सेठ श्रीमंत भी अपने पुरुषार्थ से इसे गरिमा दे रहे थे। एक बार पोद्दार परिवार की सीकर दरबार के साथ अनबन हो गई। रामगढ़ छोड़कर बीकानेर रियासत के रतननगर में बसने का निर्णय लेकर उन्होंने वहां जमीन

खरीद ली। यह बात जब हीरावत परिवार को ज्ञात हुई वे भी उस बात से प्रभावित हुए। क्योंकि पोद्दार परिवार और हीरावत परिवार में पारस्परिक सम्बन्ध बहुत प्रगाढ़ थे। इसलिए हीरावत परिवार के वरिष्ट सदस्य सेठ लिछमणदासजी अपने सभी परिवारों के साथ रामगढ़ छोड़कर रतननगर आकर बस गए।

जब सीकर दरबार को यह जानकारी मिली कि पोद्दार परिवार रामगढ़ को छोड़कर अन्यत्र जा रहे हैं। दरबार सक्रिय बने और पोद्दारों को राजी करके वहीं रहने का आग्रह किया। कहते हैं दरबार के आग्रह को वे टाल नहीं पाए और वहीं रह गए।

लिछमणदासजी हीरावत उस परिवार के पुरोधा पुरुष थे। बालिका झमकू के दादा थे। वे व्यक्ति नहीं एक संस्था थे। संयुक्त परिवार के संचालक थे और नगर के प्रतिष्ठित तथा लोकप्रिय व्यक्ति थे। उनका स्वभाव दबंग एवं निडर था। उनके पांच पुत्र थे जिनमें रामलालजी उनके सबसे छोटे पुत्र थे।

कन्या वधू बन गई

जीवन के बारह बसंत पार करते–करते बाल सुलभ चपल किशोरी को कुलवधु की जिम्मेदार भूमिका पर प्रतिष्ठित करने की तैयारियां होने लगी। लम्बा कद, गेहुआ वर्ण, चमकीले आंखें, घुंघराले बाल और स्वस्थ सुडोल शरीर वाली बालिका सब का मन मोह लेती। मां संस्कारों के साथ घर के कामों में दक्ष बनने का प्रशिक्षण देने लगी। बालिका झमकू की गृहकार्य में सहज रुचि थी इसलिए वह बड़ों के हर कार्य को गौर से देखती और उसके अनुरूप काम करने का अभिनय करती। बालिका झमकू को नित नए कपड़े पहनने का बड़ा शौक था। परिवार के सदस्य उसको लक्ष्मी के रूप में ही देखते थे क्योंकि उसके जन्म के बाद घर में धन–धान्य, सम्पदा सम्पत की चारों ओर वृद्धि हुई थी। इसलिए उसकी मांग का सब सम्मान करते और उसे पूरी करने का प्रयत्न करते। झमकू के पिताश्री रामलालजी सीधे और भद्र प्रकृति के व्यक्ति थे। उनका व्यवसाय बंगाल में था। उनका कई परिवारों के साथ अच्छे सम्बन्ध थे। उनमें एक चूरू का पारख परिवार था। चूरू निवासी लालचंदजी पारख का व्यापार भी बंगाल में था। व्यापारिक सम्बन्धों के कारण दोनों में अच्छी निकटता थी।

लालचंदजी के एक छोटा भाई था जिसका नाम था पांचीराम। वह शादी के योग्य हो गया था। लालचंदजी भ्राता के लिए योग्य लड़की की खोज में थे। इधर रामलालजी अपनी सुयोग्य सुन्दर लाडली के लिए अच्छे घर–वर की तलाश में थे। उन्होंने सलक्ष्य पांचीरामजी को देखा, परखा और हर दृष्टि से उसके बारे में जानकारी ली तो लगा लड़का सुन्दर योग्य और लड़की की जोड़ी का है। एक दिन चिन्तन पूर्वक अपनी पुत्री की शादी का प्रस्ताव लालचंदजी के सामने रखा। लालचंदजी को

बाला झमकू सहज मनभावन लगती थी। घर परिवार सब कुछ जाना पहचाना, सम्पन्न और इज्जतदार था। पहली बातचीत में ही यह प्रसंग उनके मन को भा गया। अपने परिजन से चिन्तनकर लालचंदजी ने स्वीकृति प्रदान कर सम्बन्ध पक्का कर लिया। विवाह का मुहूर्त देरी से था इसलिए शादी में विलम्ब था।

इसी कालखण्ड में एक बार पांचीरामजी अपने दोस्त की बारात में गए। वहां भोजनोपरांत पांचीरामजी ने सुपारी मुंह में ली। असावधानी से वह सीधी गले में उतरी और अटक गई। सुपारी ज्योहीं अटकी, सांस जहां की तहां अवरूद्ध हो गई। चारों ओर स्तब्धता सी छा गई। डाक्टरी उपचार तत्काल उपलब्ध होने पर गले में अटकी सुपारी नीचे उतरी और धीरे–धीरे पांचीरामजी स्वस्थ हो गए। यद्यपि उस दिन के बाद वे अपने आपको स्वस्थ मान रहे थे पर उनके शरीर में एक विशेष परिवर्तन झलकने लगा। वे शरीर से कृश होने लगे और धीरे–धीरे वजन कम होने लगा। हीरावत परिवार के लिए यह चिन्ता का विषय बन गया। दोनों परिवार के सदस्यों ने मिलकर तय किया कि एक बार डाक्टर से जांच करवा कर अच्छी तरह से परामर्श ले लिया जाए। मेडिकल परीक्षण और डाक्टरी सलाह के अनुसार शारीरिक दुर्बलता के सिवाय सब कुछ ठीक पाया गया। दोनों परिवार आश्वस्त हो वैवाहिक तैयारियां उत्साह के साथ करने लगे। शुभ मुहूर्त में उल्लासमय वातावरण में बालिका झमकू का विवाह पांचीरामजी के साथ धूमधाम से हो गया। हीरावत परिवार की बेटी पारख परिवार की कुलवधू बन गई।

चूरू के पारख परिवार की गणना वहां के समृद्ध परिवारों में होती थी और आज भी होती है। पारख जाति का भी अपना इतिहास है। कहते हैं कि इस परिवार में पासूजी नाम के एक वरिष्ठ सदस्य थे। वे रत्न परीक्षक थे और बादशाह के दीवान थे। एक बार बादशाह ने हीरा खरीदा और परीक्षण के लिए पासूजी को दिखाया। हीरे का परीक्षण कर पासूजी ने अपना मंतव्य रखते हुए कहा – जहांपनाह! यह हीरा शुभ लक्षण वाला नहीं है, जिसके भी पास रहेगा, उसको स्त्री धन की हानि हो सकती है। बादशाह ने ध्यान नहीं दिया और हीरा अपने पास रख लिया। थोड़ा समय ही बीता होगा अचानक उनकी बेगम का देहांत हो गया। अब बादशाह को भारी अफसोस हुआ और पासूजी की परख पर गहरा विश्वास हो गया। तत्काल हीरा बेच दिया। पासूजी इस घटना के कारण हीरे की परख करने से बादशाह ने पारख कहना शुरु कर दिया और यही इनकी जाति बन गई।

पारख परिवार में सेठ जुहारमलजी के पांच पुत्र थे। उनमें सबसे छोटे पुत्र पांचीरामजी थे। पिता की मृत्यु के बाद परिवार को लालचंदजी का संरक्षण प्राप्त था। लालचंदजी धर्मनिष्ठ, श्रमनिष्ठ, नीतिनिष्ठ और अनुशासन प्रिय व्यक्ति थे उनकी

समाज में अच्छी प्रतिष्ठा थी। पारख और हीरावत दोनों परिवार जन बल एवं धन बल से सम्पन्न होने के साथ धार्मिक दृष्टि से भी समृद्ध थे। आध्यात्मिक दृष्टि से दोनों परिवार तेरापंथ के सिद्धान्तों में विश्वास करते थे। संघ एवं संघपति के प्रति उनका गहरा समर्पण भाव था। आचार्यश्री तुलसी ने 'झमकू गुणवर्णन' गीत में दोनों परिवार के बारे में लिखा है –

चम्मालीसै रतननगर में हीरावतां घर जामी।
ससुरालयै चूरु रा पारख उभयपक्ष है नामी।।

नवोढ़ा बनकर झमकूजी ने पारख परिवार मे प्रवेश किया उन्हें बड़ों का भरपूर वात्सल्य मिला और उन्होंने बड़ों को आदर सम्मान देने में कमी नहीं रखी। उन्होंने अपने आचार और व्यवहार से सबके मन को जीत लिया। झमकूजी ने विनय नम्रता सहनशीलता धैर्य तथा कर्मठता आदि गुणों से थोड़े ही समय में अपनी अच्छी पहचान स्थापित कर ली। नववधू सबकी चहेती बनी हंसी खुशी का जीवन जीने लगी।

वैधव्य का दंश और वैराग्य की मरहम

विवाह हुए मात्र ढाई साल ही व्यतीत हुआ था कि झमकूजी पर नियति ने ऐसा वज्राघात किया कि सूरज की उपस्थिति में ही उनका जीवन अंधकारमय बन गया। अचानक पांचीरामजी को मृत्यु ने अपने आगोश में ले लिया। वैधव्य की काली घटा जीवन के आकाश में उमड़ आई। पूरे परिवार में विरह व्यथा व्याप गई और युवा पुत्र के चले जाने से सब कुछ होत हुए भी एक ऐसी रिक्तता उभर आई जिसको भरना किसी के वश की बात नहीं थी। सर्वाधिक कसौटी का समय था झमकूजी के लिए। उनके लिए सब कुछ उजड़ चुका था। उनके पिता रामलालजी ने जैसे ही यह दुःखद संवाद सुना, वे धड़ाम से मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़े। कहते हैं तीन दिन तक उनको होश नहीं आया। जब होश आया तो अपने आपको संभाल नहीं पाए। आखिर परिजनों ने उनको धैर्य से थामा और धीरे–धीरे समय ने विरह के घाव भरे।

एक दिन उन्हें आभास हुआ – क्यों चिन्ता कर रहा है? यह पतझड़ झमकू के जीवन को बसंत में मोड़ देगा। यह संयम से अपनी भाग्य लिपि लिखेगी..... ...। यद्यपि रामलालजी को न किसी दिव्यात्मा के दर्शन नहीं हुए, मात्र आवाज सुनाई दी जिससे उन्हें आत्मिक शान्ति का अनुभव हुआ। मां का मन पुत्री के वैधव्य का चिन्तन करते ही टुकड़े–टुकड़े होने लग जाता पर आखिर सब निरूपाय थे।

पति वियोग के कुछ समय पश्चात जब–जब मौका मिलता दोनों परिवार जागरूक भाव से उनके जीवन को मोड़ देने का प्रयत्न करने लगे। यद्यपि वह घोर रूढ़िवादी युग था पर परिजनों ने विवेक से काम लिया और बालिका को सामाजिक बन्धनों से मुक्त रखा। बालिका झमकू इतना तो समझती थी कि उसके पति की मृत्यु

हो गई है पर उसका परिणाम क्या होने वाला है उससे अनजान थी। साधु साध्वियों का चूरू और रतननगर जहां भी सान्निध्य मिलता उनको सलक्ष्य वहीं रखा जाता। वे व्याख्यान सुनती और साध्वियों के पास बैठकर उपासना करती। साध्वियों ने उनको बहुत अच्छे ढंग से संभाला। वे वैराग्य पूर्ण बोध कथाएं सुनाती, तत्त्वज्ञान सीखाती और जीवन को सार्थक बनाने की प्रेरणा देती। झमकूजी का मन भी साध्वियों में रम गया और उनकी शिक्षा का रंग जीवन में उतरने लगा। जीवन में त्याग वैराग्य की दिशाएं खुलने लगी।

सौभाग्य से उन्हें ऐसे कठिन समय में तेरापंथ की सुविख्यात साध्वीश्री गंगाजी का एक बार सान्निध्य मिला। साध्वीश्री गंगाजी का जीवन गंगा की तरह निर्मल था और आगम के ज्ञान से आलोकित था। उन्हें ज्योतिष का भी गहरा अनुभव था। एक दिन झमकू उनके उपपात में बैठी थी। साध्वीजी का ध्यान उनकी हस्तरेखाओं पर केन्द्रित हो गया। उन्होंने कहा – "झमकू! तुम्हारी हाथ की रेखाओं से ऐसा लग रहा है कि तुम्हारा जीवन अध्यात्ममय बीतेगा।" सोलह वर्षीया किशोरी किसी के सामने न तो अपना मन खोल पा रही थी और न कोई निर्णय ले पा रही थी। साध्वीश्री के कथन से उनके मन में आत्मविश्वास की एक लहर पैदा हुई।

दूसरी ओर ससुराल में उनके जेठ लालचंदजी उनको मान सम्मान के साथ अपने परिवार के साथ समुचित रूप से जोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। उनकी हर अपेक्षा का ध्यान रखते। समय–समय पर उनके लिए गहने बनाते। घर की हर जिम्मेदारी के साथ उनको जोड़कर उन्हें प्रतिष्ठित करते। दूसरी ओर झमकूजी त्याग विराग की ओर आगे बढने लगी। उन्हें घर में रुचि कम होने लगी। वे अपने आपको संयम की कसौटी पर कसने लगी। कई बार धूप में बैठकर सामायिक करती और कभी सर्दी सहन करने का अभ्यास करती।

एक बार लालचंदजी ने सुझाव रखते हुए कहा – जिस प्रकार हम चार भाई हैं हमारे चार घर बस गए। मैं चाहता हूँ कि मेरे पांचवे भाई का भी घर बसे यह मेरी तमन्ना है। अतः तुम जयचंदजी (देवचंदजी मेरे भाई है उनके बेटे) को गोद ले लो ताकि मेरे पिता के पांचों पुत्रों के घर बने रहें। झमकूजी ने ध्यान से सुना और बात को टालते हुए कहा – मुझे अब नश्वर घर बसाने में रुचि नहीं है, मैं शाश्वत घर बसाना चाहती हूँ जिसे कोई उजाड़ न सके। उस समय वे चाहती थी कि वे अपनी वैराग्य भावना बता दें पर बता नहीं सकीं। यों करते–करते चार वर्ष का समय व्यतीत हो गया। उन्होंने एक दिन अपनी जेठानी को अपनी वैराग्य की सारी कहानी सुनाते हुए जेठ को सारी बात बताने के लिए कहा। जेठांनी ने उनको समझाने का प्रयत्न किया पर वे टस से मस नहीं हुई।

आखिर जेठानी ने अपने पति को सारी बात की जानकारी पत्र से दी वे भी बौखलाहट से भर गए। उन्होंने चूरू के प्रतिष्ठित श्रावक तोलारामजी कोठारी को उन्हें समझाने की जिम्मेदारी सौंपी पर सबको लगा झमकूजी का संकल्प दृढ़ है। स्वयं लालचंदजी ने बंगाल से आकर अपना पूरा प्रयत्न किया। झमकूजी की संयम निष्ठा और वैराग्य भावना ने सबको प्रभावित कर लिया और वे सब आचार्यश्री डालगणी के चरणों में पहुंच गए। डालगणी हीरावत और पारख दोनों घरानों से भली भांति परिचित थे पर झमकूजी के वैराग्य का परीक्षण किया। आचार्यवर ने प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे दिया और कुछ समय पश्चात दीक्षा की अनुज्ञा प्रदान की।

दीक्षा और व्यक्तित्व निर्माण

सं. 1965 कार्तिक शुक्ला पंचमी। लाडनूं की धरती, सप्तमाचार्यश्री डालगणी ने मंत्रोच्चारण पूर्वक वैरागिन झमकू को दीक्षितकर साध्वी झमकू के रूप में पहचान बना दी। विशाल परिषद के मध्य बड़े ठाटबाट के साथ दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ। महासती जेठांजी के पावन सान्निध्य में वे साध्वाचार की आराधना करने लगी। मर्यादा महोत्सव के अवसर पर उसी वर्ष आचार्यवर ने साध्वी झमकूजी को साध्वी कानकंवरजी श्रीडूंगरगढ के साथ भेजने का निर्देश दिया।

साध्वीप्रमुखा जेठांजी नवदीक्षिता साध्वी झमकूजी के विवेक वैराग्य एवं व्यवहार से बहुत प्रसन्न थी। उनको उनमें विकास की संभावना स्पष्ट नजर आ रही थी। इसलिए उन्होंने डालगणी को विनम्र शब्दों में कहा – गुरुदेव! साध्वी झमकूजी आपकी सेवा में रहने योग्य साध्वी है। उसके हाथ में कला है, व्यवहार में विवेक है और कर्मठ है। यदि आपकी छत्रछाया मिली तो अच्छा विकास कर सकती है। आचार्यवर ने साध्वीप्रमुखा की बात का समर्थन करते हुए कहा – साध्वी कानकंवरजी को एक योग्य साध्वी की अपेक्षा है।

साध्वी कानकंवरजी के पास उन्हें एक वर्ष रहने का मौका मिला। साध्वी झमकूजी ने विनय नम्रता, सेवा, कर्मठता एवं कला के साथ साधुजनोचित आचार व्यवहार से सबको प्रभावित किया। सबके मन को मोहित कर लिया। यह उनके साधना का प्रथम वर्ष था पर कर्त्तृत्व का उजाला कम समय में ही अपना प्रकाश बिखेर देता है। ठीक साध्वी झमकूजी के कर्त्तृत्व की उजली रेखाएं प्रारंभ से ही संघ क्षितिज पर उभरने लगी।

संघीय जीवन का प्रारंभ : साध्वीप्रमुखा का दायित्व

महासती झमकूजी को सप्तमाचार्यश्री डालगणी का असीम वात्सल्य मिला पर बहुत कम समय तक। अष्टमाचार्यश्री कालूगणी की अनुशासना में उनके व्यक्तित्व को शतशाखी विस्तार मिला। साध्वी झमकूजी में महानता के घटक तत्त्व बीज रूप

में थे। उन्हें अनुशासन में रहना प्रिय था तो अनुशासन करने में वे उससे अधिक दक्ष थी। उनकी गुरु भक्ति, सेवा भावना और समर्पण भावना अद्‌भुत थी। वे पुरुषार्थी कर्मठ और कला की साक्षात प्रतिमा थी। निर्भीकता, श्रमशीलता और आचारकुशलता का त्रिवेणी संगम उनके जीवन में था। उनकी अनुशासन क्षमता एवं कार्यकुशलता का उपयोग साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी की निश्रा में ही प्रारंभ हो गया था। जब महासती कानकंवरजी वृद्ध एवं अस्वस्थ हो गईं तब साध्वी झमकूजी एक निर्विभागीय मंत्री की भांति पूज्य कालूगणी की देखरेख में साध्वी संघ की व्यवस्था का काम संभालती। आचार्यश्री कालूगणी को साध्वी झमकूजी की क्षमताओं पर भरोसा था, उनके कर्त्तृत्व पर विश्वास था और उन्होंने अपनी अंतिम मेवाड़ यात्रा में बहुत उपयोग किया। उन्होंने कालूगणी का अप्रतिम वात्सल्य और कृपाभाव प्राप्त किया। साध्वी झमकूजी का सेवा और समर्पण का मूल्यांकन करते हुए अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अष्टमाचार्य श्री कालूगणी ने उनको विशेष रूप से सम्मानित किया। कालू यशोविलास में उसका उल्लेख करते हुए आचार्य तुलसी ने लिखा है –

अति सेवा साझी झमकूजी भारी रे।
काम रू वजन री अंकित रिझवारी रे।।

सं. 1993 भाद्रव शुक्ला नवमी। गंगापुर में आचार्य श्री तुलसी के पदाभिषेक का ऐतिहासिक कार्यक्रम आयोजित हुआ। उस दिन आचार्य तुलसी ने चतुर्विध धर्मसंघ के मध्य स्वर्गीय साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी के रिक्त स्थान पर साध्वीप्रमुखा झमकूजी की विधिवत नियुक्ति की और प्रकट रूप में कालूगणी द्वारा प्रदत्त बक्शीश का उल्लेख करते हुए समुच्चय काम और वजन की पुनः बक्शीश की। साध्वीप्रमुखा के रूप में महासती झमकूजी को प्राप्त कर चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण बन गया।

झमकूजी तेरापंथ धर्मसंघ की छट्ठी साध्वीप्रमुखा बनीं। उन्होंने आचार्यश्री तुलसी के निर्देशानुसार साध्वी समाज का कुशलता पूर्वक नेतृत्व किया। चतुर्विध धर्मसंघ में उनकी ख्याति दिन प्रतिदिन बढती रही। आचार्यश्री तुलसी ने उनके कर्त्तृत्व को समय–समय पर सम्मानित कर उनके गौरव को अभिवृद्धि दी।

सं. 1995 मृगसर महीने में आचार्यश्री चूरू में प्रवासित थे उस समय उन्हें हाजरी में खड़े होने की बक्सीस की।

सं. 1999 माघशुक्ला सातम मर्यादा महोत्सव के समय श्रीडूंगरगढ में आहार–पानी के विभाग से मुक्त किया।

सं. 2001 माघ शुक्ला सप्तमी को 13 साध्वियों की बक्सीस की। साध्वीप्रमुखा झमकूजी का कदाचित् कारण योग से आचार्यों से अलग रहना पड़े तो वे कम से कम

तेरह साध्वियों से रहेंगी।

विनय की प्रतिमूर्ति

साध्वी झमकूजी ने सदैव विनय की धुरी के इर्द गिर्द परिक्रमा की। उनके लिए विनय ही तप था, विनय ही धर्म था। वे मन वचन काया से विनम्र थी। यदि कहा जाए कि उनका परम उपास्य विनय था तो शायद अत्युक्ति नहीं होगी। यद्यपि उनके पास न पुस्तकीय ज्ञान था और न स्कूल की कोई डिग्री थी। विनय से अर्जित अनुभव ज्ञान की उनके पास अपार सम्पदा थी जो उन्हें असाधाणता प्रदान करती थी। वे जीवन का पथदर्शन करने वाली महान प्रशिक्षिका थी, यह निर्विवाद तथ्य है। उन्होंने आगम, थोकड़े, व्याख्यान गीत आदि लगभग सात हजार गाथाएं कंठस्थ की। उनका स्वाध्याय क्रम भी सुव्यवस्थित था यही कारण था कि कंठस्थ ज्ञान की सतत स्मृति बनी रही। आगमों के वाचन का क्रम भी चलता रहता था। उन्होंने अनेक आगमों का वाचन किया। कई आगम की वाचना उन्हें कालूगणी से लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आचार्यश्री तुलसी ने उनकी इस असाधारण विशेषता का वर्णन करते हुए कालूयशोविलास में लिखा है –

पुस्तकीय शिक्षा स्यूं वंचित श्री झमकूजी शिक्षित जीवन जीयो।
श्रमणी–गण में श्री गुरु कृपया, बो जगमगतो दीयो रे।।

कुशल कलाकार साध्वी

साध्वी झमकूजी की कला प्रतिभा विलक्षण थी। पारम्परिक कला को अपनी प्रतिभा से नवीन आकार देने में वे विशेष दक्ष थी। हस्त–लाघव एवं कला कौशल के साथ अपनी नई स्फुरणा से उन्होंने कलात्मक कृतियों का निर्माण किया। वे कृतियां संघीय उपलब्धि के साथ जन–जन के आकर्षण का केन्द्र बन जाती। उनकी कला में कौशल के साथ एकाग्रता और स्फूर्ति का अद्‌भुत सामंजस्य था। उनकी सिलाई में सौन्दर्य, सूक्ष्मता का योग था। उनके सिलाई किए गए कपड़ों को देखते ही मन प्रसन्न हो जाता। 15 मिनिट में वे एक चोलपट्टे की सिलाई कर देती।

रजोहरण बनाने और बांधने में श्रम और कला की अपेक्षा रहती है। साध्वीश्री झमकूजी दीक्षा लेते ही प्रथम चातुर्मास में इस कला में पारंगत हो गई थी। सं. 1966 का चौमासा उन्होंने साध्वी कानकुमारीजी के साथ बीकानेर में किया। उस चातुर्मास में उन्होंने 11 (ग्यारह) रजोहरण बनाए, उसमें साध्वी झमकूजी की अत्यधिक श्रम–संभागिता रही। कहते हैं कि वे एक दिन में रजोहरण की 25 फलियां गूंथ लेती। वे आचार्यश्री कालूगणी व आचार्यश्री तुलसी का रजोहरण इतना कलात्मक बांधती कि एक भी धागा इधर उधर नहीं होता।

हस्तलिखित पुस्तकों को बांधने की कला में भी पूर्णतः कुशल थी और पुस्तकों की सार संभाल वे बड़ी जागरूकता से करतीं। उनकी बांधी हुई पुस्तकों को पानी में बहा देते तो भी वह पुस्तक पानी में नहीं डूबती। एक बार मेवाड़ यात्रा में रास्ते में वर्षा आ गई। साध्वी झमकूजी वर्षा से स्वयं भीग गई पर पुस्तकों को सुरक्षित बचा लिया। गंतव्य स्थल पर पहुंचकर स्वयं कालूगणी ने उन पुस्तकों की प्रतिलेखना की पर एक भी पत्र खराब नहीं हुआ।

इसी तरह पात्र निर्माण कला भी उनकी विलक्षण थी। रंगाई का कार्य जितनी चतुराई से करती, पात्रियों के उपयोग में कलात्मक उपाय काम में लेती। एक सन्त एक बार गोचरी गए। उन्होंने पात्री में पात्री डाल दी और उसमें गर्मद्रव्य बहर लिया। पात्री फसी तो ऐसी फसी कि उपाय कर करके सभी संत थक गए। आखिर बात कालूगणी के कानों में पहुंची। पूज्य कालूगणी ने कहा – पात्री झमकूजी को दे दो, वे संभव है निकाल देंगी। साध्वी झमकूजी ने पात्रियों के बीच पानी के छींटे देकर कलात्मक ढंग से सुरक्षित निकाल दी। वे वस्तुत उपायज्ञ थी, किस समय किस काम में कौन–सा उपाय काम आ सकता है, इसकी वे विज्ञ थी।

कला के क्षेत्र में बिना कसी प्रशिक्षण वे अपनी प्रतिभा से नए–नए स्रोत ढूंढ लेती और उन्हें एक नवीन कलात्मक रूप में प्रस्तुत कर देती। समस्या थी हस्तलिखित पुस्तकों की पानी से सुरक्षा कैसे की जाए? विहार करते समय अचानक वर्षा आने पर कठिन परिस्थिति पैदा हो जाती। साध्वी झमकूजी ने इसका एक उपाय खोजा – कपड़े पर मोम की गहरी परत लगाकर उसे खोली का रूप दे दिया। यह प्रयोग तेरापंथ धर्मसंघ में दीर्घकाल तक प्रचलित रहा। जब प्लास्टिक कवर सहजता से उपलब्ध होने लगे, उनका उपयोग स्वतः बन्द हो गया।

साध्वीप्रमुखा झमकूजी की कला साधना से सैकड़ों साध्वियों को प्रशिक्षण मिला और कला को बहु आयामी विस्तार मिला। आचार्यश्री कालूगणी का सं. 1989 का चातुर्मास सरदारशहर में था। साध्वी केसरजी व्याख्यान में काम आने वाली हरी पट्टियां बना रही थी। उन्होंने भरसक कोशिश की पर उसके चारों ओर हिंगलू की कोर बांध नही सकी। प्रयत्न करते–करते वे परेशान–सी हो गई। आखिर वे साध्वी झमकूजी के पास आई और बोली – क्या करूं पट्टी की कोर कभी ऊपर चली जाती है और कभी नीची, कभी टेढी मेढी तो कभी इतनी हल्की हो जाती है कि पाटी का सौन्दर्य सुरक्षित नहीं रहता? साध्वी झमकूजी ने कहा एक बार में लगाकर देख लेती हूँ। कहते हैं पट्टी हाथ में ली और हिंगलू अंगुली पर लगाकर ऐसे चलाई मानो यंत्र चल रहा है। एक ही बार में समरेखा में पूरा किनारा बाँध दिया और देखने वाले को ऐसा लगा पन्ने को माणक से संयोजित कर दिया हो। साथ ही साथ वहां उपस्थित

कलाकार साध्वियों को कोर बांधने का प्रशिक्षण भी दे दिया। इसी पुट्ठा थापने की भी आपकी अपनी शैली थी। आचार्यश्री तुलसी स्वयं कलाकार थे उनके मुखारविन्द से समय–समय पर साध्वी झमकूजी के कला–कौशल की प्रशंसा सुनने को मिलती रहती थी। उन्होंने साध्वी झमकूजी के लिए लिखा है –

अति कला–कुशल कारीगर ही हाथां री।

वजनदार व्यक्तित्व : वजनदार कृपा

महासती झमकूजी का व्यक्तित्व अनेक–अनेक गुणों का समवाय था। विनय नम्रता के साथ आचार कुशलता, पापपीरूता आत्मार्थिता उनके जीवन व्यवहार में प्रतिबिम्बित थी। नीतिनिष्ठा, नियमनिष्ठा, गुरुनिष्ठा, संघनिष्ठा और कर्मनिष्ठा का पंचामृत उनके जीवन में सतत प्रवाहित था। कर्त्तृत्व क्षमता, मौलिकता और सहनशीलता उनमें नैसर्गिक थी।

संघ और संघपति के प्रति उनके मन में अखण्ड आस्था भाव था जो सबको प्रभावित करता था। आचार्यों की सेवा इंगित की आराधना और आज्ञा की अनुपालना के सामने उनके लिए सब कुछ गौण था। उन्होंने कालूगणी की जिस समर्पण भाव से सेवा और दृष्टि की आराधना की, उसका मूल्यांकन करते हुए आचार्य तुलसी ने लिखा –

कालू–गुरु की करुणा–दृष्टी पल पल भल आराधी।
आनंदित चित्त प्रभु–परिचर्या, सदा सवाई साधी।।
इंगित अरू आकार सुगुरु रा विरला ही लख पावै।
झमकूजी री आ अधिकाई, किया विसारी जावै।।

साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी अस्वस्थ होने की वजह से और विशेष रूप से जब उनकी नेत्र ज्योति क्षीण हो गई तब आचार्यश्री की अनुज्ञा से साध्वियों की सार संभाल का काम करना, आचार्यों के उपकरणों की प्रतिलेखना करना, आचार्यवर के भोजन के समय उपस्थित रहना आदि सारे काम साध्वी झमकूजी ने संभाल लिए। सं. 1991 में साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी राजलदेसर में स्थिरवासी बन गई और आचार्यश्री कालूगणी ने मारवाड़ मेवाड़ की यात्रा प्रारंभ की उस समय आचार्यवर की सेवा का लाभ साध्वी झमकूजी को मिला। साध्वियों की व्यवस्था एवं सार संभाल का कार्य वे तब से व्यवस्थित रूप से करने लगी। आचार्य कालूगणी उनकी कार्य दक्षता व्यवस्था कौशल एवं सेवाभावना से परम प्रसन्न थे।

उस समय राजस्थान के अविकसित गांव थे और साधन सुविधाओं का सर्वथा अभाव था। साध्वी झमकूजी पहले दिन मध्याह्न में विहार कर अगली मंजिल पहुंच जाती, वहां स्थान पाट बाजोट आदि की समुचित व्यवस्था कर महान निर्जरा करतीं।

गर्मी के मौसम हो या भले सर्दी की प्रातःदिन मध्याह्न का विहार करना श्रम साध्य काम होता था।

सं. 1992 का उदयपुर चातुर्मास सम्पन्न कर आचार्यवर ने मालवा यात्रा की ओर प्रस्थान किया। उस समय कुछ साध्वियों के सिंघाडों की व्यवस्था करना आवश्यक था। उस समय कालूगणी ने साध्वी झमकूजी को पीछे राजनगर रह कर कार्य सम्पादन कर मालवा आने का निर्देश दिया तथा आचार्यवर स्वयं विहार कर आगे पधार गए। कुछ दूर आगे पधार कर आचार्यश्री ने साध्वी झमकूजी के नाम पत्र दिया। वह आचार्य श्री का विश्वास और साध्वी झमकूजी के कर्त्तृत्व की अभिव्यक्ति देता है –

शिष्यणी झमकूजी आदि स्यूं सुखसाता बंचै और बठै थारो काम देणै लेणै रो अच्छी तरह स्यूं करीज्यो। जड़ावांजी कनलां आर्यां दोय आवै है, जकां नै पाछा मेलणा है, जकां नै थली वाला सिंघाडा साथै मेल दीज्यो और बगतावरजी हुलासांजी, लाधूजी – यांरों काम करके थे संवलै रास्ते विहारकर आयज्यो और पूनांजी लारै है उवारै कनै तंतु है जो उवारै कल्प स्यूं अधिक है। जको कोई सिंघाडा नै भलाय दीज्यो। अबै कोई सिंघाडा वाला नै अठीनै दर्शण करण नै आवणो नहीं। जठीनै पाना दीया है बठीनै विचरो और मालूजी चांदकवरजी नै तंतु देवो जको कोई सिंघाड़ा नै भलाय दीज्यो जिको उवां नै देय देसी। और थानै बठै काम ठीक दीसै ज्यूं करीज्यो। सं. 1992 पौष वदि 5।

साध्वी झमकू की शारीरिक संरचना भी प्रभावशाली थी। ऊंचा कद सुगठित शरीर, गेहूआं रंग और मुस्कराता चेहरा आने वाले दर्शको को प्रथम दर्शन में ही आकृष्ट कर लेता। उनकी वाणी में अतिशय माधुर्य था। वे श्रावक समाज की भावना का भी बड़ा सम्मान/समादर करती थी। उनकी स्मृति इतनी अधिक तेज थी, एक बार जिनको देख लेती उन्हें वर्षों बाद भी पहचान लेती। उनकी 'जीकार' देने की शैली उस युग के लोग आज तक भी याद करते हैं। जो भी भाई बहिन वन्दना करते प्रायः सबको नामोल्लेख पूर्वक जीकारा देती और जीकार देने का अन्दाज ही निराला था ऐसा साधु साध्वियों एवं श्रावक श्राविकाओं से सुना जा सकता है। आशीर्वाद में उठा हाथ कल्याण की कामना और मधुर वाणी में प्रेरणा जब देती लोग हर्ष से गद्‌गद हो जाते। इसी की बदौलत लोगों का बार–बार दर्शन करने का मन होता।

गोचरी की प्रार्थना करने वाले श्रावक श्राविकाओं को भी प्रायः निराश नहीं करती। स्वयं के श्रम की भी परवाह न करके सबको जहां तक बन सकता पात्रदान का लाभ देती। इसके साथ त्याग प्रत्याख्यान और पात्र दान के गहरे संस्कार भरने का प्रयत्न करतीं। तत्त्वज्ञान के साथ संघीय संस्कार भरती और स्वाध्याय ध्यान जप

व प्राथमिक ज्ञान कंठस्थ करने की प्रेरणा देती।

वे दिल की बहुत उदार थी, साधु साध्वियों की आवश्यकता पूर्ति उदारता के साथ करती। माधुर्य और सौहार्दपूर्ण व्यवहार से उन्हें आत्मीयता के धागे से बांध लेती। जो वस्तुएं पास में होती बड़ी उदार भाव से वितरित करती। कभी किसी वस्तुओं का अभाव होता, अथवा वे कोई उपकरण देने में असमर्थ होती तो सामने वाले व्यक्ति को अपने आत्मीयता से इतनी संतुष्ट कर देती कि वस्तु न मिलने पर भी उसका अभाव उनको खटकता नहीं था। जो उपकरण बना कर दिया जा सकता था, उसके लिए वे समय पर स्वयं श्रम कर लेती।

घटना सं. 1986 की है। पूज्यपाद कालूगणी उस समय लाडनूं विराज रहे थे। आहार के समय साध्वी झमकूजी आचार्यवर की सेवा में उपस्थित थी। आचार्यश्री कालूगणी ने कहा – सन्तों के लिए मुखवस्त्रिकाओं की आवश्यकता है और आज ही लेकर आना है। अपने प्रवास स्थल आकर मुखवस्त्रिकाएं संभाली तो उतनी थी नहीं जितनी संख्या में आचार्यश्री ने मंगाई थी। उन्होंने आहार किया और साध्वी कमलूजी चूरु और सजनाजी बीकानेर को बुलाया और स्वयं उनके साथ मुखवस्त्रिका जमाने बैठ गई। जब प्रतिलेखन करने का समय हुआ तब तक तीनों ने मुखवस्त्रिकाएं तैयार करके आचार्यवर के चरणों में रख दी। यह उनके श्रमशील कला पूर्ण व्यक्तित्व का उदाहरण है।

शल्य क्रिया कौशल

चिकित्सा की दृष्टि से शल्य क्रिया शब्द का अर्थ भी आम आदमी नहीं जानता। अंग्रेजी दवा, इंजेक्शन तथा ऑपरेशन.....ये सभी जानने वाले लोगों का प्रतिशत बहुत कम था। यदि साधु जीवन में कभी ऐसा अवसर आ जाता तो कोई साहसी हिम्मतवान प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति डाक्टर के देखरेख में काम निकालने का प्रयत्न करता। ऐसे हस्तलाघव वाले साधु साध्वियों में एक नाम साध्वी झमकूजी का था।

सं. 1994 में साध्वी मूलांजी लूणकरणसर वालों के भुजदण्ड पर बहुत बड़ा फोड़ा हो गया। घरेंलू उपाय करते–करते थक से गए पर वह ठीक नहीं हुआ। एक दिन डाक्टर का योग मिल गया। उन्हें वह फोड़ा दिखाया उन्होंने कहा – यह घाव इतना गहरा हो गया है, ऑपरेशन बिना ठीक नहीं होगा। साध्वीप्रमुखा झमकूजी ने कहा – आप जैसे बताएंगे मैं आपकी उपस्थिति में शल्य क्रिया कर देती हूँ। डाक्टर के निर्देशानुसार एक सधे हुए डाक्टर की भांति उन्होंने सारा काम कर लिया और डाक्टर आश्चर्यचकित हो उन्हें देखता ही रहा। डाक्टर ने कहा – मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि डाक्टरी शिक्षा प्राप्त किए बिना एक साध्वी ने इतनी कुशलता से कैसे

शल्य क्रिया कर दी?

एक बार स्वयं साध्वीप्रमुखाजी के दाहिने हाथ की मध्यमा अंगुली में फोडा हो गया। उन्होंने आसपास रहने वाली साध्वियों से शल्य क्रिया करने के लिए कहा। पर साध्वियां हिचकिचा रही थी, साहस नहीं कर पा रही थी। आखिर अपने बाएं हाथ से दाएं हाथ की शल्य क्रिया की पर बाएं हाथ से ऑपरेशन करते समय मध्यमा अंगुली का मांस अधिक कट गया और वह अंगुली थोड़ी टेढी हो गई जो जीवन भर टेढी ही रही।

साध्वी फूलाजी (जयपुर) को दमे की बीमारी थी। कभी–कभी उनका श्वास इतना तीव्र हो जाता कि एक क्षण का चैन भी उनके लिए दूभर हो जाता। एक दिन ऐसी ही स्थिति बनी हुई थी। उन्हें देखकर डाक्टर ने तत्काल इंजेक्शन देने की सलाह दी। उस समय सूर्यास्त होने वाला था। साध्वीप्रमुखा ने कहा – आप जल्दी सीरींज को दवा से भरें, सूर्यास्त के बाद कुछ नहीं होगा। डाक्टर ने सीरींज को भर दिया पर उनके मन में प्रश्न था कि कौन देगा। साध्वीप्रमुखा ने सीरिंज हाथ में लिया और कुशलता पूर्वक इंजेक्शन लगा दिया।

यद्यपि साध्वीप्रमुखा झमकूजी ने डाक्टरी प्रशिक्षण नहीं लिया था पर उनकी सेवा भावना और कला कौशल ने उनको डाक्टर बना दिया था। एक बार साध्वी कमलूजी जयपुर की हथेली में एक जहरीला फोड़ा हुआ। फोड़े की प्रारंभ अवस्था ही भयंकर दिखाई दे रही थी। उन दिनों इसी प्रकार के जहरीले फोड़े जिनके हाथों में हुए सबको विकृति का शिकार होना पड़ा। साध्वी कमलूजी के फोड़े को देख मंत्री मुनि श्री मगनलालजी भी चिंतित हो गए। उन्होंने सोचा फोड़े की तत्काल समुचित चिकित्सा आवश्यक है। वह समय शीतकाल का था। आचार्यवर का विहरण भी ऐसे क्षेत्रों में हो रहा था जहां कहीं कुशल चिकित्सक का योग नहीं मिला।

साध्वीप्रमुखा झमकूजी ने बड़ी सूक्ष्मता के साथ अंगुली के पोर से लेकर कंधे तक पूरे हाथ का निरीक्षण किया पर फोड़े का केन्द्र बिन्दु पकड़ में नहीं आया। पूरा हाथ टमाटर जैसा लाल था और पर्याप्त सूजन से फूला हुआ था। उन्होंने सोचा क्या किया जाए? किसकी सलाह लूं? आखिर अपनी बुद्धि और अनुभव का उपयोग कर पुलटिस बना कर हाथ के दोनों ओर लगाकर बांध दी। एक दो तीन चार बार अपेक्षा लगी बांधती रही इससे सूजन कम हुआ और फोड़ा गेन्द के आकार जितना दिखाई देने लगा। फिर शल्यचिकित्सा प्रारंभ की। कहते हैं – तीन इंच लम्बा चीरा लगाया। इतना अधिक मवाद निकला कि एक बार में ऐसा लगा कि हाथ बहुत हल्का हो गया। उस व्रण की तीन महीने तक प्रतिदिन अपने हाथ से ड्रेसिंग साध्वीप्रमुखा स्वयं करती रही। धीरे–धीरे वह व्रण ठीक हो गया। सर्वाधिक प्रसन्नता की बात यह थी कि साध्वी

कमलूजी का हाथ सुरक्षित रह गया। हाथ किसी प्रकार से विकृत नहीं हुआ। यह उनके सेवा भाव और करुणाभरे हृदय का चमत्कार था कि अनगिन व्यक्ति शारीरिक पीड़ा से मुक्त हुए।

अन्धविश्वास पर प्रहार

राजस्थान में उस समय शिक्षा का सर्वथा अभाव था। पुरुष मात्र व्यावसायिक दृष्टि से अपेक्षित सामान्य ज्ञान आवश्यक समझते थे। और स्त्रीशिक्षा की तो अपेक्षा ही महसूस नहीं होती थी। उसके परिणाम स्वरूप अन्धविश्वास और कुरूढियों को पनपने का मौका मिला। साध्वीप्रमुखा झमकूजी समय–समय पर अन्धविश्वास पर गहरा प्रहार करती थी। एक बार एक प्रतिष्ठित परिवार में एक बहिन उपद्रव ग्रस्त हो पूरे परिवार को अशान्त बना रही थी। परिवार के लोगों ने अनेक उपचार और उपाय कराए पर वे दिन प्रतिदिन उग्र हो सब को तंग करने लगी। एक दिन परिवार के एक वरिष्ठ सदस्य ने साध्वी प्रमुखा को निवेदन किया – हम इस समस्या से कैसे मुक्त हो सकते हैं? हमारे लिए तो देव गुरु धर्म ही त्राण है। साध्वीप्रमुखाजी को न विश्वास था न रुचि पर परिवार की दयनीय स्थिति देख वे उनके घर गई। बहिन का जो रूप देखा उन्होंने ललकारते हुए कहा – एक भले घर घराने की महिला होकर तुम क्या कर रही हो। यदि तुममें कोई देव प्रविष्ट हैं तो मैं कहती हूँ मेरे सामने आए, मैं उनसे बात करना चाहती हूँ अन्यथा मुझे ऐसा लगता है यह सारा मनोविकार और भ्रान्त धारणा है। नमस्कार महामंत्र का जप करो उसके सामने कोई निम्नस्तरीय आत्मा टिकती नहीं और उच्च स्तर के देवता कभी दुःख देते नहीं। प्रचण्ड आवाज में मंगलमंत्र सुन वह बहिन सामान्य बन गई और घर में शांति व्याप गई।

गतिशील एवं उपायज्ञ साध्वी

साध्वीप्रमुखा झमकूजी के पैरों की गति और चिन्तन की स्फूर्ति – दोनों तेज थी। उनके पैदल चलने की गति असाधारण तेज थी, इसलिए जब कभी अपेक्षा होती वे शीघ्रगामी बनकर कार्य कर लेती है। सं. 1981 का पावस करने कालूगणीराज चूरु पधार रहे थे। चातुर्मास के लिए शहर में प्रवेश करने का मुहूर्त सुबह साढे सात बजे तक का था। आचार्यवर जिस स्थान पर विराज रहे थे वहां से शहर की दूरी लगभग 6 मील की थी। आचार्यवर के घुटनों में दर्द रहता था अतः कम समय में लम्बी मंजिल तय करने में कठिनाई थी। आचार्यश्री ने साध्वी झमकूजी का इस काम के लिए चुनाव किया और उन्हें जल्दी समय पर पहुंचने का निर्देश दिया। गुरुदेव के कथनानुसार साध्वी झमकूजी वहां से प्रस्थान कर सही समय पर गंतव्य स्थान पर पहुंच गई।

गति की तरह उनके मस्तिष्क में चिन्तन की नई स्फुरणा तीव्र गति होती। कई बार ऐसे लगता कि साध्वी झमकूजी का चिन्तन संकट मोचक बनकर उभरता है।

अथवा यह कहा जा सकता उनका स्फूर्त चिंतन समस्या का समाधान बन जाता। सं. 1978 में आचार्यश्री कालूगणी का बीदासर में प्रवास था। उस समय वहां सन्तों में सतरंगी और साध्वियों में नवरंगी तपस्या हुई। पौष का महिना था। पारणे में अुकाली की आवश्यकता थी। एक साथ इतनी ज्यादा अुकाली कैसे उपलब्ध होगी?

साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी ने यह बात साध्वी झमकूजी के सामने रखी। साध्वी झमकूजी ने सुझाव दिया – सर्दी का मौसम है, अच्छा उबलता गर्म पानी मिल जाएगा। उसमें धनिया मिश्री कालीमिर्च डालकर अुकाली बना लेंगे। वैसा ही किया और पारणे के दिन पर्याप्त अुकाली की व्यवस्था हो गई। आचार्यवर के सामने जब साध्वियां अुकाली लेकर आई तब आचार्यश्री ने पूछा – इतनी अुकाली कहां मिली? साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी ने निवेदन किया – गुरुदेव! यह सारी साध्वी झमकूजी के दीमाग की उपज है।

निर्भयता की नजीर

एक बार आचार्य तुलसी छापर में विराज रहे थे। साध्वीप्रमुखा झमकूजी का उस समय नाहटों की हवेली में प्रवास था। गर्मी का मौसम और रात्रि का समय था। साध्वीप्रमुखाजी पट्ट पर लेटी हुई थी संभवतः उनको नींद आ गई थी। एक काला सर्प उनके पेट पर चढ़ा, उस समय उनको सांप का आभास हो गया। वह धीरे–धीरे खिसकने लगा। उन्होंने निर्भय निश्चिंत बिना हिलेडुले अपनी पछेवड़ी को झटका दिया और वह धरती पर चला गया। तभी उन्होंने पास में सोई साध्वी चांदाजी (गोगुन्दा) को जगाकर कहा – अभी यहां से एक काला सांप उतरा है, आसपास सोई साध्वियों को सावधान कर दो। साध्वियों ने सारी जानकारी कर साध्वीप्रमुखाजी से एक बार नींद न लेने का निवेदन किया पर उनके मन में भय की तनिक रेखा भी नहीं थी और न अनिष्ट की आशंका थी। उन्हें नहीं लगा कि जहरीले सांप ने कुछ अहित किया है। वे शान्त भाव से समाधिस्थ थी और उन्होंने निर्भयतापूर्वक नीन्द ले ली।

उदार मनोवृत्ति

साध्वीप्रमुखा झमकूजी की मनोवृत्ति उदार थी, चिन्तन व्यापक था। वे साधु साध्वियों की अपेक्षा और मांग को यथासंभव पूरा करने का प्रयत्न करती। सबको सहयोग देना अपना कर्त्तव्य समझती थी। समय पर अपेक्षा लगती तो साध्वीप्रमुखाजी अपने पास रहने वाली साध्वियों को भी भेज देतीं। एक बार एक भाई ने विनम्रता से निवेदन किया – साध्वीप्रमुखाजी! आप अपने साथ वाली साध्वियों को बहिर्विहारी साध्वियों के साथ न भेजा करें। क्योंकि समय पर उन साध्वियों की आपको भी जरूरत पड़ सकती है। साध्वीप्रमुखाजी ने धीर गंभीर स्वर में कहा – बहिर्विहारी साध्वियां संघ का काम करती हैं। उन्हें साध्वियों की बहुत अपेक्षा रहती है, अतः

उनका सहयोग करना मेरा फर्ज है। मैं तो गुरुदेव के साथ रहती हूँ, यहां मुझे विशेष अपेक्षा नहीं रहती।

आत्मीयवात्सल्य

साध्वी नजरकंवरजी लाडनूं को दीक्षा लिए बहुत थोड़ा समय हुआ था, उनके शरीर में फुंसिया ही फुंसिया हो गई। उनके योग से शरीर में खाज ही खाज होने लगी। फुन्सियों में मवाद भर जाने से असह्य वेदना! बाल साध्वी वेदना से व्यथित – सी हो गई। एक दिन किसी साध्वी ने मजाक में कह दिया – दीक्षा ली तब से तुम बीमार हो क्या रोग को भी दीक्षा देकर साथ लाई हो? ऐसे शब्द सुनकर बाल साध्वी को कैसा–कैसा ही लगना स्वाभाविक था। दूसरी ओर साध्वी झमकूजी जैसी करुणार्द्र वात्सल्य मूर्ति थी जो सेवाभावना के साथ बाल साध्वी को जल्दी से जल्दी ठीक करूं, यही सोचती रहती। कभी दवा लगाकर कहती – नानकी! मैं जब तक गोचरी से वापिस न आऊं, तब तक धूप में बैठी रहना। गोचरी से आकर सबकी सफाई कर दूंगी। वे हल्दी और घी का पेस्ट लगाकर जिस आत्मीयता से सहलाती, नवदीक्षिता साध्वी की आधी वेदना वैसे ही कम हो जाती। साध्वीश्री की सेवाभावना से थोड़े दिनों में ही साध्वी नजरकंवरजी स्वस्थ हो गई और साध्वी झमकूजी के कृपापूर्ण वात्सल्य भाव से ऐसी बंधी कि ताजिन्दगी उसे कभी विस्मृत नहीं कर पाई। वे भले दूर रही या नजदीक सदा श्रद्धा से अभिभूत रही।

एक बार एक साध्वी पर साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी ने अनुशासनात्मक कार्यवाही की, गलती के लिए उपालंभ भी दिया और दण्ड के रूप में उस रात्रि में कक्ष में शयन न करने को कहा। वह शीत काल का समय था। साध्वी झमकूजी ने देखा वे साध्वीजी आंगन में बैठी है और उनके पास उपकरण भी कम है। वे सो नहीं पाई। महासती कानकंवरजी का निर्देश उनके ध्यान में था। वे अपने सारे कपड़े ले जाकर उनको दे दिए। साध्वीजी ने लेने से इन्कार किया पर आखिर उनका आग्रह स्वीकार करना पड़ा। उसके साथ संवेदनामय जो सही समझ दी वह उनको धैर्य के धागे में बांधने वाली थी। यह साध्वी झमकूजी की उदारता और कोमलता की एक ऐसी अविस्मरणीय घटना बन गई। वे साध्वीजी संभवतः जीवन भर इस करुणा को नहीं भूल पाई होगी। ऐसा वही कर सकता है जो दूसरों के सुख दुःख के साथ स्वयं स्पंदित होता है।

समता की साधिका

समता का विकास साधक का पहला लक्ष्य होता है। अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने आपको अप्रभावित रखना ही सबसे महत्त्वपूर्ण साधना है। पर वह कहने या मानने में जितनी सहज, सरल सुगम लगती है आचरण में उतनी ही

अधिक कठिन है। इस सन्दर्भ में साध्वीप्रमुखा झमकूजी की साधना विकसित थी। सर्दी गर्मी धूप वर्षा आदि प्राकृतिक प्रकोपों में प्रायः उनकी सहजता खण्डित नही होती। शारीरिक रुग्णता की स्थिति में भी उनका चिन्तन स्पष्ट रहता वेदना के क्षणों में वे कहती – मानसिक भावनात्मक स्तर पर साता है, समाधि है। असात वेदनीय हमारे अपने बांधे हुए है तो समभाव से सहन करने का प्रयत्न करना चाहिए। सचेतन अवस्था में सर्दी गर्मी .....सब अपना प्रभाव दिखाएंगे ही। वे अपनी इस बात को प्रायः एक राजस्थानी दोहे से व्यक्त करती –

सीयालै में सी घणो, उनालै में लूआं।

चौमासै माच्छर घणा, ए दुःख जासी मूआं।

जब साध्वीप्रमुखाजी इस दोहे का उच्चारण करती तब लगता वे मंत्रोत्त्चारण से अपने आपको भावित कर रही हैं। इससे साध्वियों को प्रेरणा मिलती और परीषहजयी दृष्टिकोण का निर्माण होता।

सकारात्मक दृष्टिकोण

उन दिनों कालूगणी का स्वास्थ्य अस्वस्थ था। लम्बे समय से बुखार आ रहा था। आयुर्वेदाचार्य पण्डित रघुनन्दन ने काढा लेने की सलाह दी। महासती झमकूजी प्रतिदिन अपने हाथों से काढा तैयार करती। एक दिन काढा तैयार कर हाथ धोने के लिए आप मुड़ी ही थी कि एक बाल साध्वी उधर से आई, उस काढे को पांव के ठोकर से बिखेर दिया। वही खड़ी स्थविर साध्वी ने कहा – ईर्या समिति का ध्यान नहीं रखा, सारा कार्य महासतीजी ने कितनी मेहनत से किया। समय पर दवा का उपयोग नहीं हो सकेगा।

सुनते ही बाल साध्वी का भयभीत होना स्वाभाविक था। महासती झमकूजी ने कहा – यह मेरी ही गलती थी, मैंने पात्र को सुरक्षित स्थान पर नहीं रखा, इस बाल साध्वी का क्या दोष? अब किसी को कुछ मत कहो, समय पर काम तो होगा नहीं। सचमुच धैर्य गांभीर्य युत सकारात्मक बात सुन बाल साध्वी के दिल की धड़कन जम गई और भविष्य में ध्यान रखने का संकल्प लिया। नए साधु साध्वियों की जीवन की जड़ें ऐसे प्रसंगों से गहरी बनती है और साधना में अप्रमत्त रहने का भाव जागता है।

परीषहजयी

पहले गुरुकुलवास में साध्वियां प्रायः हमेशा अगली मंजिल के लिए पहले दिन मध्याह्न में विहार किया करती थी। इसके पीछे स्थान का अभाव तो था ही संभवतः और भी कुछ कारण रहे होंगे। कुछ भी हो गर्मी की मौसम में मध्याह्न में विहार करना बड़ा कष्टप्रद होता है। एक बार महासती झमकूजी मध्याह्न में विहार कर रही थी।

गर्मी का मौसम था। मुनिश्री चौथमलजी ने कहा – झमकूजी! हीयमान परिणामों से विहार कर रही हो क्या? मुनिश्री के अभिप्राय को समझ यौक्तिक उत्तर देते हुए साध्वीप्रमुखा ने कहा – हम विहार करते हैं तब परिणाम हीयमान हो सकते हैं पर ज्यों ज्यों धूप ढलती है परिणाम वधर्मान हो जाते हैं। आप प्रातःकाल विहार तो वर्धमान परिणाम से करते हैं लेकिन ज्यों ज्यों धूप चढ़ती है, वे हीयमानता की ओर बढ़ जाते होंगे। महासती झमकूजी सैद्धान्तिक और तर्क संगत उत्तर सुन मुनिश्री प्रसन्न हुए और मौन भी हो गए।

एक बार भयंकर गर्मी की दुपहरी में विहार कर अगली पहुंची, वहां रहने का स्थान नहीं मिला। नीचे धरती पांवों का सेक कर रही थी और ऊपर सूर्य अंगारे बरसा रहा था। प्रायः सभी साध्वियां क्लान्त–सी हो गई। साध्वीप्रमुखा झमकूजी स्वयं स्थान की गवेषणा के लिए गई। साध्वियों को वजन लिए इधर उधर घूमते देख एक जाटणी का मन पसीज गया, उसने कहा – महाराज! मेरे घर में रह जाओ। सायंकालीन प्रतिलेखन आदि दैनिक कार्यक्रम सम्पन्न कर साध्वियां प्रतिक्रमण में लीन बन गई।

घर का मालिक गांव में ज्योंही घुसा, कुछ लोगों ने उसको भ्रमित कर दिया। घर पहुंचकर ऊंट को खूंटे से बांधते ही अपनी पत्नी पर बरस पड़ा। इनको घर में क्यों रखा? ये भूतनियां हैं निकाल इनको! जाटणी ने बहुत कोशिश की ये महासतियां हैं, रात को हमें ज्ञान सुनाएंगी। हमारे से कुछ नहीं लेगी केवल सोने के लिए हमने जितना दिया उतना स्थान लिया है। जाट पर आवेश का भूत ऐसा सवार था कि वह कुछ सोच समझ नहीं पा रहा था। हाथ में लाठी उठाई और मारने दौड़ा। अभी इनको निकाल नहीं तो तुम्हारा सिर फोड़ दूंगा।

स्थिति की गंभीरता देख महासती झमकूजी ने कहा – हमारे लिए आपस में कलह मत करो, हम आपकी इच्छा बिना दो क्षण भी नहीं रुकेंगी। इतना कहकर सब साध्वियों को आदेश दिया – वजन उठाओ और चलो। बाहर एक वृक्ष था उसकी छाया में सब साध्वियां खड़ी हो गई। प्रतिक्रमण सम्पन्न किया और मन ही मन सोच रहे थे कि क्या करें? कहां जाएं? तभी गांव का मुखिया पटवारी उधर से निकला। वृक्ष के नीचे साध्वियों के पास आया। सारी स्थिति समझ बोला – महाराज! मैं जैन हूँ। ग्रामीण लोगों द्वारा किए गए व्यवहार के लिए क्षमा मांगता हूँ। यहां से थोड़ी दूर पर पंचायत भवन है, आप वहां विश्राम करें। आपकी सुरक्षा की जिम्मेदारी मेरी है। साध्वियां पंचायत भवन में पहुंच गई फिर भी लोग कुछ कुछ उपद्रव करते रहे। फिर भी शान्त भाव से बिना प्रतिक्रिया किए अपनी आत्म साधना में लीन बनने की प्रेरणा देकर स्वयं जप करने लगी।

विवेकपूर्ण निवेदन

पूज्य कालूगणी गंगाशहर पधार रहे थे। वहां के श्रावक लूणकरणी चौपड़ा ने निवेदन किया – साध्वियों को मेरे घर में रखाने की कृपा करें। उनके निवेदन को आचार्यवर ने कृपाभाव से सुना, सब को लगा कि साध्वियां लूणकरणजी की हवेली में रहेगी। मध्याह्न में जब महासतीजी आचार्यश्री की उपासना में पहुंची तब स्थान के बारे में चर्चा चल पड़ी। आचार्यवर ने पूछा – तुम लोग चौपड़ा गली में रहोगी या और किसी जगह? साध्वी झमकूजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा – हम रहेंगी वहीं जहां आपका निर्देश होगा पर एक ही गली में साधु साध्वियों – दोनों के रहने से परिष्ठापन आदि कार्यों में संकोच का अनुभव होता है। साध्वी झमकूजी के विवेकपूर्ण समुचित निवेदन को स्वीकार करते हुए कहा – हम गुंसाईसर वाले चौपड़ा गली में रहेंगे और साध्वियां देराजसर वाले चौपड़ों की हवेली में रह जाएंगी।

महासती झमकूजी का यह निवेदन विवेकपूर्ण होने के साथ संघीय शालीनता को बढ़ाने वाला था। साध्वीप्रमुखा झमकूजी के चिन्तन में आग्रह नही, विनय समर्पण और संघीय निष्ठा प्रतिध्वनित अधिक होती थी। जब वे बाल साधुओं से भी बात करतीं, उनके हाथ जुड़े हुए रहते। उनकी वाणी में व्यवहार में और कर्म में हर समय विनम्रता देखी जा सकती। थी। सं. 1993 में जब आचार्यश्री तुलसी ने गंगापुर में उनकी साध्वीप्रमुखा पद पर नियुक्ति की। उस समय आचार्यवर रंगलालजी हिरण के मकान में तथा साध्वियां सांखला की हवेली में प्रवास कर रहे थे। साध्वीप्रमुखाजी जिस मकान में विराजती शाम के समय प्रायः संत पंचमी समिति से उसी रास्ते आते। साध्वीप्रमुखा जब तक सब संत नहीं आते पट्ट से नीचे उतरती और खड़ी होकर वन्दना करती। एक दिन में ऐसा प्रसंग दो चार बार से अधिक उपस्थित हो जाता। एक दिन यह बात एक श्रावक ने आचार्यवर से निवेदन कर दी। आचार्यवर ने सन्तों को निर्देश देते हुए कहा – शाम के समय संत चौक से होकर न आए, गली में से आए।

जब महासती झमकूजी को आचार्यवर के आदेश की जानकारी मिली, उन्होंने विनम्र स्वरों में निवेदन किया – गुरुदेव! आपने ऐसा निर्देश क्यों दिया। मुझे खड़े होने में दिक्कत क्या है? बार–बार निवेदन करने के बावजूद आचार्यवर ने सन्तों को वही व्यवस्था दी कि गली से ही आए पर साध्वीप्रमुखाजी ने भी कई बार निवेदन करने में कमी नहीं रखी। उनकी आन्तरिक भावना छोटे बड़े सभी व्यक्तियों के दिलों को छूने वाली थी।

अनुभव का आलोक

एक बार अगली मंजिल पहुंचकर साध्वियां पाट बाजोट की गवेषणा कर रही थी। पट्ट की उपलब्धि न होने पर साध्वी रूपांजी सरदारशहर और साध्वी सोनांजी

रावले में गईं। वहां एक पालतू कुत्ता था। साध्वियां कुत्ते से डरकर वापिस मुड़ने लगी। साध्वियों को देखते ही तेजी से दौड़ता हुआ कुत्ता बाहर आया और पीछे से साध्वी रूपांजी को काटने की कोशिश की पर उसके मुंह में साड़ी ही आई। वे इतनी भयभीत हुई कि दिल की धड़कन बढ़ गई, गला सूख गया और घबराई हुई सी प्रवास स्थल पर पहुंची। जब उनके मुंह से कुत्ते की बात सुनी साध्वीप्रमुखाजी ने अनुभव का आलोक बिखेरते हुए कहा – जब कुत्ता गाय आदि जानवर आक्रमण की मुद्रा में हो डरकर भागने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। उसी समय नीचे बैठ जाना चाहिए जिससे वे व्यक्ति को सूंघकर प्रायः दूर चले जाते हैं। इससे खतरनाक स्थिति नहीं बनती और शारीरिक कष्टों से बचाव हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण

नेतृत्व देने वाले वे ही लोग सफलता का वरण करते हैं जो जन मानस के अनुरूप अनुशासन शैली का उपयोग करना जानते हैं। साध्वीप्रमुखा झमकूजी इस कला में निष्णात थीं। वे बड़ी साध्वियां गलती करती तो उन पर कड़ा अनुशासन करती पर नवदीक्षित अथवा बाल साध्वियों पर बड़ी कोमलता से अनुशासन कर समझाने का प्रयत्न करतीं।

आचार्यश्री कालूगणी मालवा प्रदेश की यात्रा कर रहे थे। उस समय अनेक बाल साधु साध्वियां पूज्यवर के साथ थी। राजस्थान में जन्मी पली पुसी साध्वियों ने प्राकृतिक सुषमा नदी नालों और हरियाली को पहली बार देखा। दूर–दूर तक फैले जंगल, पर्वत, नदियों को देख वे आश्चर्य और प्रसन्नता का अनुभव करती। बाल साध्वियां जब नदी की रेत में बिखरी चान्दी सी चमकती सीपियों को देखती उन्हें बटोरने का लोभ संवरण नही कर पाती। एक नही कई साध्वियों ने बहुत सारी सीपियां इकट्ठी की और एक शिखाखण्ड के नीचे रख दी। उनका यह क्रम कई दिनों तक चला। एक दिन एक प्रौढ साध्वी ने उनकी इस हरकत को देखा। उन्होंने स्थान पर आकर वरिष्ठ साध्वी अणचांजी को यह बात बता दी। साध्वी अणचांजी ने सभी साध्वियों को साध्वाचार के प्रति जागरूक करते हुए डांट लगाई। यह बात फैलते–फैलते साध्वीप्रमुखा झमकूजी के पास पहुंची। उन्होंने सब बाल साध्वियों को अपने पास बुलाया। वे सभी भयभीत हो गई, साध्वी अणचांजी भी वहीं खड़ी थी। महासती झमकूजी ने साध्वी अणचांजी को सम्बोधित कर कहा – क्या दण्ड दूं इन अबोध बाल साध्वियों को? इनको डांट डपट कर भयभीत बनाने की अपेक्षा इन्हें समझाना जरूरी है। मैं इन्हें अच्छी तरह से समझा देती हूँ कि सीपियां हमारे लिए ग्राह्य नही है। महासतीजी ने जिस वात्सल्यभाव के साथ बाल साध्वियों को जो प्रशिक्षण दिया उससे उनकी भावना साधना के अनुरूप बन गई और भविष्य में ऐसी गलती उन्होंने पुनः कभी नहीं की।

साध्वी रूपांजी को पूज्य कालूगणी के सान्निध्य में वर्षों तक उपासना करने का मौका मिला। साध्वी रूपांजी अध्ययनशील एवं कर्मठ साध्वी थी। उन्हें गुरुकृपा से राजकीय कार्य करने का अवसर मिला। उदयपुर चातुर्मास में उनको समुच्चय की गोचरी करने का सौभाग्य मिला। एक दिन एक बाल साध्वी ने आग्रह करते हुए साध्वी रूपांजी से कहा – मैं आपके साथ गोचरी जाऊंगी। साध्वी रूपांजी ने साथ ले जाने से इन्कार कर दिया। जिससे बाल साध्वी के मन निराशा से भर गया। यह बात जब महासती झमकूजी को ज्ञात हुई। उन्होंने साध्वीरूपांजी को बुलाया और उपालंभ देते हुए कहा – बाल साध्वियों को तुम इस प्रकार निराश क्यों कर देती हो? साध्वी रूपांजी ने अपनी कठिनाई रखते हुए कहा – महासतीजी! यह साध्वी बहुत नाजुक है, इससे वजन तो उठाया नहीं जाता।

महासती झमकूजी ने कहा – तुम्हारा कहना ठीक है पर बाल साध्वियों को उत्तर भी कैसे देना चाहिए, पहले यह जानना आवश्यक है। इस प्रकार सीधा सपाट उत्तर अपरिपक्व मानस को तोड़ देता है। बच्चों के उत्साह को बढ़ाना चाहिए। तुम जैसी प्रबुद्ध साध्वी से तो मैं यह अपेक्षा करती हूँ कि बाल साध्वियों की भावना में उत्साह भरती रहो।

श्रमशील कर्मठ साध्वी

आचार्यश्री तुलसी श्रीडूंगरगढ़ से बीकानेर पधार रहे थे। गर्मी का मौसम था। महासती झमकूजी मध्याह्न में विहार करती। जलती धरती, तपता सूर्य और लूओं से झुलसता तन पर उनका मन सहनशीलता और धैर्य की शीतलता का अनुभव करता रहता। उस दिन का पड़ाव सेरूणा गांव में था। वहां से विहार किया – साध्वी सिरेकंवरजी राजलदेसर साथ में थी। उस दिन साध्वी सिरेकंवरजी की तबियत बिगड़ गई। वे रास्ते में बेहोश हो गई। रात तक उनकी बेहोशी नहीं टूटी पर साध्वीप्रमुखा झमकूजी एक सैनिक की भांति उनकी सेवा में जुटी रही। कभी वमन कभी दस्त और भयंकर बदबू। साध्वियों ने कहा – हम सब बैठी हैं। आप दूसरे कक्ष में पधार जाएं। सब साध्वियों को प्रेरणा देते हुए कहा – हमार कर्त्तव्य है कि बन सके उतनी सेवा करें। ऐसी स्थिति में किसी को छोड़कर मैं नहीं जा सकती। उन्होंने बीमार साध्वी की नब्ज ली और जप सुनाती रहीं। न बदबू से घबराहट न अन्य शिकायत। मात्र कर्त्तव्य निष्ठा और सेवा भावना के साथ अपना दायित्व निभाती रही।

इसी प्रकार जब कभी ऐसा प्रसंग उपस्थित होता वे श्रम करने में पहली पंक्ति में खड़ी दिखाई देतीं। भले शैक्ष साध्वियों को सीखाने का काम हो, वृद्ध और बीमार की सेवा का कार्य हो अथवा किसी को सहयोग की अपेक्षा हो महासती झमकूजी की

कर्मठता का दर्शन हर जगह उपलब्ध रहता।

धनीभूत आस्था

सं. 1998 में आचार्यश्री तुलसी की सन्निधि में साध्वीप्रमुखा झमकूजी उपासना कर रही थी। मंत्री मुनि मगनलालजी किसी कार्यवश आचार्यवर के पास आए। महासती झमकूजी ने वन्दना की, मंत्री मुनि का ध्यान उनके चेहरे पर टिका। मुंह के बाएं हिस्से पर आए टेढेपन को देख उन्हें पक्षाघात की आशंका हुई। उन्होंने आचार्यश्री से निवेदन किया – झमकूजी का चेहरा टेढा क्यों? आचार्यवर ने भी चेहरे को गौर से देखा और मंत्री मुनि की आशंका सही लगी। उस समय सेठ सुमेरमलजी दूगड सरदारशहर से सेवा में आए हुए थे। मंत्री मुनि ने उनसे परामर्श लिया तो वही धारणा और पुष्ट हो गई। सेठजी के पास इस रोग की अचूक दवा भी थी। उन्होंने आचार्यवर के हाथ में दो गोली थमाते हुए कहा – यदि यह रोग है तो इस दवा से ठीक हो जाएगा।

आचार्यवर ने साध्वीप्रमुखा को गोलियां देते हुए कहा – रोग की जड़ ही कट जाएगी। इनका सेवन करो। गुरु के कर–कमलों से औषधि और मुखारविंद से आशीर्वाद प्राप्त कर असीम आस्था के साथ साध्वीप्रमुखा ने दवा का प्रयोग किया। चमत्कार तो यह था कि तीसरी गोली भी लेने की अपेक्षा नहीं हुई और वह रोग सदा–सदा के लिए समाप्त हो गया।

सफल परीक्षक

महासती झमकूजी के पास आचार, व्यवहार और ज्ञान की निर्मलता थी। यद्यपि उन्होंने कभी गंभीर अध्ययन नहीं किया था पर निर्मलता के आधार पर व्यक्ति और वस्तु दोनों को परखने की उनकी क्षमता अद्‌भुत थी। घटना सं. 1992 की है। पूज्य कालूगणी उन दिनों राजसमंद में प्रवास कर रहे थे। पौष का महीना था। रात्रि के समय सभी साध्वियां सोने की तैयारियां कर रही थी।

अचानक उल्लू के बोलने की आवाज सुनाई देने लगी। पास में बैठी साध्वियों ने महासती झमकूजी से निवेदन किया – आज तो उल्लू बहुत अच्छा बोल रहा है। क्योंकि आज यह भरे मुंह से बोल रहा है। भरे मुंह से बोलना श्रेष्ठ कार्य का सूचक होता है। साध्वीप्रमुखा ने मौनभाव से उल्लू की आवाज सुनी और साध्वियों को सम्बोधित करते हुए कहा – तुम लोगों का अनुमान मुझे सही नहीं लगता। यह उल्लू खाली मुंह से बोल रहा है और हमारे स्थान पर बोल रहा है। यह अशुभ है और इस तरह बोलना बड़े व्यक्तियों के लिए मंगलकारी नहीं होता। महासतीजी का यह अनुमान शत प्रतिशत सही निकला। लगभग नौ महीने के पश्चात संघनायक पूज्य कालूगणी का विरह संघ को देखना पड़ा।

आचार्यश्री कालूगणी ने मालवा की ओर प्रस्थान किया। साध्वियों की व्यवस्था के लिए महासती झमकूजी को कुछ समय के लिए राजसमंद रखा। उस समय साध्वी लाधूजी एवं साध्वी हुलासांजी (सरदारशहर) मेवाड़ आ रहे थे। दोनों सिंघाडों के पास कपड़े का पर्याप्त वजन था। साध्वी लाधू का सिंघाडा 21 थान ग्लास के लेकर सरदारशहर से आ रहा था। साध्वी झमकूजी ने साध्वियों का वजन हल्का करने के लिए पांच साध्वियों को सामने भेजने का चिन्तन किया। साध्वी कमलूजी चूरू आदि पांच साध्वियों को उनके सामने भेजा। साध्वी कमलूजी ऐसी सेवाभावी साध्वी थी, जिन्हें गुरुदृष्टि या साध्वीप्रमुखा का निर्देश मिलते ही वे अपने आपको उस कार्य में पूर्णतया समर्पित कर देती थी। वे लगभग 15 माइल सामने गई और कपड़े का पूरा वजन लेकर महासती झमकूजी के सान्निध्य में पहुंच गई। उनकी कार्य तत्परता और इंगित की आराधना देख महासतीजी ने पुरस्कृत किया। साध्वियां उस समय वहां और भी बहुत थी पर आपकी पारखी नजरों ने कार्यकुशल और द्रुतगतिशील साध्वियों का चयन किया यह आपकी प्रतिभा का कौशल था।

संकल्प की जागृत चेतना

साध्वीप्रमुखा झमकूजी को गर्मी का मौसम धूप और लू बहुत लगती थी। लू लगना कोई बहुत बड़ी बीमारी नहीं है पर राजस्थान की गर्मी के तीखे तेवर लू लगने वाले व्यक्ति को इतना बेचैन कर देते हैं कि नीन्द और भूख तो कोसो दूर चली जाती है। घबराहट, जी मचलना और अरूचि हर क्षण शरीर को व्यथित करती रहती है। यही स्थिति गर्मी में साध्वीप्रमुखा झमकूजी की होती थी। ऐसी स्थति में एक दिन साध्वियों ने अत्यधिक बेचैनी देख निवेदन किया – आप पुदीना और मिश्री का सेवन करें, यदि थोड़ा आराम मिल जाए तो.....।

लेकिन साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने यह कहकर नकार दिया कि आज मघवागणी की पांचम है, मुझे सभी विगय का त्याग है। भले कुछ भी हो मैं मिश्री ग्रहण नहीं कर सकती। यदि देना है तो नमक के साथ पुदीना दिया जा सकता है। साध्वियों ने कहा – अस्वास्थ्य की स्थिति मे दवा के रूप में लेने का निवेदन किया पर दृढ संकल्प की धनी साध्वीप्रमुखाजी का एक रोम भी ग्रहण करने की स्वीकृति नहीं दे रहा था। यह कहकर उन्होंने बात पर विराम लगा दिया कि प्राण भले जाए पर प्रण पर अटल रहूँगी। यह बात उनके स्वर्गवास होने के पहले दिन की है।

यशस्वी जीवन यात्रा सम्पन्न

सं. 2002 आषाढ महीने में आचार्यवर के साथ साध्वीप्रमुखा झमकूजी शादुलपुर पधारी। वहां लू प्रकोप के साथ उनके शरीर में ज्वर, बेचैनी, गात्र कम्पन आदि व्याधियों ने आक्रान्त कर लिया। आषाढ कृष्णा 6 के दिन उनकी स्थिति गंभीर

से गंभीरतर बन गई। ज्योहीं सूचना मिली आचार्य तुलसी, मंत्री मुनि तथा वहां उपस्थित प्रायः सभी वरिष्ठ संत पधारे। आचार्यवर ने वैराग्य वर्धक गीत सुनाए। महाव्रतों का पुनरावर्तन कराया। उन्होंने बड़े ध्यान से आत्मालोचना की। जब साध्वियां प्रतिक्रमण सुना रही थी, वे बड़ी तल्लीनता के साथ सुन रही थी। साध्वियों ने निवेदन किया – प्रतिक्रमण हो गया। तब उन्होंने हां कहते हुए कहा – मैं चौरासी लाख जीव योनि से खमत खामणा कर रही हूँ। अंतिम क्षण तक जागरूकता के साथ अपनी आत्मा को निशल्य बनाने का प्रयत्न करती रही। और समत्व भाव में लीन हो गई। मध्याह्न में धीरे–धीरे शारीरिक शक्ति क्षीण होती गई और देखते–देखते वह महाज्योति अनन्त में विलीन हो गई। सं. 2002 आषाढ कृष्णा 6 का दिन था।

साध्वीप्रमुखा झमकूजी ने जिस प्रकार आचार्यश्री कालूगणी की उपासना, दृष्टि की आराधना और सेवा कर अपने जीवन को सार्थक बनाया, उसी प्रकार आचार्यश्री तुलसी की समुपासना की। अपनी प्रतिभा कौशल और नेतृत्व कौशल से तेरापंथ साध्वी समाज की सारणा वारणा तथा व्यवस्था कर संघ को अपनी सेवाएं दी और साध्वी समाज के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। महासती झमकूजी परम सौभाग्यशालिनी थी जिन्हें अनवरत गुरु सान्निध्य मिला और उन्होंने अपनी अंतिम यात्रा भी गुरु सन्निधि में सम्पन्न की।

उनका संयमी जीवन लगभग सैंतीस (37) वर्ष का रहा। उन्होंने कुन्दन की भांति अपने जीवन को निखारा। तेरापंथ धर्मसंघ की अपूर्व सेवा कर चार तीर्थ के दिलों में अपना स्थान बनाया। वे चली गईं पर उनकी यश–सौरभ आज भी संघ के कण–कण में व्याप्त है।

आषाढ कृष्णा सातम को आचार्यश्री तुलसी ने साध्वीप्रमुखा झमकूजी की पावन स्मृति में भावभरी गीतिका की संरचना कर उनकी उत्कीर्तना की वह गीत इस प्रकार है –

सैंतीस वर्ष लग, साधूपण पाल्यो झमकूजी सती।
निज संयम जीवन, आछो उजवाल्यो झमकूजी सती।।

1. चम्मालीसै रतननगर में, हिरावतां घर जामी।
ससुरालय चूरु रा पारख, उभय पक्ष है नामी जी।।
2. पैंसट्ठै डालिम – गणिवर – कर संयम भार समायो।
शहर लाडनूं मांही छेहड़ो भवसागर रो पायो जी।।
3. कानकंवरजी संगे छ्यांसठ इकोतरै चौमासो।
बाकी कालू चरण–शरण में सदा कियो सुखवासो जी।।
4. कालू–गुरु री करूणा दृष्टि, पल पल भल आराधी।

आनन्दित चित प्रभु परिचर्या सदा सवाई साधी जी।।

5. इंगित अरू आकार सुगुरु रा विरला ही लख पावै।
झमकूजी री आ अधिकाई किंया विसांरी जावै जी।।

लयः बधज्यो रे चेजारा थांरी बेल

6. वचन मधुरता झमकू वदन मझार,
है जाहिर सकल समाज में जी म्हारां राज।
हृदय–निडरता दिल दाठीक अपार,
नहिं मान मरोड़ मिजाज में जी।।

7. हाथ कुशलता चतुराई चित चंग।
निर्मलता निज आचार में जी म्हारा.....
सुगुरु भक्ति में झमकू शक्ति अभंग,
अनुरक्ति तीरथ च्यार में जी.....

8. सहनशीलता कारण में अणपार,
दिल–दृढता नियम–निभाण में जी.....
के के वरणूं झमकूं विनय उदार
तुलसी दिल गुणि–गुण गाण में जी.....
सैंतीस वर्ष लग साधूपण पाल्यो झमकूजी सती।

9. सद्गुरु सेवा करतां करतां गंगापुर पुर माही।
बोझ काम बगसीस साथ ही सब भोलावण पाई जी।।

10. श्रीकालू पट झालू तुलसी झमकू – सेवा सारै।
परम हर्ष दश वर्ष आसरै गुरु इंगित अनुसारै जी।।

11. दो हजार दो संवत आखिर आई बिना बुलाई।
आकस्मिक बीमारी स्यूं झमकू काया कुम्हलाई जी।।

12. गात्र–कम्प ज्वर अरु बेचैनी पाई खबर जिवारे।
मैं, मंत्री बंधव मुनि संगे दर्शन दिया तिवारै जी।।

13. तर तर रोग बढाव हि पायो दूजे दिवस दुबारा।
दर्शन दे महाव्रत उचराया सरध्या शुभ संस्कारां जी।।

14. छठ आषाढ कृष्ण मध्याह्ने परम समाधि पाई।
आराधक – पद पण्डित मरणे श्रमणी स्वर्ग सिधाई जी।।

15. वदनांजी लाडांजी आदी सकल सत्यां है साम्है।
खड़्या खड़्या सब आंख्यां झांकै पिण कुण तिण नै थामै जी।।

16. दूजै दिन शार्दुलपुर पुर में मिली परखदा भारी।
श्री झमकूं गुण वर्णन करणन 'तुलसी' ढाल उचारी जी।।

गुरु दृष्टि आराधिका

आचार्यश्री तुलसी ने सं. 2033 फाल्गुन शुक्ला 2 कालू जन्म शताब्दी के विशालतम आयोजन में कतिपय संघ निष्ठ सेवाभावी साधु साध्वियों को विशेष रूप से याद किया, उनमें एक साध्वीप्रमुखा झमकूजी थी।

स्मृति पत्र

पूज्य गुरुदेवश्री कालूगणी की इस जन्म शताब्दी के पुनीत अवसर पर मैं उन दिवंगत साधु साध्वियों का विशेष रूप से स्मरण करता हूँ जिन्होंने पूज्य गुरुदेव की कृपा दृष्टि का आराधन किया और संघ के गौरव वृद्धि में अपनी उल्लेखनीय सेवाएं दी। उनमें एक हैं – साध्वीप्रमुखा झमकूजी जिनको मैं 'गुरु दृष्टि आराधिका' के रूप में याद करता हूँ।

वि. सं. 2033 फाल्गुन शुक्ला 2, छापर

आचार्य तुलसी

2. साध्वी छगनांजी (बोरावड़) (735)

साध्वी छगनांजी का जन्म राजस्थान के बोरावड़ गांव में हुआ। सं. 1951 फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन सिरेमलजी कोठारी के घर में कन्या के रूप में लक्ष्मी का आगमन हुआ। उनके दो भाई और दो बहिनें थी। उनका जन्म नाम सुगन था और बहिनों का क्रमशः रतन और जतन था। तीनों बहिनों को तेरापंथ धर्मसंघ के संस्कार जन्मघूंटी में मिले। उनके चाचा तेरापंथ धर्मसंघ में दीक्षित थे जिनका नाम था – मुनिश्री अभयराजजी। तीनों बहिनों को समय समय पर मुनिश्री के सान्निध्य से संस्कार मिले और तत्वज्ञान की जानकारी मिली।

छगनांजी का व्यक्तित्व प्रभावशाली और आकर्षक था। उनका कद लम्बा था, शरीर सुडौल था और गति में स्फूर्ति थी। यद्यपि वह युग स्त्री शिक्षा का नहीं था, पर छगनांजी सहज प्रतिभा सम्पन्न थी। उनकी समझ शक्ति सहज विकसित थी।

वैराग्य भावना

छगनांजी के पिता ने उनका वैवाहिक सम्बन्ध बहुत छोटी अवस्था में निश्चित कर दिया। जयपुर के मूर्तिपूजक परिवार में उनकी सगाई की। एक बार उनके ससुराल वाले किसी वैवाहिक उत्सव में भाग लेने बोरावड़ आए। वहां उन्होंने बड़े ही धूमधाम से अपनी परम्परा के अनुसार जिनेश्वर देव की प्रतिमा का पूजन किया। भगवान के नाम पर आडम्बर सहित पूजा देखकर बाल–मन पर एक प्रतिक्रिया हुई और तेरापंथ के सिद्धान्तों के साथ मेल मिलाया तो छगनांजी को कैसा कैसा ही लगा। वे सोचने लगी – धर्म कौन–सा सही है? धर्म आत्मशुद्धि का साधन है न कि आडम्बर में और प्रदर्शन में। मैं यदि ससुराल जाऊँगी तो यही धर्म अपनाना होगा। इसी अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में कुछ समय व्यतीत हुआ और शादी न करना ही श्रेयस्कर है इस निष्कर्ष पर पहुंची। अपने माता पिता के समक्ष शादी न करने का निर्णय सुनाते हुए दीक्षा स्वीकार करने की भावना व्यक्त की।

संयोग ऐसा बना कि उन्हीं दिनों उनके बड़े भाई का अचानक निधन हो गया। भ्रातृ–वियोग ने उनके वैराग्य को गहरा कर दिया। वे नश्वर जीवन की यथार्थता का अनुभव करने लगी। उन दिनों बोरावड़ में साध्वीश्री कुन्नणांजी 'चूरू' (426) स्थिरवास कर रही थी। उनका सान्निध्य उन्हें सहज उपलब्ध हो गया। वे प्राथमिक तत्त्वज्ञान आदि सीखने लगी। अभिभावकों द्वारा समुचित परीक्षण के पश्चात दीक्षा की अनुमति प्राप्त हो हुई।

दीक्षा की स्वीकृति

उन दिनों अष्टमाचार्य कालूगणी सरदारशहर में प्रवास कर रहे थे। अभिभावकों की प्रार्थना और बालिका के वैराग्य का समुचित परीक्षण कर आचार्यवर ने श्रमण–प्रतिक्रमण का आदेश प्रदान किया। छगनांजी के संसारपक्षीय काका मुनि अभयराजजी के प्रयत्न से दीक्षा की संभावना भी निकट भविष्य में बन गई। दीक्षा की तिथि आषाढ शुक्ला दशमी तय हुई। उस समय राजस्थान में यात्रा की सुविधाएं बहुत कम थी। गमनागमन के लिए प्रायः ऊंटगाड़ी और बैलगाड़ी का उपयोग किया जाता था। जिससे आने जाने में समय अधिक लग जाता। बोरावड़ जाकर पुनः सरदारशहर आना श्रम साध्य होने के साथ–साथ समय साध्य था। दीक्षा की तिथि नजदीक थी। वैरागिन बहिन को प्रतिक्रमण भी सीखना था। इन सारी कठिनाइयों का निराकरण श्रावक श्रीचंदजी गधैया ने किया। उन्होंने कोठारी परिवार के सामने सुझाव रखते हुए कहा – आप लोग बोरावड़ जाकर दीक्षा की तैयारी कर आएं और बहिन को आचार्यवर की सेवा में मेरे पास रख दें। गधैयाजी के परामर्श को स्वीकार कर दीक्षा का सारा कार्य किया और सब कुछ व्यवस्थित हो गया।

सं. 1967 आषाढ शुक्ला दशमी के दिन अष्टमाचार्य कालूगणी के कर–कमलों से सरदारशहर में सानन्द दीक्षा सम्पन्न हुई। पूज्य कालूगणी के पट्टारोहण के पश्चात कुमारी कन्या की यह पहली दीक्षा हुई। दीक्षा के पश्चात साध्वी छगनांजी को गुरुकुलवास में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होने रत्नाधिक साध्वियों के सरंक्षण में साध्वाचार का प्रशिक्षण लेते हुए कंठस्थ ज्ञान का विकास किया। सतत परिश्रम से उन्होंने लगभग पन्द्रह हजार गाथाएं कंठस्थ की। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दी और वृहत्कल्प – ये चार आगम, रामचरित्र आदि ग्यारह व्याख्यान और 25 थोकड़े उन्हें अस्खलित याद थे। इन सबका वे नियमित रूप से पुनरावर्तन करतीं।

गुरु कृपा और गुरुकुल की सेवा

साध्वी छगनांजी बहुत भाग्यशालिनी थी। उन्हें सत्ताइस वर्ष तक गुरुकुलवास में रहने का अवसर मिला। गुरु सेवा के साथ साथ साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी का निकट सान्निध्य उनके लिए सोने में सुगंध जैसा था। सरलता मधुरता, विनम्रता, पापभीरुता और सेवाभावना – ये उनमें नैसर्गिक गुण थे। संयम साधना के साथ इन गुणों का भी उन्होंने उत्तरोत्तर विकास किया। उनकी संघ निष्ठा और गुरु भक्ति विशेष रूप से सराहनीय थी।

सं. 1991 में अष्टमाचार्य कालूगणी ने मारवाड़ मेवाड़ की यात्रा की। तब

साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी वृद्धावस्था तथा अस्वस्थता के कारण राजलदेसर में स्थिरवासी बनकर रही। उस समय साध्वी छगनांजी उनके पास विशेष रूप से काम करने वाली साध्वी थी। उन्हें साध्वीप्रमुखा की सेवा में सत्ताइस वर्ष रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे साध्वीप्रमुखा के प्रति सर्वात्मना समर्पित थी। उनको शारीरिक एवं मानसिक सुख–समाधि पहुंचाने का पूरा प्रयत्न करतीं। साध्वीप्रमुखाजी के पेट में बहुत बड़ी गांठ थी जिससे उठने बैठने में काफी तकलीफ होती थी। साध्वी छगनांजी सेवा में हर क्षण तत्पर रहने का प्रयास करतीं। स्वयं साध्वीप्रमुखाजी का उनके प्रति विश्वास था। उनकी सेवाभावना और कर्त्तव्यनिष्ठा देखकर स्वयं कालूगणी ने उनका मूल्यांकन किया। साध्वीप्रमुखाजी का सं. 1993 प्रथम भाद्रव कृष्णा पंचमी को स्वर्गवास हो गया। तब आज्ञा धारणा का अधिकार कालूगणी ने साध्वी छगनांजी को सौंपा।

सं. 1993 भाद्रव शुक्ला तीज के दिन कालूगणी ने अपने युवाचार्य तुलसी को कहा – "साध्वी छगनांजी ने कानकंवरजी की अच्छी सेवा की है। उनके आंखों की कमजोरी भी रहती है अतः उनके पास एक साध्वी अधिक रखना।"

आचार्य तुलसी ने ब्यावर मर्यादा महोत्सव पर साध्वी छगनांजी को अग्रगण्य पद पर नियुक्त किया। उनके सिंघाडे में पांच की जगह छह साध्वियों को रखा।

अग्रगण्य अवस्था में उन्होंने मारवाड, मेवाड़, मालवा तथा हरियाणा आदि क्षेत्रों में विहरण कर धर्म का प्रचार किया। वे जहां–जहां जातीं श्रावक श्राविकाओं को अच्छा तत्त्वज्ञान सीखाती।

कष्ट सहिष्णुता और संकल्प निष्ठा

साध्वी छगनांजी को सहिष्णुता और संकल्पनिष्ठा के संस्कार जन्म घूंटी के रूप में मिले थे। वे तीन बहिनें थी और तीनों की ही संकल्प शक्ति मजबूत थी और कष्टसहिष्णुता भी अच्छी थी।

सबसे छोटी बहिन रतनी बाई का विवाह फतेहपुर निवासी लिछमणदासजी के पुत्र बालचंदजी दूगड़ के साथ हुआ। उनमें भी धर्म के संस्कार कूटकूट कर भरे हुए थे। श्रावकाचार का पालन करते–करते शादी के कुछ वर्षों बाद उनके मन में दीक्षा लेने की भावना जागी। पर परिवार वालों ने दीक्षा की स्वीकृति देने से बिलकुल इन्कार कर दिया। वास्तव में दूगड़ परिवार की आस्था संघ से बहिष्कृत/बहिर्भूत साधुओं के प्रति ही अधिक रही, इसलिए ज्यों–ज्यों रतनी बाई की दीक्षा लेने की भावना तीव्र हुई, ससुराल वालों का विरोध भी तेज हो गया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में

कहा – हमारे घर की बहू तेरापंथ संघ में दीक्षा ले ऐसा न हुआ है और न कभी हो सकता है।

रतनी बाई अपनी भावना रोक नहीं पा रही थी। वे पूज्य कालूगणी के चरणों में पहुंची और अपनी सारी स्थिति निवेदन की। आचार्यवर ने कहा – 'परिवार की लिखित आज्ञा के बिना दीक्षा देना तेरापंथ की परम्परा नहीं है।'

परिवार का आग्रह और रतनी बाई की संकल्प निष्ठा – दोनों एक इंच भी इधर उधर होने को तैयार नहीं थे। आखिर रतनीबाई ने साहस का परिचय दिया और जबतक आज्ञा न मिले आहार का त्याग कर दिया। एक महीना बीता, दो महीना बीता पर पति का दिल नहीं पसीजा। रतनी बाई के अनशन के दिन ज्यों–ज्यों आगे बढ़ें, पत्र–पत्रिकाओं में, समाज में तथा राजनीति के क्षेत्र में भी चर्चा का बाजार गर्म हो गया।

महात्मा गांधी के सामने किसी प्रबुद्ध व्यक्ति ने इस प्रसंग को प्रश्न के रूप में प्रस्तुत किया तो समाधान की भाषा में उन्होंने कहा – "गुरु दोषी नहीं है क्योंकि उन्होंने अपने अस्तेय व्रत की पूर्ण सुरक्षा की है। न हम उस बहिन को दोषी कह सकते हैं क्योंकि वह सबालिग है, अपने हित के लिए संघर्ष करने का उसको पूरा अधिकार है। घर वालों ने जो जबरदस्ती की वह नहीं करनी चाहिए थी, वह अन्याय है।"

बड़ी हिम्मत, साहस और वीरता के साथ जीवन–रण में जूंझते–जूंझते बहतरवें दिन वह दीपशिखा बुझ गई। इस प्रकार हंसते–हंसते आत्मोत्सर्ग करने वाली वीरांगना का इतिहास अद्‌भुत है और तेरापंथ में सदा–सदा अमर रहेगा। आचार्य तुलसी ने कालूयशोविलास में इस सन्दर्भ में काव्य की भाषा में लिखा –

तीनू तरफ रह्यो प्रण पक्को, रतनी री कुर्बाणी जी हो।
पति रो पत्थर दिल न पसीज्यो, क्रूर वृत्ति सहनाणी जी हो।।
बिन अनुमति दीक्षा नहीं दिन्ही, दृढ प्रतिज्ञ श्रीकालू जी हो।
मर्यादा रो मान बढायो, यद्यपि देव दयालू जी हो।।

सजगता पर साधुवाद

सं. 2000 में साध्वी छगनांजी लाडनूं सेवा केन्द्र स्थित वृद्ध साध्वियों की सेवा में थीं। उस समय आचार्य तुलसी का आदेश प्राप्त कर एक मुनि भंडार से हस्तलिखित प्रति लेने के लिए लांडनूं आए। मुनिजी ने प्रति निकाल कर देने की मांग

की। तब साध्वीजी ने पूछा – क्या आप आचार्यवर द्वारा लिखित पत्र लाए हैं? मुनिजी ने कहा – मुझे भेजा इसीलिए है पर पत्र नहीं है। साध्वीजी ने अच्छी तरह पूछताछ कर हस्तलिखित प्रति सौंपते हुए कहा – भविष्य में भंडार से कुछ भी वस्तु लेने के लिए आएं तो आचार्यश्री की लिखित आज्ञा साथ में लाएं। आचार्यवर को जब यह घटना निवेदित की तब साध्वीजी को उनकी सजगता पर साधुवाद दिया।

कर्त्तव्य परायणता

एक बार वे मेवाड़ में विहरण करती हुई बोरज पधारीं। वे वहीं प्रवास कर रहीं थी कि संघ से बहिर्भूत मुनि पन्नालालजी (पेटलावद) अकेले विहार करते हुए वहां आए और पास के मकान में ठहर गए। गांव में गोचरी के साथ कपड़े के थान भी ले आए। साध्वीजी को उनके आने की सूचना मिलते ही वे वहां गईं और नीचे से गृहस्थों के द्वारा सारी जानकारी प्राप्त की और स्पष्ट शब्दों में कहा – गण से बहिर्भूत साधु हैं इसका स्पष्टीकरण किए बिना श्रावकों के घर से कपड़ा लाए हैं यह उचित नहीं है। उन्होंने अपनी अनुगामी साध्वियों को भेजकर कपड़े का थान उनसे प्राप्त कर लिया। पन्नालालजी ने अपना कपट प्रकट होते देखकर उसी समय वहां से विहार कर दिया। समय पर संघ के प्रति कर्त्तव्य भावना का निर्वाह कर श्रावक समाज को जागरूक किया और साहस का परिचय दिया। आचार्यवर उन दिनों मेवाड़ में ही प्रवास कर रहे थे। उक्त घटना की जानकारी मिलने पर साध्वीजी की कर्त्तव्य निष्ठा की भूरि–भूरि प्रशंसा की।

गुरु–दृष्टि की आराधना

साध्वी छगनांजी गुरु–दृष्टि की आराधना में बड़ी सजग थी। सं. 2017 का मर्यादा महोत्सव आमेट में था। उस समय कच्छ के श्रावकों ने निवेदन किया – गुरुदेव! कच्छ की साध्वियां बहुत कम है, जो संघ में दीक्षित हैं, वे दीक्षा लेने के बाद साध्वीरूप में अभी तक कच्छ नहीं आईं। इस बात को लेकर कच्छ के अन्य जैनों में भ्रान्ति–सी है। एक बार आप किसी एक साध्वी को उधर भेजने की कृपा करें।

साध्वी छगनांजी के साथ साध्वी मूलांजी कच्छ की रहने वाली थी। साध्वी छगनांजी ने गुरु दृष्टि को समझते हुए निवेदन किया – मैं अब चलने में इतनी सक्षम नहीं हूँ कि – रण पार कर सकूं।

उसी महोत्सव पर साध्वी मूलांजी को साध्वी मनसुखांजी के साथ कच्छ जाने का निर्देश दे दिया। साध्वी छगनांजी ने बड़ी प्रसन्नता से बारह वर्ष तक निकट रही

विनीत साध्वी को भेज दिया। समर्पण भाव से गुरु दृष्टि की आराधना करने पर आचार्यवर ने साधु साध्वियों के मध्य साध्वी छगनांजी की प्रशंसा की तथा साध्वी प्रभावतीजी को उनके साथ भेजा। साध्वी प्रभावतीजी भी कच्छ की हैं।

कौशल की करामात

एक बार बीदासर से विहार कर साध्वी छगनांजी अपने ग्रुप की साध्वियों के साथ श्रीडूंगरगढ़ की ओर जा रही थी। एक दिन जेसलमेर नामक छोटे से गांव में रुकी। वे जिस मकान के ओटे में ठहरी वहीं बाहर आने जाने का दरवाजा था। इसलिए साध्वियों के पास से ही घर वालों का आवागमन होता रहा। साध्वियां जागरूकता के साथ अपनी और सामान की सुरक्षा करती रही पर नीन्द लेकर जब उठी तो देखा पातरी के तीन झोलके गायब है। साध्वियों ने आसपास में खोज की पर सफलता नहीं मिली। तब साध्वी छगनांजी ने वहां उपस्थित सभी भाई बहिनों को सम्बोधित कर कहा – साध्वियों का सामान चोरी करने वाला व्यक्ति यदि अपने आप आकर दे देगा तो ठीक है, अन्यथा जो सेठ लोग हमारी सेवा में हैं, वे एक–एक घर की तलाशी लेकर खोज कर सकते हैं। उन्होंने तेज आवाज में अपनी बात कही। उसे सुनकर एक भाई सहम गया और धीरे से बोला – आपके हाथ में जैसे बर्तन है, मैंने अकुरड़ी पर पड़े देखे हैं। हमारे गांव में ऐसे कुत्ते हैं जो दस सेर आटे की थेलियां उठाकर ले जाते हैं.....।

साध्वियों ने जाकर देखा पात्रियों के तीनों सेट वहां ऐसे पड़े थे जैसे किसी ने रखे हो, मात्र ऊपर का कपड़ा कहीं–कहीं फटा हुआ था संभवतः पात्रियों में धन है, ऐसा सोचकर किसी ने उठाया होगा पर साध्वीजी की करामात से पात्रियां सुरक्षित मिल गई।

पुस्तकों की सुरक्षा

सं. 1998 में साध्वी छगनांजी मालवा प्रांत (मध्यप्रदेश) की यात्रा पर थी। चातुर्मास से पहले वे उज्जैन गईं। वहां के श्रावकों ने वहां कुछ समय ठहरने की प्रार्थना की। साध्वीजी ने कहा – इस क्षेत्र में वर्षा बहुत होती है और वर्षा का पानी बढते ही नदी–नालों के कारण रास्ता बन्द हो जाता है, अतः शीघ्र विहार करना ही उचित है।

यद्यपि जेष्ठ का महीना था, वर्षा के कहीं आसार नहीं थे फिर भी उन्होंने उज्जैन से विहार कर दिया। विहार किए एक दो दिन ही बीते थे कि अचानक तेज

बरसात हुई और विहार एक समस्या बन गया। नदियों में पानी बढ गया। आने–जाने का रास्ता बन्द हो गया। तीन माइल का चक्कर लेकर पुल के मार्ग से जाने का एक मात्र रास्ता था। वे उस ओर रवाना हो गई। लगभग वे एक मील ही पहुंच पाई थी कि वर्षा ने भयंकर रूप ले लिया और चारों ओर पानी ही पानी हो गया। कुछ दूर तक उन्हें कमर तक गहरे पानी में चलना पड़ा। हस्तलिखित पुस्तकों के भीगने की संभावना बढ गई। इस स्थिति में वे ऊँ भिक्षु का जप करते–करते रास्ता पार करने लगी। तभी अचानक उन्हें एक विशाल वटवृक्ष दिखाई दिया। उसके निम्न भाग में एक कोटर था, उसमें कुछ बच्चे बैठे थे। साध्वियों ने बच्चों से कहा – यदि आप इस कोटर को खाली कर दें तो हम अपना सामान इसमें रख दें अन्यथा सारा सामान पानी में खराब हो जाएगा। बच्चों ने तत्काल कोटर खालीकर दिया। साध्वियों ने तत्काल उसमें अपने सारे उपकरण रखकर कीमती पुस्तकों को सुरक्षित कर लिया। कुछ देर बाद जब वर्षा बन्द हुई उन्होंने गंतव्य की ओर प्रस्थान कर दिया।

भोजन पानी की अनुकूलता का तो प्रश्न ही नहीं था, पुल से मार्ग तय करना बड़ा भयावह था। नीचे उफनती नदी थी और उसके ऊपर पुल पर चलना कठिनाइयों से भरा कार्य था, फिर भी साध्वी छगनांजी ने हिम्मत नहीं हारी और समय से पहले अपने चातुर्मासिक क्षेत्र बड़नगर में पहुंच गईं।

कलाकार साध्वी

साध्वी छगनांजी व्यवस्था–कुशल और कलाकार साध्वी थी। सिलाई, रंगाई आदि के साथ पुस्तक बांधने की कला उनकी अनूठी थी। जिस समय पुस्तक–प्रकाशन की प्रणाली कम प्रचलित थी। हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर ही साधु साध्वियों का अध्ययन–क्रम चलता था। उन पुस्तकों की सुरक्षा करना उस समय एक महत्त्वपूर्ण काम था। इसलिए उनको सुन्दर ढंग से बांधना कला का एक अंग था। साध्वी छगनांजी इस कला में विशेष दक्ष थी। अष्टमाचार्य कालूगणी ने एक बार इस सन्दर्भ में साध्वी छगनांजी का नामोल्लेख करते हुए कहा – "छगनांजी द्वारा बांधी गई हस्तलिखित पुस्तक को पानी में तैरा दें तो भी शायद इसके पन्ने खराब नहीं होंगे। यह इस तरीके से बंधी हुई है कि एक बार तो पानी का प्रवेश नहीं होगा।

व्यवस्था कौशल

साध्वी छगनांजी को 27 (सत्ताईस) वर्ष तक गुरुकुलवास में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे गुरुकुल की व्यवस्था से परिचित भी थी और व्यवस्था करने में कुशल भी। आचार्य तुलसी ने इसी विश्वास के आधार पर समय–समय पर उनको दायित्व

भी सौंपा। दो–बार मेवाड़ में तथा एक–बार थली में काफी संख्या में साध्वियों के एकत्रित होने पर आचार्यश्री ने व्यवस्था का दायित्व साध्वी छगनांजी को सौंपा। उन्होंने उन अवसरों पर व्यवस्था कौशल का परिचय देकर आचार्यश्री के विश्वास को सार्थक बनाया।

बहता पानी निरमला

बहता पानी निरमला, पडा गंदला होय।
साधु तो रमता भला, दाग न लागै कोय।।

उपरोक्त पद्य को उन्होंने आत्मसात कर लिया था। उनके मन की यह भावना थी कि अन्तिम क्षण तक चलती रहूँ और एक जगह स्थिरवासी न बनूं।

वि. सं. 2026 का चातुर्मास करने के लिए वे हिसार जा रही थी। चातुर्मास से पूर्व हांसी में प्रवास था। पांच सात दिन की साधारण अस्वथता के बाद उन्हें लगा शरीर टिकने वाला नहीं है। शारीरिक स्थिति कमजोर अनुभव होने पर उन्होंने चौविहार अनशन ग्रहण कर दृढ संकल्प शक्ति का परिचय दिया। मात्र चार घंटे के अनशन के पश्चात प्रथम आषाढ कृष्णा 12 को उन्होंने समाधिपूर्वक पण्डितमरण प्राप्त किया।

उस समय हांसी में मुनि धनराजजी 'सिरसा' आदि तीन संत तथा साध्वी दीपांजी 'सिरसा', पिस्तांजी 'उमरा' आदि पन्द्रह साध्वियां थी। अंत समय में आसपास के सैकड़ों श्रावक–श्राविका दर्शनार्थ पहुंच गए। जिस समय उनकी शव यात्रा निकली, लगभग दस हजार लोग उसमें सम्मिलित हुए। हांसी में यह सबसे बड़ी शवयात्रा थी।

साध्वी छगनांजी का अग्रगण्य काल बत्तीस वर्ष का रहा। उस कालावधि में उनके साथ किसी भी साध्वी का स्वर्गवास नहीं हुआ, इस दृष्टि से उनका सिंघाडा अमर रहा। स्वयं उनका स्वर्गवास भी ऐसे अमर स्थान में हुआ, जहां उनसे पहले किसी तेरापंथी साधु साध्वी का वहां स्वर्गवास नहीं हुआ।

साध्वी छगनांजी के स्वर्ग प्रस्थान के समय आचार्यतुलसी दक्षिण की यात्रा कर रहे थे। आचार्यश्री मद्रास के आसपास थे। मध्याह्न के समय साधु साध्वियों की गोष्ठी चल रही थी, तभी साध्वी छगनांजी के दिवंगत होने का संवाद मिला। आचार्यश्री ने गोष्ठी को स्मृति सभा का रूप देते हुए कहा –

"हांसी (हरियाणा) से संवाद मिला है कि साध्वी छगनांजी (बोरावड) का स्वर्गवास हो गया। साध्वी छगनांजी हमारे धर्मसंघ के अष्टमाचार्य पूज्य कालूगणी के कर–कमलों से दीक्षित होने के बाद शेष तक प्रायः साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी के पास रहीं। उनकी सेवा उन्होंने प्रमुख रूप से की। साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी के स्वर्गवास के बाद पीछे कई सिंघाडे हुए, उनमें एक सिंघाडा साध्वी छगनांजी का भी था। पूज्य कालूगणी ने मुझे फरमाया था कि – 'साध्वी छगनांजी ने कानकंवरजी की अच्छी सेवा की है, आंखों की कमजोरी रहती है, अतः इनके पास एक साध्वी अधिक रखना। इसलिए मैंने इनके साथ एक साध्वी अधिक रखी।

साध्वी छगनांजी बहुत विनीत थीं। आज्ञा और मर्यादा पर वे बहुत तीखी दृष्टि रखतीं थीं। उनका विवेक जाग्रत था। गुरु के प्रति उनके मन में सहज श्रद्धा थी। जब कभी एक वर्ष में गुरुदर्शन नहीं होते तो मन में चैन नहीं पड़ता। गुरु दर्शन करने के बाद ही उन्हें आत्मतोष मिलता। वे धर्म प्रचार के लिए दूर–दूर क्षेत्रों में गईं और भाई–बहिनों में धर्म के संस्कार देने की दृष्टि से अच्छा कार्य किया। अपनी सहवर्तिनी साध्वियों में भी उन्होंने अच्छे संस्कार भरे। साध्वी छगनांजी के दिवंगत होने से शासन में एक क्षति हुई है। साध्वियों को उनकी कमी को पूरा करना है। हमारे यहां किसी का पण्डितमरण हो तो उसका कोई शोक नहीं होता, बल्कि प्रसन्नता ही होती है। जिस कार्य को उठाया, उसकी सानन्द समाप्ति कर समाधि मरण प्राप्त करना जीवन की सबसे बड़ी सफलता है और यही प्रसन्नता का विषय है। साध्वी छगनांजी ने भी अपना संयम जीवन अच्छी तरह पाला और अब उनका पण्डित मरण हो गया यह प्रसन्नता की बात है।"

साध्वी छगनांजी भैक्षव शासन–नन्दन वन में एक सुवासित पुष्प की भांति सदैव प्रफुल्लित रही और अपने व्यक्तित्व की सुरभि सदा फैलाती रही। उनकी आचारकुशलता, संघनिष्ठा, सेवाभावना और कर्त्तव्यनिष्ठा तेरापंथ के इतिहास में सदैव अंकित रहेगी।

3. साध्वी दाखांजी (दीवेर) (741)

साध्वी दाखांजी का जन्म वीरभूमि मेवाड़ के दीवेर की धरती पर सं. 1952 में हुआ। उनके पिता का नाम जीतमलजी डागा और मां का नाम गुलाबदेवी था। वे मात्र तीन साल की थी तभी उनके शिर से ममतामयी मां की छांव उठ गई। वे पिता के सरंक्षण में बड़ी हुई। वह बाल विवाह का युग था, अतः छोटी अवस्था में उनकी सगाई मारवाड़ के जोजावर गांव में चुन्नीलालजी संचेती के साथ कर दी गई। जब वे चौदह साल की हुई उनकी शादी की तैयारियां प्रारंभ हो गई। उनके विवाह के मात्र पन्द्रह दिन बचे थे। उन दिनों उनकी बूआ की लड़की मूलांजी की दीक्षा के उत्सव मनाए जा रहे थे। उनकी ससुराल भी दीवेर में थी। वे उनके घर गईं। बहिन ने अपनी व्यथा कथा सुनाते हुए संसार की स्थिति का चित्रण किया। साथ ही साथ उन्होंने दाखांजी को भी दीक्षा लेने की प्रेरणा दी। वैधव्य का दंश भोग चुकी मूलांजी की बात दाखांजी को भी समझ में आ गई। शादी के रंगीन सपने संजोने वाली दाखांजी की आंखों पर वैराग्य का उज्ज्वल ऐनक लग गया। पूर्व जन्म के संस्कार, शुभकर्मोदय का योग और समय पर दी गई प्रेरणा ने दाखांजी की दशा और दिशा दोनों बदल दी। वे दीक्षा के लिए तैयार हो गई और पिताजी के सामने खुलकर अपनी भावना रख दी। अचानक दीक्षा की बात सुनकर पिताजी को दुःख और झुंझलाहट दोनों हो रही थी। उन्होंने गर्म होकर कठोर शब्दों में डांट पिलाई और साधुत्व में आने वाले कष्टों से डराने का प्रयत्न किया। इकलौती पुत्री को स्नेहसिक्त शब्दों में बांधने की कोशिश की पर सब कुछ पानी में बह गया, कुछ भी हाथ नहीं लगा। दाखांजी अपने संकल्प पर अडिग थी और दीक्षा भी अपनी बहन के साथ ही लेना चाहती थी पर पिता की आज्ञा का अवरोध ज्यों का त्यों बना हुआ था।

दीक्षा की आज्ञा का चमत्कार

एक दिन उनके पिता जीतमलजी बेटी की मानसिकता और सामाजिक परिस्थितियों से उपजी उलझन के संदर्भ में मन ही मन चिन्तन कर रहे थे कि क्या करना चाहिए? इतने में उनको एक आवाज सुनाई दी – "दीक्षा की अनुमति दे दो अन्यथा आपको पश्चात्ताप करना पडेगा।" यह आवाज दाखांजी की मां की थी। सुनते ही जीतमलजी को पुत्री का भविष्य उज्ज्वल दिखाई देने लगा और स्वयं उसी दिशा में प्रयत्नशील बन गए। सं. 1967 माघकृष्णा एकम को पन्द्रह वर्ष की अवस्था में साध्वी दाखांजी और साध्वी मूलांजी ने रतनगढ में अष्टमपट्टाधिप कालूगणी के कर–कमलों से संयम साधना स्वीकार की।

दीक्षा लेते ही उन्हें लगभग अठारह वर्ष तक गुरु सान्निध्य में रहकर विविधमुखी विकास का दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ। साधु जीवन के प्राण तत्त्व आचार, विचार और व्यवहार की पवित्रता तथा कुशलता उनमें भरपूर थी। उन्होंने अपनी क्षमतानुसार ज्ञानाचार में भी अपने पुरुषार्थ का नियोजन किया पर उन्होंने हस्तकला और लिपिकला में विशेष दक्षता प्राप्त की। अपनी सुन्दर लिपिकला से हजारों पद्यों की प्रतिलिपि की। संयम साधना के उपकरणों के निर्माण में दक्षता प्राप्त की। कार्य करने में उनकी अद्‌भुत निष्ठा थी। जो भी कार्य प्रारंभ करती उसे एकाग्रता और कलात्मकता के साथ सम्पन्न करतीं। उनकी जीवन शैली में प्रमाद को अवकाश नहीं था। जप, स्वाध्याय से अनवरत अपने आपको भावित रखती। उनकी संघनिष्ठा, आज्ञानिष्ठा, आचारनिष्ठा के साथ साथ ऋजुता, मृदुता और पापभीरूता विशेष उल्लेखनीय थी। आचार्य श्री तुलसी ने उनके विषय में रचित गीत में जिस तरह से उनके उज्ज्वल व्यक्तित्व का वर्णन किया है, पढ़कर गौरव की अनुभूति होती है। उन्होंने लिखा है –

देखो दाखां सती सयाणी पायो भवगसागर रो पार।
भवसागर रो पार, पाल्यो संयम निर–अतिचार।।

हस्तकला हुशियारी भारी, सुध आचार विचार।
पापभीरुता पग–पग राखी, सरल भद्र अविकार।।

हलको अंग रंग अति गहरो शासन रो सुखकार।
मितभाषी मितभोजी रहती हसंमुख सदा सुप्यार।।

समिति गुप्ति में सावधानता राखी ऊठसवार।
भगिनी लाडां रही लाड में मानै अति उपकार।

स्वयं पालती और पलाती मर्यादा विधि वार।
गुरु आज्ञा ही जीवन जाण्यो वाह! वाह! सती उदार।।

आर्जव मार्दव री अधिकाई स्यूं दीप्यो दीदार।
चन्देरी बीसै चौमासै 'तुलसी' गावै ढाल।।

शासन सुषमा . पृ. 197.

सं. 1984 में अष्टमाचार्यश्री कालूगणी ने उनको अग्रगामी बनाया। उन्होंने 1984 से 2013 तक मारवाड, मेवाड, थली, मालवा, हरियाणा आदि क्षेत्रों में विचरण कर संघीय प्रचार–प्रसार में योगदान दिया और संघीय विस्तार में श्रम किया।

आचार्यश्री तुलसी की ज्येष्ठा भगिनी साध्वीप्रमुखा लाडांजी दीक्षा लेने के बाद 9 वर्ष तक साध्वी दाखांजी के साथ रहीं। उन्होंने आचार–विचार के संस्कार और कला आदि का प्रशिक्षण उनसे प्राप्त किया। साध्वीप्रमुखा लाडांजी उनकी सुखद सन्निधि में पाए संस्कारों के लिए सदा उनका आभार मानती थी।

निडर एवं साहस सम्पन्न साध्वी

सं 2001 में साध्वी दाखांजी जोधपुर से विहारकर बालोतरा जा रही थी। जोधपुर से पांच मील की दूरी पर 'तरणावा' नामक गांव आया। उस समय उनका स्वास्थ्य अनुकूल नहीं था, फिर भी गुरु आज्ञा को प्राण मानते हुए उन्होंने बालोतरा की ओर विहार कर दिया। उस दिन पहले तो स्थान देने के लिए कोई भाई बहिन तैयार नहीं हुए, आगे विहार करने की साध्वी दाखांजी के शरीर की स्थिति नहीं थी। प्रयत्न करते–करते बड़ी कठिनाई से गांव के बाहर एक छोटा–सा समाधि स्थल मिला। दिन में वहीं आसपास रहने वाली एक बहिन आई और उस स्थान के विषय में सुनी सुनाई भयोत्पादक बातें बता गई। लेकिन साध्वी दाखांजी ने सतियों के सामने कोई बात नहीं की। सन्ध्या के समय साध्वियां प्रतिक्रमण कर रही थी, तब एक भाई आया और उस स्थान के विषय में अंट–संट बोलने लगा। उसने कहा – तुम लोग यहां से चली जाओ। इस स्थान में रात्रि के समय रहना बहुत कष्टप्रद है। जब कभी कोई यहां रात्रि में रहा तो वह सही सलामत नहीं रह पाया। किसी के हाथ पैर टूट गये तो किसी के मुंह से खून गिरने लगा। यहां अनिष्ट की संभावना है अतः आप स्थान बदल लें तो अच्छा रहेगा। साध्वी दाखांजी ने सहज शान्त भाव से कहा – भाई! यदि आप लोग दिन में बता देते तो हम दूसरी जगह चली जाती। अब रात का समय है, आसपास कोई घर है नहीं, अब रात के समय कहां जाएं? हम सन्तों के पास अपनी साधना की शक्ति है। जप–भजन करेंगे जो भी होगा देखा जाएगा घबराने की क्या बात है। साध्वीजी द्वारा आत्मविश्वास के साथ दिए गए उत्तर को सुनकर वह चला गया। साध्वियों ने सलक्ष्य इष्ट स्मरण और अखण्ड जप कर सानन्द रात बिताई और सूर्योदय होते ही वहां से विहार कर दिया।

उत्साही व्यक्तित्व

वे स्वयं ज्यादा पढी लिखी नहीं थी पर अपनी सहगामी साध्वियों को पढने की प्रेरणा देती रहती जब भी अवसर मिलता उसका लाभ उठाने के लिए उनको तैयार करती। आचार्यश्री तुलसी ने साध्वियों को सम्बोधित करते हुए कहा – बहिर्विहारी साध्वियां अपनी एक–एक साध्वी को पढने के लिए गुरुकुलवास में रखें तो उनको

विशेष अध्ययन कराया जा सकता है। साध्वी दाखांजी ने साध्वी धनकंवरजी बीदासर को सात साल तक गुरुकुल में रखकर अध्ययन करने का मौका दिया। यद्यपि उनके ग्रुप में वे स्वयं वृद्ध और अस्वस्थ थीं पर उन्होंने अपने स्वार्थ के सामने व्यक्ति निर्माण को महत्त्व दिया।

साध्वियों के विकास की तरह श्रावक–श्राविकाओं की आस्था को मजबूत बनाने के लिए तथा समय पर आध्यात्मिक सहयोग देने के लिए भी वे बहुत जागरूक रहती। उन्हें स्वयं जाकर संभालती या साध्वियों को भेज देती। जब वे रामसिंहजी का गुडा में स्थिरवासी थीं। उस समय वृद्धावस्था और बीमारी के कारण चलने में अक्षम हो गईं थीं। एक दिन जाणूंदा गांव से एक भाई आया और बोला – जाणूंदा के श्रावक भानीरामजी बहुत बीमार है। उनके मन में साधु साध्वियों के दर्शन की उत्कट भावना है। यदि आप उन्हें दर्शन देने के लिए साध्वियों को भेजे तो उनकी अभिलाषा पूरी हो जाए। श्रावक के मुंह से प्रार्थना सुनते ही उन्होंने तत्काल साध्वी सोनाजी और लिछमांजी (बीदासर) को विहार करा दिया। एक–एक श्रावक की संभाल के प्रति ऐसी जागरूकता पूरे परिवार को बांधने वाली होती है।

साध्वी दाखांजी का सं. 1994 का चातुर्मास आचार्यश्री ने सिरसा के लिए घोषित किया। वे महाजन, सूरतगढ, पीलीबंगा, धोलीपाल, कलरखेडा, फाजिल्का होती हुई अबोहर पहुंची। वे स्वास्थ्य से कमजोर थी, वहां अचानक इतनी अधिक अस्वस्थ हुई कि स्थानीय श्रावकों को लगा कि यहां से विहार होना असंभव है। उस समय फाजिल्का के प्रमुख श्रावकों ने निवेदन किया – चातुर्मास नजदीक आ रहा है। आपके शरीर की वर्तमान हालत को देखकर हमें नहीं लगता कि आप विहार करने में समर्थ हैं। ऐसी स्थिति में आचार्यवर को निवेदन कर दें कि आपका चातुर्मास इधर ही करवा दें। सिरसा यहां से काफी दूर है।

गुरुदृष्टि की आराधिका

साध्वी दाखांजी का शरीर अवश्य अनुकूल नहीं था पर मन बहुत मजबूत था। दूसरी बात उनके मन में यह दृढ आस्था थी कि जहां गुरु ने चातुर्मास फरमाया है, मुझे वहीं पहुंचना है। संघ संघपति के प्रताप से अपने आप ताकत आ जाएगी। उन्होंने श्रावकों को सम्बोधित कर कहा – आपको आचार्यवर से कुछ भी निवेदन नहीं करना है। अभी चातुर्मास लगने में काफी दिन है। संभव है कुछ स्वस्थ होते ही मैं धीरे–धीरे विहार कर चली जाऊंगी। जहां आचार्यश्री का आदेश है, मैं वहीं चातुर्मास करूंगी। ठीक उनकी जैसी भावना थी वैसा ही सारा काम हो गया। वे स्वस्थ होकर सिरसा

पहुंच गई। बड़े उल्लास और आनन्द के साथ चातुर्मास कर उन्होंने आत्मतोष का अनुभव किया।

वे संघ को अधिक महत्त्व देती, कभी स्व के स्वार्थ की बात नहीं सोचती थी। सं. 2005 पारमार्थिक शिक्षण संस्था की स्थापना हो चुकी थी। तेरापंथ साध्वी समाज में ऐसा वातावरण बन रहा था कि संस्था से आने वाली साध्वियां पढ़ी–लिखी होती है। एक दिन उनके साथ वाली साध्वियों ने पूछा – क्या आपको पारमार्थिक शिक्षण संस्था में पढी लिखी साध्वी चाहिए। उन्होंने संक्षिप्त–सा उत्तर दिया – हां। तब इस बार मर्यादा महोत्सव पर आप गुरुदेव से प्रार्थना कर दें। उन्होंने सटीक शब्दों में कहा – नहीं करूंगी। हमारे धर्मसंघ में यह परम्परा नहीं है कि पांच बराबर की साध्वियां होते हुए छठी साध्वी की मांग करें। गुरुदेव पहले उन सिंघाडों की पूर्ति कराने की कृपा करेंगे जिनके पास पांच साध्वियां नहीं है। मुझे तो गुरु की शुभ दृष्टि चाहिए। संघीय मर्यादा और परम्परा के प्रति वे स्वयं सजग थी और पास रहने वाली साध्वियों को भी सजग करती रहती। वे मितभाषी और मितभोजी थीं।

सं. 2007 में साध्वी दाखांजी हरियाणा में विहरण कर रही थी। उनके शरीर में कम्पन–वायु बढ गया। उस समय ऐसा लगने लगा कि खून शरीर में बहुत कम हो गया। उनका शरीर वैसे ही दुर्बल था और बीमारी की वजह से अधिक दुर्बल हो गया। हड्डियों का ढांचा–सा दिखाई देने लगा। सभी को ऐसा लगा कि उनका बचना मुश्किल है। हांसी में प्रवास कर रही तपस्विनी साध्वी अणचांजी के उस दिन चौविहार बेला था, फिर भी वे हांसी से चलकर उसी दिन उमरा पहुंची। उन्होंने कहा – दाखांजी महासतियांजी! आपको संथारा कराने आई हूँ, क्या आप संथारा करेंगी। उन्होंने कहा – संथारा आ जाए सौभाग्य की बात है पर अभी समय नहीं आया है। अभी संथारा करने का भाव नहीं है। वे अस्वस्थता में भी पूरी जागरूक थी। साधारण घरेलू उपचार लम्बे समय तक किया और वे कुछ स्वस्थ हो गईं।

उपरोक्त बीमारी के पश्चात् यद्यपि वे चलने की कोशिश करती पर चलते चलते बिलकुल रूक जाती और एक कदम भी चलना मुश्किल हो जाता। ऐसी स्थिति में उनकी सहयोगी साध्वियां उन्हें सुखपाल में बिठाकर ले जाती। ऐसा एक बार नहीं कई बार प्रयोग करना पड़ा।

जीवन के अन्तिम तीन वर्ष आचार्यवर के आदेशानुसार उन्होंने रामसिंहजी का गुडा (मारवाड़) में स्थिरवास किया। अन्तिम वर्षों में उनके हाथ पैर बिलकुल निष्क्रिय हो गए। जबान लगभग बंद हो गई। उठना, बैठना, करवट बदलना तथा

अन्य सभी कार्य दूसरों के अधीन हो गए। एक चपाती खाने में दो–दो घण्टा का समय लग जाता फिर भी वे सुखासन में बैठी रहती। सभी साध्वियों ने अग्लान भाव से सेवा की वह उल्लेखनीय है और साध्वी दाखांजी का समताभाव कभी खण्डित नहीं हुआ। तेरापंथ शासन में वृद्ध साधु–साध्वियों की जिस प्रकार से सेवा होती है, गौरव का विषय है। सेवा कर साधु–साध्वियों के मन में विपुल निर्जरा की भावना से जो प्रसन्नता रहती है, वह महत्त्वपूर्ण है।

वि. स. 2013 फाल्गुन कृष्णा 11 को रामसिंहजी का गुडा में साध्वी दाखांजी समाधि–मरण को प्राप्त हो गई। उन्होंने 61 की अवस्था में 46 साल तक संयम यात्रा कर जीवन का कल्याण कर लिया।

4. साध्वी मुक्खांजी (सुजानगढ) (744)

साध्वी मुक्खांजी का ससुराल सुजानगढ के गिड़िया परिवार में और पीहर बोथरा परिवार में था। उनका जन्म सं. 1938 वैशाख शुक्ला 4 को हुआ। अल्पायु में शादी और अल्पायु में वैधव्य के अनुभव से उन्हें सांसारिक जीवन में खुशी कम गम अधिक मिला। गम के क्षणों में साधु–साध्वियों से मिली सही दिशा से उनके कदम संयम–पथ पर गतिमान हो गए। अष्टमाचार्यश्री कालूगणी द्वारा सं. 1967 वैशाख शुक्ला एकम को उन्हे संयम रत्न–प्रदान किया गया। साध्वी मुक्खांजी तेरापंथ धर्मसंघ की विशिष्ट तपस्विनी साध्वी मानी गई है। दीक्षित होते ही उन्होंने अपना सम्पूर्ण बल वीर्य तप साधना में नियोजित कर दिया। यद्यपि उनके द्वारा की गई तपस्या के सम्पूर्ण आंकडे उपलब्ध नहीं है। मात्र तीन साल की तपस्या की तालिका प्राप्त है। उनकी तपस्या ने कीर्तिमान स्थापित कर तेरापंथ साध्वी समाज के इतिहास में नया पृष्ठ जोड़ा है। तीन वर्ष अर्थात् सं. 1974, 75 और 76 की साल में उन्होंने इस प्रकार तपस्या की –

उपवास	–	50	अठारह	–	1
बेला	–	2	तीसं	–	1
तेला	–	3	पैंतीस	–	1
चोला	–	2	उनचालीस	–	1
सतरह	–	1	सैंतालीस	–	1

चौथी परिपाटी करने वाली पहली साध्वी

इसके अलावा उन्होंने सं. 1977 में राजलदेसर में साध्वीप्रमुखा जेठांजी की पावन सन्निधि में आगम में वर्णित लघुसिंहनिष्क्रीड़ित् तप की चौथी परिपाटी की तपस्या की। तेरापंथ धर्मसंघ में चौथी परिपाटी करने वाली साध्वी मुक्खांजी पहली सदस्या है। इससे पहले साधुओं–साध्वियों तथा श्रावक–श्राविकाओं में किसी ने यह तप नहीं किया। तपस्या के इस कीर्तिमान की सिद्धश्री साध्वी मुक्खांजी ने लिखी और उसके बाद साध्वी धन्नांजी (जसोल) ने (600) सं. 1980 में, तथा साध्वी अणचांजी श्रीडूंगरगढ ने सं. 1996 में चौथी परिपाटी सम्पन्न की। इन तीन साध्वियों के अतिरिक्त कोई भी साधु–साध्वियां इसे पूरी नहीं कर पाए हैं। अनेक साधुओं ने चौथी परिपाटी प्रारंभ की पर सम्पूर्णता तक कोई नहीं पहुंच सकें। इसलिए यह कीर्तिमान आज तक साध्वियों के नाम पर ही बना हुआ है। साध्वी मुक्खांजी एवं साध्वी धन्नांजी ने अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के युग में यह महान तप किया और साध्वी अणचांजी ने

नवमाचार्यश्री तुलसीगणी के पावन सान्निध्य में किया। दशमाचार्यश्री महाप्रज्ञजी की युग में साध्वी पन्नांजी 'देरासर' (879) ने चौथी परिपाटी प्रारंभ की पर वे बीच में ही दिवंगत हो गईं।

आछ के आगार से नौ मासिक तप

इसी प्रकार साध्वी मुक्खांजी ने तपस्या के सन्दर्भ में एक और नया कीर्तिमान बनाया – उन्होंने नौ मासी तपस्या की। तपस्या काल में आछ पानी लाने के लिए स्वयं जाती और पूरी तपस्या में पंचमी समिति के लिए गांव बाहर जंगल में जाती। उनके मजबूत मनोबल को देख सभी विस्मित हो जाते। साध्वी मुक्खांजी ने सं. 1978 में मेवाड़ के राजनगर गांव में साध्वी पेफांजी के सिंघाड़े में आछ के आगार से नौ मासी (267 दिन) तप किया। इससे पूर्व सं. 1912 में तपस्वी अनोपचंदजी (114) ने सवा सात मासी (218 दिन) का तप किया था।

साध्वी मुक्खांजी ने दोनों कीर्तिमान अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के युग में कायम किए। सेठिया संग्रह तथा शासनप्रभाकर में साध्वी मुक्खांजी द्वारा दूसरी और तीसरी परिपाटी भी की गई ऐसा उल्लेख है।

सं. 1980 चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन पड़िहारा में साध्वी मुक्खांजी का स्वर्गवास हो गया। साध्वी मुक्खांजी ने तीस वर्ष की अवस्था में साधुत्व स्वीकार किया। लगभग 13 वर्ष संयम पर्याय में रमण करते हुए तप साधना से उत्तरोत्तर जीवन को तेजस्विता प्रदान की। तेरापंथ धर्मसंघ के साध्वी समाज को तप के नये आयाम जोड़कर गौरवान्वित किया। उनका आयुष्य कुल 43 वर्ष का रहा पर तेजस्वी रहा।

5. साध्वी छोटांजी (तारानगर) (752)

साध्वी छोटांजी का जन्म 1950 कार्तिक कृष्णा अमावस्या (दीपावली) को रतनगढ के दूगड़ परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम पन्नालालजी दूगड़ था। अल्पायु में उनका विवाह तारानगर निवासी मोतीलालजी राखेचा के साथ किया गया। छोटांजी ने अठारह साल की अवस्था में घर, परिवार और पति को छोड़कर तीव्र वैराग्य के साथ सं. 1968 पौष कृष्णा चौथ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा राजलदेसर में संयम साधना स्वीकार की। उस दिन पांच दीक्षा हुई। उनमें एक भाई और चार बहिनें थी। आचार्यश्री तुलसी ने कालूयशोविलास में दीक्षा–वर्णन में लिखा है –

पूरो अड़सठ रो पावस अब राजाणै,
पो विद पख में है दीक्षा पांच प्रमाणै।
बो घोर तपस्वी मुनि सुखलाल सिसोद्यो,
फूलां मुक्खां मालू निज जीवन सोध्यो।
छोटांजी की कर्मा पर चोट करारी,
पहले उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

अनुशासित एवं मधुरभाषी

दीक्षित होते ही उन्होंने संयम के गहरे संस्कार साध्वी मघुजी रीड़ी से प्राप्त किए। वे अपनी साधना के प्रति प्रारंभ से जागरूक थीं। वे स्वभाव से शान्त और मिलनसार थीं। जब कभी जिस किसी सिंघाड़े के साथ रहने का मौका मिलता, सबको उनका मधुर व्यवहार प्रभावित करता रहता। उनकी अनुशासननिष्ठा विशेष उल्लेखनीय थी। गुरु के प्रति उनका सहज समर्पण भाव था, अटूट आस्था थी और गुरु के इंगितानुसार चलने की मनोवृत्ति थी। तपःसाधना में उनकी विशेष रूचि थी। उन्होंने अपने जीवन में निम्न तपस्या की –

उपवास	–	2874	नौ	–	2
बेला	–	166	दस	–	1
तेला	–	46	ग्यारह	–	1
चोला	–	31	बारह	–	1
पंचोला	–	28	चौदह	–	1
छह	–	2	पन्द्रह	–	1
सात	–	3	बावीस	–	1
आठ	–	2	तीस	–	1

योगसाधिका

तपस्या के साथ साथ ध्यान और आसन की ओर विशेष झुकाव था। वे सं. 2007 से इस दिशा में अपने प्रयोग करती रही। सं. 2007 में उनकी अग्रगामी साध्वी मघुजी के साथ उन्होंने सुजानगढ चातुर्मास किया। उस समय वहां के वरिष्ट श्रावक धनराजजी बैद से उन्होंने आसनों के विषय में जानकारी की। तब से अन्त तक वे नियमित आसन करती थी, यही कारण था कि उनका शरीर स्वस्थ था। वे कई आसनों में तीन घंटे तक बैठ सकती थी। वे तपस्या में भी आसन करती। कई बार तपस्या में आसन करने का कोई कारण पूछता तो वे एक ही उत्तर देती – आसन करना भी निर्जरा का कारण है। मानसिक, शारीरिक स्थिरता सधती है और ध्यान में लम्बे टाइम बैठने की क्षमता का विकास होता है।

सं. 2012 में आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी मघुजी के दिवंगत होने के बाद साध्वी छोटांजी का सिंघाड़ा बनाया। उन्होंने सतरह साल तक विभिन्न गांवों नगरों विहरण कर जन जन को धार्मिक प्रेरणा दी। अपनी साधना के साथ ध्यान, स्वाध्याय एवं जप का अनवरत अभ्यास उनके जीवन की विशेष उपलब्धि थी। इससे उनको कभी चमत्कार का–सा अनुभव होता था।

प्रायोगिक जीवन

साध्वी छोटांजी सं. 2028 में राजलदेसर में प्रवास कर रही थी। उन दिनों हिन्दुस्तान–पाकिस्तान के बीच युद्ध चल रहा था, इसलिए रात्रि में ब्लेक आउट रहता था। प्रकाश की एक किरण उस समय कहीं भी दिखाई नहीं देती थी। साध्वी छोटांजी को उस सघन अन्धकार में सात दिन तक हमेशा लगभग एक घंटे तक दिव्य प्रकाश दिखाई देता। उस समय यदि कोई भी व्यक्ति या वस्तु के विषय में पूछता तो वे बता देती। ज्योहीं दिव्यप्रकाश बन्द हो जाता वे कहती मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता। ऐसी दिव्य अनुभूति होती रहती थी।

सं. 2023 का चातुर्मास नोहर करके उन्होंने आचार्यश्री के दर्शन बीदासर में किए। आचार्यवर ने पूछा – छोटांजी! कौन से रास्ते से आएं हैं। उन्होंने विनम्र शब्दों में कहा – गुरुदेव! हम लोग सरदारशहर के रास्ते से आए हैं। आचार्यवर ने कहा – रेतीले टीले होने से वह मार्ग बहुत कठिन है। उससे एक बार हम भी आए थे, मार्ग कठिनाई से पार हुआ। कई तो उस रास्ते के बीच में बलिदान भी हो गए। इस वृद्धावस्था में बड़ी हिम्मत की है। उन्होंने निवेदन किया – जिस दिन विहार किया

उस समय संकल्प किया था कि गुरुदेव के दर्शनकर तेला करूँगी। आज दर्शनकर कृतकृत्य हो गई। आचार्यवर ने कृपा के साथ कहा – छोटांजी की यह विशेषता है कि कोई भी काम करती है पहले या पीछे तप अनुष्ठान करती है।

सं. 2029 में आचार्यश्री का चातुर्मास चूरु था। आचार्यश्री ने साध्वी छोटांजी का चौमासा छापर के लिए घोषित किया। चूरु छापर से अधिक दूर नहीं है, इसलिए उनके मन में यह भावना जागृत हुई – इस वर्ष गुरु सान्निध्य मिल जाए तो स्वर्ण सुरभि संयोग मिल जाएगा। साध्वी छोटांजी ने गुरुदेव से निवेदन किया – गुरुदेव! अब मेरा अन्तिम समय है। इसलिए चूरु में अपनी सेवा में रखाएं। आचार्यवर ने प्रश्न उपस्थित करते हुए कहा – इसका क्या पता कि यह अन्तिम चातुर्मास है? साध्वी छोटांजी ने विनम्र शब्दों में कहा – गुरुदेव! जब कभी मैंने तपस्या या संलेखना के लिए प्रार्थना की, आपने हमेशा एक ही प्रश्न पूछा है कि क्या साध्वी मघुजी जितने वर्ष आ गए? इसका रहस्य मैं अब समझी हूँ। उनको अस्सी वर्ष आए थे। अब मुझे भी अस्सीवां वर्ष प्रारंभ होने वाला है।

दूसरी बात उन्होंने अपनी भत्तीजी साध्वी राजीमतीजी 'रतनगढ' (1222) को मर्यादा महोत्सव पर कहा था – तुम इस वर्ष दूर यात्रा पर मत जाना। मैं अनशन करूं तब जहां भी रहो अवश्य आना और मुझे आध्यात्मिक सहयोग देना।

संलेखना प्रारंभ

सं. 2029 का चातुर्मास प्रारंभ करते ही साध्वी छोटांजी के मन से चिन्तन उभरा, मुझे कितना अच्छा योग मिला है। महामना दीक्षा प्रदाता अष्टमाचार्यश्री की जन्मभूमि में अस्सीवें वर्ष में प्रवेश करूँगी इसलिए इस पवित्र भूमि में संथारा संलेखना कर मुझे आत्म कल्याण करना है। उन्होंने उस चातुर्मास में बहुत तपस्या की। एकान्तर चल ही रहे थे। सात तक तपस्या की लड़ी की। इसके अतिरिक्त चार बेले, पांच तेले और एक चोला किया। कार्तिक शुक्ला दूज तक मात्र इकचालीस दिन आहार किया। संलेखना का प्रारंभ कार्तिक शुक्ला दूज को चौविहार मौन तेले से किया। वे अपना हर मंगल कार्य तेले की तपस्या से करती थीं।

मार्गशीर्ष शुक्ला तीज को उनके तपस्या का बत्तीसवां (32) दिन था। उन्होंने परिषद् में अपने विचार व्यक्त किए। तेरापंथ शासन और आचार्यों के खुले दिल से गुणगान किए। अपने भाग्य की सराहना करते हुए मुनि श्री अमोलकचन्दजी से उन्होंने तिविहार अनशन स्वीकार किया। उनकी मनोभावना के अनुसार आचार्यवर का

निर्देश प्राप्त कर साध्वी राजीमतीजी जयपुर से सात दिन में छापर पहुंच गई। उनके आने का लक्ष्य अपनी बूआ साध्वी छोटांजी को संथारे में आध्यात्मिक सहयोग देना था।

साध्वी छोटांजी संथारे के पहले दिन पांच घंटा पद्मासन में बैठी रही। तीन घंटा स्वाध्याय किया तथा दो घंटा ध्यान किया। संलेखना व संथारे को मिलाकर सैंतीस दिन तक उन्होंने प्रतिक्रमण बैठे–बैठे बड़ी सजगता से किया। कोई प्रतिक्रमण कराते समय साफ या भाषा की शुद्धता पर ध्यान नहीं देता तो वे तत्त्काल कहती – मुझे शुद्ध पाठ सुनाओ।

अपने दैनिक संकल्पों को अनशन में यथावत निभाया, कभी खण्डित नहीं होने दिया। ध्यान, मौन जितना नियम था, उतना तो अवश्य करती। नौ बार विघ्नहरण की गीतिका का स्वाध्याय करती। इसके अतिरिक्त भी काफी नित नेम थे जो उनके लिए अवश्य करणीय थे।

प्रतिदिन पद्मासन में तीन घंटे–ध्यान, जप का उपक्रम उनके 45 दिनों तक चलता रहा। वे ध्यान में समय–समय पर विशेष आलम्बन लेती और अपने आपको भावित करती।

तपस्या काल में एक दिन उन्हें ऐसा आभास हुआ कि कोई उन्हें कह रहा है – "संथारा मत करो, इससे शासन की अप्रभावना होगी। तुम्हारी भी बदनामी होगी"। उन्होंने बड़े जोश के साथ होश में उत्तर दिया – "यदि ऐसा होना ही है तो टालने वाला कौन है? मैंने तो संथारे की तिथि घोषित कर दी है। मैं संथारा करूँगी"।

पुनः आवाज आई – "संथारे में बड़े–बड़े कष्ट आएंगे?"

साध्वी छोटांजी बोली – "तुम कौन हो मुझे डराने वाले? मेरा मनोबल मजबूत है। मैं अपने संकल्प से बिल्कुल भी नहीं हटूंगी। उपद्रव होंगे तो चिन्ता की क्या बात है, मैं समभाव से सहनकर अधिक कर्मनिर्जरा करने का प्रयास करूंगी।"

अनशनकाल में कुछ उपद्रव हुए, शारीरिक असाता भी रही पर साध्वी छोटांजी की हिम्मत और मनोबल के सामने सब स्वतः शान्त हो गए।

अनशनकाल में पापभीरूता उनके रोम–रोम से प्रकट होती थी। उन्होंने छोटी छोटी बातों में हुए प्रमाद की जागरूकता से आलोचना दूसरों के सामने कर अपने

आपको हल्का बनाने का प्रयत्न किया। उन्हें एक रात्रि में ऐसा लगा कि किसी ने मेरे मुंह में कुछ खिलाने का प्रयत्न किया है। तत्काल नींद खुलते ही पहले प्रायश्चित्त किया। इसी प्रकार एक दिन साध्वी छोटांजी एक कमरे में थी। अन्य सभी साध्वियां दूसरे कमरें में आहार कर रही थीं। अचानक उन्होंने साध्वियों को आवाज दी और कहा – "मुझे आत्मालोचन कराओ?"

साध्वियों ने पूछा – "किस बात की?"

साध्वी छोटांजी ने अत्यन्त सरल भाव से कहा – देखो तुम सब जानती हो कि मेरे शरीर पर जब कभी मक्खियां बैठ जाती है मुझे बहुत झुंझलाहट आती है। पहले आई झुंझलाहट की तो मैंने आलोचना कर ली थी। अभी कुछ मक्खियां आ गई और मेरे मन में उनके प्रति घृणा का भाव आ गया, मुझे प्रायश्चित करा दो, ऐसी स्थिति में मेरे आयुष्य का बन्ध न हो जाए। इतनी जागरूकता कोई विरल व्यक्ति ही रख पाता है।

कभी–कभी उन्हें शारीरिक असाता का बहुत अनुभव होता, जैसे जी मचलना, उबकाई आना और मुंह का खराब होना। उनकी मानसिकता इन सबसे कभी प्रभावित नहीं होती। उनकी आन्तरिक शक्ति बहुत मजबूत थी। संथारे के 58 वें दिन उनकी नाड़ी के प्लस चालीस थे। डाक्टर ने कहा – नाड़ी की इतनी धीमी गति में कोई भी व्यक्ति साधारणतया इतना सजग–सक्रिय नहीं रह सकता और न इतनी स्पष्ट आवाज में बोल सकता है। तत्काल साध्वी छोटांजी बोली – यह मेरी शक्ति थोड़े ही है यह तो मेरे गुरु की शक्ति है जिसका अनुमान कोई नहीं लगा सकता। उस दिन उन्होंने और भी कई कार्य किए। साध्वियों को छंद और दोहे लिखवाए, कुछ भाइयों को सेवा कराई, आवश्यक बातें की।

इस प्रकार के अत्यन्त आह्लाददायक अनशन की आस–पास के क्षेत्रों में इतनी सौरभ फैली कि हजारों लोगों ने उनके दर्शन किए और त्याग प्रत्याख्यान की प्रेरणा ली। साध्वीजी का अमित आत्मबल और उत्तरोत्तर प्रवर्द्धमान भावों की श्रेणी को देख हर व्यक्ति नतशीष बन जाता और श्रद्धा के साथ तपस्या को नमन करता। इससे तेरापंथ धर्मसंघ की बहुत–बहुत प्रभावना हुई।

सं. 2029 पौष शुक्ला सातम को कुल छियांसठ दिन की तप साधना में (31 दिन तपस्या के, 35 दिन अनशन के) परम समाधि के साथ पण्डितमरण को प्राप्त हो गईं। अन्त में दो घंटे 20 मिनिट का चौविहार अनशन भी आया।

आचार्यश्री तुलसी ने उनके अनशन काल में दो सन्देश प्रदान किए। पहला उनके अनशन के शुभारंभ पर तथा दूसरा मध्य में। ये दोनों सन्देश जहां साध्वी छोटांजी की आत्मशक्ति को बढाने वाले थे वहां गुरुदृष्टि में उनका व्यक्तित्व भी उजागर होता है। वे अविकल रूप में इस प्रकार है –

साध्वी छोटांजी का जीवन शान्त एवं अनुशासन प्रिय रहा है। संघ संघपति के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित रहा है। इस बात की हमें प्रसन्नता है। अब जिस काम को वे प्रारंभ कर रही है, उससे पहले वे अपना बल, अपना स्थाम, अपनी श्रद्धा और अपना सामर्थ्य पूरी तरह से तोल लें। फिर जिस वीर वृत्ति से कार्यारंभ करें उससे दुगुनी वीर वृत्ति से उसको सम्पन्न करें। यही मेरी उनके लिए यहां बैठे शुभकामना है। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा आदि की भी उनके लिए यही भावना है। मेरा विश्वास है कि छोटांजी स्वयं के लिए और धर्मसंघ के लिए बहुत–बहुत प्रभावशाली काम करेंगी।

आचार्य तुलसी

आचार्य तुलसी ने उनके लिए दो सोरठे बनाए जो इस प्रकार हैं –

1. **छोटां थारो नाम, काम कितो मोटो कर्‌यो।**
   अनशन दृढ परिणाम, छापर में छाई छटा।।

2. **जीवन री बाजी, जीती के जीती जबर।**
   बीदासर माजी, छाया में छोटां सती।।

6. साध्वी हुलासांजी (सिरसा) (759)

साध्वी हुलासांजी का जन्म सं. 1954 भाद्रव कृष्णा तेरस को सिरसा गांव में हुआ। उस समय सिरसा पंजाब प्रान्त में था। उनके पिता का नाम हजारीमलजी पुगलिया और माता सुगनी देवी था। पुगलिया परिवार आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न और सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठित परिवार था। बालिका हुलासां का बचपन लाड़ प्यार में बीत रहा था। उन्हीं दिनों सिरसा में प्लेग महामारी फैल गई। परिवार के परिवार महामारी की चपेट में आ गए। पूरे शहर में भय और दहशत का वातावरण बन गया। एक साथ सैकड़ों व्यक्तियों की मृत्यु से शहर में त्राहि–त्राहि मच गई। लोग सिरसा छोड़कर जाने लगे। ऐसी स्थिति में पुगलिया परिवार सिरसा से 'रूपाणा' गांव जाकर बस गया। संयोग की बात थी कि वहां भी महामारी के उपद्रव ने तीव्र रूप ले लिया। हुलासांजी की माता प्लेग की चपेट में आ गई और वहीं काल कवलित हो गई। उस समंय बालिका की अवस्था मात्र छह वर्ष की थी।

मां के देहावसान के पश्चात् उनकी बड़ी मां (गणपतलालजी की धर्मपत्नी) मौलांजी उनका लालन–पालन वात्सल्य भाव से करने लगी। मौलांजी उनके ननिहाल पक्ष के रिश्ते में मौसी भी लगती थी। उनके बाबा गणपतलालजी धार्मिक मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। उनकी त्याग और तपस्या में गहरी रूचि थी। बालिका हुलासां ने धार्मिक संस्कार अपने बाबा से पाए। वे बाबाजी के पास बैठकर सामायिक करती और प्राथमिक ज्ञान कंठस्थ करने का अभ्यास करती। तेरह वर्ष की अवस्था तक उन्होंने पंचपद वन्दना, पचीस बोल, तेरहद्वार, लघुदण्डक आदि तेरह थोकड़े कंठस्थ कर लिए।

उस समय की परम्परा के अनुसार सात साल की बालवय में उनकी सगाई सिरसा के चुन्नीलालजी चौरड़िया के पुत्र पन्नालालजी के साथ कर दी। ससुराल पक्ष वालों ने बहू की खोल भराई में सैकड़ों तोला सोना भेजा। इस सम्बन्ध से दोनों पक्षों में खुशी का माहौल था, पर वह अधिक समय तक टिक नहीं पाया। प्राकृतिक बीमारियों ने प्रदेश में उस समय भयंकर तबाही मचा रखी थी। चौरड़िया परिवार भी रोग की गिरफ्त में आ गया। थोड़ी–सी कालावधि में हुलासांजी के सास–ससुर, दादीसास और देवर – चारों सदस्य दिवंगत हो गए। परिवार में एक मात्र हुलासांजी के होने वाले पति पन्नालालजी बचे। उनकी भी अवस्था छोटी थी, घर को संभालकर रख सके, इतनी समझदारी भी नहीं थी। ऐसी स्थिति में कुटुम्ब के बुजुर्ग व्यक्तियों तथा समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने निर्णय लिया कि – चौरड़िया परिवार की सारी

सम्पत्ति भावी पुत्रवधु के पिता हजारीमलजी पुगलिया को सौंप दी जाए। इस निर्णय के पीछे एक ही चिंतन था कि विवाह के पश्चात् कन्या जब समझदार होगी, तब अपनी सम्पत्ति स्वयं संभाल लेगी।

दिशा ने ही मोड़ ले लिया

एक बार हुलासांजी अपने बाबा और बड़ी मां के साथ अष्टमाचार्य कालूगणी के दर्शन करने के लिए राजलदेसर गई। वहां अचानक संवाद मिला कि पन्नालालजी (हुलासांजी के मंगेतर) के गले में गांठ हो गई। यह सुनते ही बालिका का मन उदास हो गया। एक के बाद एक व्यक्तियों को संसार से विदा लेते देख मन में वैराग्य भाव पैदा हो गया। उन्होंने धीरे–धीरे सोच–समझकर बाबाजी के सामने दीक्षा की भावना रखी।

अभिभावकों ने साधु जीवन में आने वाले कष्टों की विस्तार से जानकारी दी और भौतिक सुखों के प्रति आकृष्ट करने का प्रयत्न किया, पर बालिका अपने निर्णय पर दृढ़ रही। वे त्याग वैराग्य में गति–प्रगति करती हुई बार–बार दीक्षा लेने की भावना रखती रही। इधर हजारीमलजी को पुत्री के जीवन में आए बदलाव की जानकारी नहीं थी, इसलिए विवाह की तैयारियां करने लगे। जब विवाह में एक महीना अवशेष था, राजलदेसर पत्र देकर अपने बड़े भाई गणपतलालजी को सूचित किया। उन्होंने अपने अनुज को पत्र के माध्यम से हुलासांजी के वैराग्य भाव की जानकारी दी। पत्र पढ़कर हजारीमलजी को गहरा आघात लगा। क्योंकि हुलासांजी की मां के निधन के पश्चात् उनका इकलौता पुत्र भी चल बसा। उनकी दुनियां में एक मात्र संतान हुलासांजी ही थी। उन्होंने पुत्री के विचार बदलने का भरसक प्रयत्न किया, पर सफलता नहीं मिली। आखिर विवश होकर उन्हें आज्ञा–पत्र लिखना पड़ा।

उन्हीं दिनों गणपतरामजी और उनकी पत्नी मौलांजी की मानसिकता भी दीक्षा लेने की हो गई। ज्योहीं हुलासांजी की दीक्षा का स्वीकृति पत्र गणपतरामजी को मिला, उन्होंने कालूगणी को निवदेन किया – हम तीनों – मैं, मेरी पत्नी और बेटी दीक्षा लेना चाहते हैं। आप दीक्षा की स्वीकृति देकर हमें कृतार्थ करें। आचार्यश्री ने विविध उपायों के माध्यम से उनके वैराग्य को कसौटी पर कसा और पूर्ण विश्वास होने पर दीक्षा का आदेश दे दिया।

आचार्यवर द्वारा दीक्षा की स्वीकृति देने के बाद तीनों – दीक्षार्थी आचार्यश्री कालूगणी की सेवा में रहे। दीक्षा की तिथि निश्चित होने पर हुलासांजी के पिता

हजारीमलजी परिवार के साथ सुजानगढ़ पहुंच गए। सबके मन में दीक्षा का अनुपम उत्साह था। अकस्मात् नियति ने पुगलिया परिवार पर ऐसा क्रूर प्रहार किया कि रंग में भंग हो गया।

गणपतरामजी के सत्ताइस वर्षीय पुत्र का अचानक देहांत हो गया। इस घटना को तीनों दीक्षार्थियों ने वैराग्यभाव की वृद्धि का निमित्त माना। परिवार जनों ने भी परिस्थिति से प्रभावित न होकर पूर्व निर्धारित दीक्षा कार्यक्रम में भाग लिया। लगभग साढे तेरह वर्ष की अवस्था में हुलासांजी की अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के करकमलों से सुजानगढ में सं. 1968 माघ कृष्णा 2 को दीक्षा हुई। उनके संसारपक्षीय बाबा मुनि गणपतरामजी और बड़ी मां साध्वी मौलांजी ने भी उसी दिन दीक्षा स्वीकार की। कालूयशोविलास में आचार्यश्री तुलसी ने उक्त सन्दर्भ में काव्यात्मक प्रस्तुति इस प्रकार दी है –

सिरसा रो रहवासी गणपतराम क, मौलांजी सहसंगिनी जो।
सोदर–दुहिता साथ हुलासां नाम क, संयम हृदय उमंगिनी जी।।

दीक्षित होने के पश्चात साध्वी हुलासांजी को चार साल गुरुकुलवास में रहने का सौभाग्य मिला। गुरु सन्निधि में साधुचर्या का कुशल प्रशिक्षण प्राप्त करते हुए उन्होने अध्ययन की दिशा में आगे बढने का प्रयत्न किया। उसके बाद वे साध्वी भत्तूजी के साथ चौदह वर्ष रहीं। इन चवदह वर्षों में उन्होंने अपना सर्वांगीण विकास करने में श्रम का नियोजन किया। उनकी पहचान एक सक्षम और योग्य साध्वी के रूप में होने लगी। सं. 1987 में साध्वी भत्तूजी के दिवंगत होने पर पूज्य कालूगणी ने उनको अग्रगामी की जिम्मेदारी सौंपी।

प्रभावशाली प्रवचन

साध्वी हुलासांजी का व्यक्तित्व आकर्षक नहीं था पर उनकी आवाज बुलन्द थी, वाणी में मधुरता थी और ज्ञान की स्पष्टता थी। वे जो भी बात कहती, उनके प्रस्तुति का ढंग सबकी समझ में आने वाला होता। साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी का अस्वस्थता के कारण नाथद्वारा में रहना हुआ। उस समय साध्वी हुलासांजी साध्वीप्रमुखाजी की सेवा में थी। साध्वीप्रमुखाजी के निर्देश से प्रातःकालीन वे व्याख्यान देती थीं। नाथद्वारा के श्रावक–श्राविकाओं को उनका व्याख्यान अच्छा पसंद आया। साध्वीप्रमुखाजी प्रायः कहती – साध्वी हुलासांजी के बाह्य व्यक्तित्व को देखने वाला इनका अंकन नहीं कर सकता और व्याख्यान सुनने वाला इनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

ज्ञानार्जन में अनथक पुरुषार्थ

साध्वी हुलासांजी ने अक्षर ज्ञान किसी स्कूल में जाकर नहीं किया, पर ज्ञान के प्रति उनका सहज लगाव था। दीक्षित होने के पश्चात उनकी ज्ञानार्जन में विशेष अभिरुचि हो गई। वे प्रमाद में कभी समय नहीं बीतातीं। जितना बन सकता अपने पुरुषार्थ का वे पूरा उपयोग करतीं। उन्होंने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन के साथ इकतीस थोकड़े और रामचरित आदि 15 व्याख्यान कंठस्थ किए। संस्कृत श्लोक, दोहे, गीतिकाएं उन्हें सैकड़ों की संख्या में याद थे। ज्ञान प्राप्ति की उत्कण्ठा दीक्षा के प्रारंभ से लेकर वृद्धावस्था तक वैसी की वैसी बनी रही। सत्तर (70) वर्ष की अवस्था में उनके आंखों की ज्योति कम हो गई, जिससे पढ़ने में कठिनाई होती। ऐसी स्थिति में साध्वियों एवं बहिनों के सहयोग से बोल लेकर बालकों की तरह रटती रहती। इस क्रम से उन्होंने शील की नव बाड, आचार बोध, कर्मचंदजी स्वामी का ध्यान आदि मुखस्थ किया। दशवैकालिक सूत्र जब अर्थ–टिप्पण सहित प्रकाशित हुआ, साध्वी हुलासांजी ने अर्थ का एक एक वाक्य कंठस्थ कर लिया। मनोनुशासनम् को भी इस प्रकार मूल सूत्र और अर्थ सहित याद किया। वे अपने कंठस्थ ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिए प्रतिदिन एक हजार गाथाओं का स्वाध्याय करतीं। उनके स्वाध्याय का अपना अलग ही ढंग था। वे प्रत्यावर्तन उच्च स्वर से स्पष्ट शब्दों में करतीं। हाजरी भी उन्हें कंठस्थ थी, इसलिए चतुर्दशी के दिन वाचन करते समय वे कभी लिखित प्रति हाथ में नहीं रखतीं। ज्ञान इतना पक्का था कि एक शब्द भी इधर–उधर नहीं करतीं।

संघनिष्ठा और गुरुभक्ति

उनके रोम–रोम में संघनिष्ठा और गुरुभक्ति की सुवास व्याप्त थी। वे गुरुवचनों के प्रति सर्वात्मना समर्पित थी। जब भी संघीय प्रभावना व संघ की श्रीवृद्धि के क्षण आंखों से देखतीं अथवा सुनती वे आत्म गौरव से प्रफुल्लित हो जाती। जब–जब वे संघ--संघपति के गुणगान करतीं उनकी वाणी में नया जोश और ओज आ जाता और पूरे वातावरण को वे भक्तिमय बना देती।

सं. 2027 (दो हजार सत्ताइस) में वृद्धावस्था के कारण वे मोमासर में प्रवास कर रही थी। आचार्यवर का चातुर्मास रायपुर में था। 'अग्नि परीक्षा' पुस्तक को लेकर वहां विरोध के प्रखर अंगारे बरसे। जिस दिन उन्होंने संवाद सुने उसी दिन से एकातंर तप शुरु कर दिया। पारणे में एक विगय और अत्यल्प द्रव्य के सिवाय खाने का त्याग कर दिया और विधिपूर्वक जप का अनुष्ठान प्रारंभ कर दिया। उनका तप और जप तब तक चालू रहा जब तक उनके आचार्यश्री के दर्शन नहीं हुए। आचार्यवर रायपुर

से विहारकर सानन्द बीदासर पहुंच गए। उस समय साध्वी हुलासांजी शारीरिक क्षमता क्षीण होने से चलने में कठिनाई महसूस करने लगी थी पर उनकी हिम्मत अडोल थी। सहवर्ती साध्वियों का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था पर गुरुदर्शन की उत्कण्ठ भावना के सामने सब कुछ गौण हो गया और मोमासर से विहार कर दिया। रास्ते में उन्हें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा पर उनके साहस ने कभी हार नहीं मानी और वे बीदासर पहुंच गई। स्वंय आचार्यश्री तुलसी ने उनकी शारीरिक स्थिति को देखकर कहा – "अवसर आने पर हम दर्शन दे देते। ऐसी स्थिति में विहार कर साहस का परिचय दिया है। सचमुच वृद्ध साध्वियों की भक्ति बेजोड़ है।" बीदासर की धरती पर गुरु–दर्शन कर साध्वी हुलासांजी ने लगभग आठ माह के एकान्तर तप का पारणा किया।

संयम में जागरूकता

साध्वी हुलासांजी के आंख का ऑपरेशन होने वाला था। उस समय रतनगढ नेत्र चिकित्सा के लिए अच्छा क्षेत्र माना जाता था। डॉक्टर ने आंख में दवा डाल दी और इंजेक्शन लगा दिया। उनसे पहले एक अन्य साध्वी का ऑपरेशन हो रहा था, उसमें अनुमान से अधिक समय लग गया, जिससे सूर्यास्त का समय निकट था। डॉक्टर ने कहा – संभव है ऑपरेशन करते–करते सूर्यास्त हो जाए। साध्वी हुलासांजी ने डॉक्टर का कथन सुनते ही उसी समय ऑपरेशन कराने से इन्कार कर दिया। डॉक्टर ने यह भी बता दिया कि आंख में जो दवा डाली गई है वह एक घंटे से अधिक रहने पर आंख में घाव हो सकता है और कभी–कभी आंख की ज्योति भी जा सकती है, इसलिए ऑपरेशन अभी कराने में ही फायदा है। साध्वी हुलासांजी संभावित खतरे की बात सुनकर भी घबराई नहीं और दृढता के साथ बोली – नेत्र की ज्योति जाए या रहे, मुझे चिंता नहीं। मैं रात्रि में ऑपरेशन नहीं कराऊंगी। संयम साधना व स्वीकृत व्रत की सुरक्षा की पवित्र भावना के साथ लिया गया निर्णय फलवान बना और उस दवा से उनकी आंखों को अंशमात्र भी क्षति नहीं पहुंची। दूसरे दिन सूर्योदय के बाद ऑपरेशन हुआ और पूर्ण रूप से सफल रहा।

साहस का परिचय

सं. 2017 द्विशताब्दी वर्ष का मर्यादा महोत्सव आमेट में था। साध्वी हुलासांजी खैरवा चातुर्मास कर मेवाड़ जा रही थी। उनका रास्ता था – देसूरी का घाटा। मार्गपर्यवेक्षक भाई ने बताया कि आठ मील से पहले ठहरने का उचित स्थान नहीं है। साध्वीजी पैरों से इतना चलने में असमर्थ थीं इसलिए उन्होंने कहा – बीच में कोई

ठहरने का स्थान हो तो बताएं। भाइयों ने कहा – पहाड़ों के बीच एक बालाजी का मंदिर है। मंदिर में मूर्ति है और थोड़ा–सा स्थान है। उसमें सोने के लिए जगह तो है ही नहीं, बैठे–बैठे ही रात गुजारनी पड़ेगी। लेकिन सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि उस स्थान में हिंसक पशुओं का भय है। साध्वीजी ने अपने इष्ट का स्मरण किया और विहार कर दिया। पांचों साध्वियां अपना समान व्यवस्थित कर वहीं बैठ गई। ध्यान, जप, स्वाध्याय करते–करते रात गुजारी। साथ में जो भाई बहिन थे उन्होंने आग जलाकर रात बिताई। रात्री में साध्वियों ने देखा दो बाघ आए, तालाब पर पानी पीकर पुनः चले गए। दूसरे दिन साध्वीजी सानन्द विहार कर अपने गंतव्य की ओर बढ गईं।

जब आचार्यवर को हाजरी सुनाई

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने जब साध्वी हुलासांजी के कंठस्थ हाजरी वाचन की बात सुनी तो सैकड़ों साध्वियों की उपस्थिति में एक बार उनको हाजरी सुनाने के लिए कहा। साध्वी हुलासांजी सरल स्वभावी तथा आज्ञा के प्रति पूर्ण समर्पित थीं। साध्वीप्रमुखाजी का संकेत मिलते ही उन्होंने बड़ी तल्लीनता के साथ व्याख्यान की शैली में अर्थ सहित वाचन कर दिया। वहां उपस्थित सभी साध्वियां बहुत प्रभावित हुई। साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने साध्वीसमाज को सम्बोधित करते हुए कहा – "साध्वी हुलासांजी वृद्धावस्था और कमजोर होने पर भी आज्ञा के प्रति कितनी उत्साही है। इनका उच्चारण शुद्ध और स्पष्ट है। स्मरण शक्ति बेजोड़ है।" प्रसंगोपात्त साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने आचार्यवर के समक्ष जब यह बात रखी तो आचार्यवर ने उनको हाजरी सुनाने के लिए कहा। साध्वीजी ने सहजता और विनम्रता के साथ हाजरी के साथ–साथ दशवैकालिक सूत्र की कुछ गाथाएं भी अर्थसहित प्रस्तुत की। आचार्यश्री ने प्रसन्न होकर कहा – वृद्धावस्था में भी उच्चारण शुद्ध एवं स्पष्ट है और अध्ययन ठोस है।

समाधिकेन्द्र और साध्वी हुलासांजी

संवत 2033 कालू जन्म शताब्दी के ऐतिहासिक अवसर पर आचार्य तुलसी ने संघीय दृष्टि से कई महत्त्वपूर्ण निर्णय किए। उनमें एक था – समाधिकेन्द्र का शुभारंभ। समाधिकेन्द्र की स्थापना के लिए वीरभूमि बीदासर का नाम घोषित था। इसकी पृष्ठभूमि में आचार्यवर का दूरगामी चिन्तन यह था कि – जो अग्रगामी साध्वियां बीमारी और वृद्धावस्था के कारण विहार करने में अक्षम हो गई, उनकी समाधि के लिए समाधिकेन्द्र की व्यवस्था लागू की जाए। अग्रगामी साध्वी की सेवा और चित्त समाधि के लिए उनकी ही एक या दो अनुगामी साध्वी को रखा जाए,

जिससे अग्रगामी संयम–यात्रा का समाधिपूर्वक निर्वहन कर सके। समाधिकेन्द्र की व्यवस्था, क्षेत्रीय सार–संभाल एवं सेवा करने के लिए प्रतिवर्ष एक सिंघाडा भेजना निर्णीत हुआ। जब आचार्यप्रवर ने संघ के सामने नई व्यवस्था प्रस्तुत की तेरापंथ साध्वी–समाज की मिलीजुली प्रतिक्रिया सामने आई। किसी ने आत्मसाधना में उपयोगी समझ जिम्मेवारी से मुक्त हो निश्चिंतता का उपक्रम माना तो किसी ने स्वतंत्रता में अवरोध की अनुभूति की। पर साध्वी हुलासांजी विहार में अक्षमता महसूस कर रही थी उन्होंने समर्पण भाव से इस व्यवस्था में जुड़ने की भावना प्रस्तुत की। वे सं. 2034 चैत्रशुक्ला 13 को अपनी दो सहगामिनी साध्वियों – (मनोहरांजी–मोमासर, बीदामांजी–देवगढ) के साथ बीदासर समाधिकेन्द्र में पहुंच गई और समाधिपूर्वक ज्ञान–ध्यान स्वाध्याय तथा तपस्या में लीन हो गई। समाधिकेन्द्र में रहने वाली प्रथम स्थविरा साध्वी के रूप में उनका नाम अंकित हुआ। लगभग 50 वर्ष तक अग्रगण्या के रूप में विहरण कर उन्होंने गुरु–चरणों में समर्पण भाव का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। उनकी सकारात्मक मानसिकता, साधना का प्रबल मनोभाव, गुरुदृष्टि की आराधना में तत्परता को देखकर सहज श्रद्धाभाव पैदा होता था।

धन धण्यां रो है

जिस दिन समाधि केन्द्र में प्रवास करने के लिए वे बीदासर पहुंची उसी समय लाडनूं से संवाद मिला कि – "साध्वी नीतिश्रीजी और सत्यप्रभाजी लाडनूं में आचार्यवर का दर्शन कर लें"। साध्वी सत्यप्रभाजी 13 वर्षों से उनके साथ में थीं और विनीत साध्वी के रूप में उनकी पहचान थी। साध्वी हुलासांजी ने निर्देश सुनते ही पूरी तैयारी के साथ साध्वी सत्यप्रभाजी को बीदासर से विहार करा दिया। साध्वी सत्यप्रभाजी को शिक्षा देते हुए कहा – "तुम हमेशा गुरुइंगित की आराधना करती रहना। गुरुदेव जिस साध्वी के साथ भेजे, उस अग्रगामी साध्वी को मेरे समान ही समझना, उनके तन का कपड़ा बनकर रहना। संयम जीवन में सावधान रहते आचार–विचार की सम्यक् आराधना करना"।

बीदासर में उपस्थित साध्वियों ने कहा – आप इनको सारा सामान देकर क्यों भेज रहे है। आचार्यवर बीदासर पधारने वाले हैं, संभवतः उस समय व्यवस्था की जाएगी। एक बार आप अपनी दोनों साध्वियों को केवल दर्शन करने के लिए भेज दें। साध्वियों की बात सुनते ही साध्वी हुलासांजी बोली – म्हारां किस्या सत्यां हैं, ओ धन धण्या रो है। मैं तो म्हारी समाधिकेन्द्र में हूँ गुरु चावै जिंया आंरो उपयोग करो..... .. ।"

साध्वी सत्यप्रभाजी गुरु–सन्निधि में पहुंची। आचार्यवर ने उन्हें साध्वी रायकुमारीजी (सुजानगढ) के साथ भेजा। उन्होंने साध्वी हुलासांजी द्वारा दिए गए संस्कारों एवं शिक्षाओं को जीने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप सबके साथ उनकी अच्छी चित्त समाधि रही। दो वर्षों के पश्चात जब साध्वी सत्यप्रभाजी ने आचार्यवर के दर्शन किए तब आपने कहा – साध्वी हुलासांजी में साध्वी भत्तूजी के संस्कार हैं और अपने पास रहने वाली साध्वियों में भी उन्होंने अच्छे संस्कार भरे हैं। साध्वी सत्यप्रभाजी ने उन प्राप्त संस्कारों की बदौलत अच्छा परिचय दिया है। आचार्यश्री ने उनको 31 परिष्ठापन से पुरस्कृत भी किया।

तप का खून और त्याग का ग्लूकोज

साध्वी हुलासांजी बीदासर समाधिकेन्द्र में स्थिरवास कर रही थी। किसी साध्वी की जांच करने महिला डाक्टर आई। उन दिनों साध्वी हुलासांजी संलेखना कर रही थी। डाक्टर ने तपस्विनी साध्वीजी के दर्शन किये। उनकी आंखें देखकर डाक्टर बोली – इनके शरीर में पांच ग्राम भी खून नहीं, इसलिए ग्लूकोज और खून दोनों चढाना जरूरी है। डॉक्टर का कथन सुनते ही उन्होंने कहा – "मेरे शरीर में तो तपस्या का खून और त्याग का ग्लूकोज चढेगा"। साध्वी हुलासांजी का साहसपूर्ण उत्तर सुनकर डॉक्टर आश्चर्य चकित रह गई। उसका सिर श्रद्धा से नत हो गया। साध्वी हुलासांजी का वजन लगभग 60–65 किलोग्राम था। कद ठिगना होने के कारण शरीर काफी भारी भारी लगता था। तपस्या के कारण अंतिम दिनों में उनका वजन मात्र 25 किलोग्राम रह गया। उनका मनोबल सदा बढता–चढता रहा।

अनशन की भावना और क्रियान्विति

साध्वी हुलासांजी के अन्तस में यह भावना रहती थी कि "मैं अनशन पूर्वक समाधि मरण को प्राप्त करूं" यह बात वे जब भी अवसर आता साथ वाली साध्वियों को बतातीं। सं. 2037 का चातुर्मास प्रारंभ हुआ। वृद्धावस्था तथा तपस्या के कारण कमजोर होने से उनके पूरे शरीर में सूजन आ गई और पाचनशक्ति अत्यधिक कमजोर हो गई। उन दिनों उनके बेले–बेले की तपस्या चल रही थी। ऐसी स्थिति में भी वे अपने करणीय कार्यों के प्रति पूर्ण सजग थी। संवत्सरी के दिन उन्होंने व्याख्यान दिया और गुरु–गुणगान करते करते वे इतनी भावविभोर हो गईं कि श्रोताओं को यह भान ही नहीं हुआ कि – ये बीमार है।

आसोज महीने के प्रारंभ से उनके अन्तःकरण को अनशन की भावना प्रेरित

करने लगी। एक दिन उन्होंने अपनी सहगामी साध्वी मनोहरांजी एवं बिदामांजी से कहा – तुम दोनों ने तन–मन से मेरी बहुत सेवा की है और अभी भी कर रही हो। गुरु–कृपा और तुम दोनों के सहयोग से मेरी संयम यात्रा सुखपूर्वक चल रही है। परन्तु तुम दोनों अब एक बात का ध्यान रखना। मेरे जीवन के अंतिम समय में संथारा अवश्य करा देना।

तपस्या का क्रम बेले–बेले का चल ही रहा था। कभी–कभी वे तेला भी कर लेती। कार्तिक कृष्णा 6 को उन्होंने तेले का पारणा किया और एक प्रहर तक चौविहार त्याग कर दिया। मध्याह्न के समय भोजन करने बैठी और दो ग्रास मुंह में लिए और दूसरे दिन सूर्योदय तक चौविहार त्याग कर दिए। सतियों ने पानी के लिए पूछा – तब उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया, अब इस जीवन में आहार करने के भाव नहीं है। उस दिन से शारीरिक कमजोरी ज्यों–ज्यों बढती रही, त्यों–त्यों उनका मनोबल दृढ़ से दृढ़तर होता गया। कार्तिक कृष्णा 9 को प्रातः वे आराधना सुन रही थी। लगभग नौ बजे उन्होंने आत्मशक्ति से संकेत की अभिव्यक्ति देते हुए तीन अंगुलिया उठाकर तिविहार संथारा कराने का संकेत किया। उस समय समाधिकेन्द्र की व्यवस्थापिका का दायित्व साध्वीश्री गौराजी पर था। साध्वी गौरांजी व्याख्यान दे रही थी। उन्हें जब यह जानकारी मिली तब प्रवचन समाप्त होते ही उन्होंने 21 साध्वियों एवं सैकड़ों श्रावक श्राविकाओं की उपस्थिति में तिविहार संथारा करा दिया।

प्रातः नौ बजकर पचपन मिनिट पर साध्वी हुलासांजी ने अनशन स्वीकार कर अहोभाव और कृतार्थता का अनुभव किया। उनके रोम–रोम से प्रसन्नता फूट रही थी और आभामण्डल से पवित्रता प्रवाहित हो रही थी। अनशन के समाचार आचार्यवर के पास पहुंचे। आचार्यप्रवर ने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा – साध्वी हुलासांजी ने साहस का परिचय दिया है। बीदासर समाधिकेन्द्र की यह प्रथम वयोवृद्धा साध्वी है जो अग्रगामी हैं। इन्होंने गुरुदृष्टि की पूर्ण आराधना की। इनकी समर्पण भावना सदैव उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होती रही है।

आचार्यश्री ने उसी समय एक सन्देश दिया –

वयोवृद्धा साध्वी हुलासांजी!

बहुत साहस का परिचय दिया। तिविहार संथारा पचख लिया। अब विशेष मनोबल का परिचय देकर समाधि पूर्वक पण्डितमरण प्राप्त करो। तुमने शासन की अच्छी सेवा की। हमारी नई साध्वियों के लिए तुम्हारी श्रद्धा–भक्तिमयी अनेक बातें अनुकरणीय है। आत्मबल प्रबल रहे। परिणाम चढते बढते रहे।

साध्वी गौरांजी के सेवाकाल में बीदासर समाधि केन्द्र में पहला पवित्र कार्य हो रहा है – साध्वी हुलासांजी का तिविहार संथारा। उनको जितना सहयोग अपेक्षित है, उससे अधिक सहयोग देना। अपने धर्मसंघ की गौरवमयी परम्परा को और अधिक चमकाना है।

आचार्य तुलसी

जैन विश्व भारती, लाडनूं

वि. सं. 2037 कार्तिक कृष्णा नवमी

साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी ने उनके आत्मबल और मनोबल का उल्लेख करते हुए अपने संदेश में कहा –

श्रद्धाशीला साध्वीश्री हुलासांजी!

आपके साहसपूर्ण अभियान के लिए शत–शत बधाइयां। आपकी तपस्या, स्वाध्यायशीलता, संघनिष्ठा और संघ–संघपति के प्रति सहज समर्पण की भावना उल्लेखनीय है। अन्तिम क्षणों में पूर्ण आत्मस्थ रहकर परमाराध्य गुरुदेव के पोषक आशीर्वचन से आत्मतोष प्राप्त करें। आपके भावी–जीवन के प्रति शुभाशंसा।

नवमी के दिन जप, स्वाध्याय के बीच साध्वी हुलासांजी अपूर्व एकाग्रता एवं आत्मस्थता का अनुभव कर रही थी। बीदासर के तथा आसपास के क्षेत्रों के लोगों का आवागमन अनवरत चालू रहा। वे सभी से क्षमायाचना कर आत्मिक स्वस्थता की ओर आगे बढ़ती रही। परिणामों की उज्ज्वल भावधारा में अवगाहन करती रात्रि के नौ बजकर पैंतालीस मिनिट पर इस संसार से विदा हो गई।

जैन विश्व भारती के पवित्र–प्रांगण में उनकी स्मृति करते हुए आचार्यश्री तुलसी ने कहा –

साध्वी हुलासांजी सिरसा की थी। बचपन में साध्वी बनी और साध्वी भत्तूजी (बड़ा) बीदासर के साथ काफी वर्ष रहीं। भत्तूजी के स्वर्गवास के बाद इन्हें अग्रगण्या बनाया गया। चलने–फिरने में असमर्थ होने पर इन्हें समाधि केन्द्र बीदासर में रखा गया और वहीं उनका अनशन पूर्वक समाधि मरण हुआ।

हुलासांजी के जीवन की तीन प्रमुख विशेषताएं थीं –

1. गण व गणपति के प्रति सम्पूर्ण समर्पण।
2. तपस्या में जप, स्वाध्याय आदि का सतत प्रयोग।
3. उत्कृष्ट संयम की साधना।

ये तीनों विशेषताएं उनके जीवन में साकार दिखाई देती थीं। छल–छद्म से रहित उनका जीवन दूसरों के लिए अनुकरणीय था। वे अपने में ही मस्त रहती थी। दूसरों से निरर्थक बातचीत नहीं करती थीं। हुलासांजी ने अपने जीवन को धन्य बनाया तथा धर्मसंघ की शोभा बढाई।

7. साध्वी चान्दांजी (गोगुन्दा) (760)

साध्वी चान्दांजी घोर तपस्वी मुनिश्री सुखलालजी की संसारपक्षीय मां थी। उन्होंने तेरापंथ को ऐसा पुत्ररत्न समर्पित किया, जिसने तपस्या और सेवा के संदर्भ में नए कीर्तिमान स्थापित किए। साध्वी चान्दांजी भी तपस्या के क्षेत्र में पुत्र की भांति गतिमान रही और तपस्विनी के रूप में ख्याति अर्जित की। साध्वी चान्दांजी और मुनि सुखलालजी – मां और पुत्र दोनों ने अपनी तप साधना से संघ की नींव को अमाप्य गहराई दी और संघ की प्रभावना को ऊँचाई पर स्थापित किया।

जन्म : विवाह : वैराग्य

साध्वी चान्दांजी का जन्म 1938 में हुआ। उनका जन्मस्थल तरावलीगढ (मेवाड़) के सेठिया परिवार में हुआ। उनका ससुराल गोगुन्दा के सिसोदिया परिवार में था। सं. 1956 में चान्दांजी ने पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम रखा गया – सुखलाल।

सं. 1956 का वर्ष राजस्थान में भयंकर महामारी का प्रकोप लेकर आया। उस महामारी ने कई–कई परिवारों को अपना ग्रास बना लिया। महामारी ने ऐसा ही ताण्डव नृत्य गोगुन्दा के सिसोदिया परिवार में मचाया। परिवार के प्रायः सभी सदस्यों को मौत की गोद में सुला दिया। मात्र तीन सदस्य बचे – बालक सुखलाल, उसकी मां चान्दांजी और दादी। चारों ओर दुख की अंधियारी रात में मां के लिए 'सुख' ही सुख की एक किरण था।

गोगुन्दा में साधु–साध्वियों का आगमन होता रहता था। चान्दांजी व्याख्यान सुनने जातीं, सामायिक करतीं। उन्हें वहां आनन्द की अनुभूति होती। साधु–साध्वियों के सम्पर्क से मां–पुत्र दोनों के मन में संयम के प्रति आकर्षण पैदा हुआ। धीरे–धीरे दोनों का वैराग्य भाव पुष्ट बना और साकार करने का संकल्प ले गुरुदर्शन करने बीदासर गए। उस समय अष्टामाचार्यश्री कालूगणी बीदासर में विराज रहे थे। मां और पुत्र दोनों ने जीवन में पहली बार रेलयात्रा की और गुरुदर्शन कर आत्मिक आह्लाद की अनुभूति की। आचार्यवर कालूगणी के विराट व्यक्तित्व और तेजोमय भाल ने बालक सुखलाल को प्रथम दर्शन में ही बांध लिया। उन्होंने दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की। अब चान्दांजी के साथ सुखलालजी की दीक्षा की भावना के समाचार गोगुन्दा में उनके परिजनों ने सुनें तो कुछ लोगों ने दीक्षा के लिए अपनी असहमति प्रस्तुत की। उन्होंने पत्र के माध्यम से संवाद भेजा कि – "इन मां बेटे को

दीक्षा देने की हमारी अनुमति नहीं है।" तेरापंथ की अपनी परम्परा है कि किसी भी व्यक्ति को दीक्षा तब तक नहीं दी जाती जब तक उसके अभिभावकों की लिखित अनुमति न मिल जाए। भले व्यक्ति कितना ही योग्य हो। चान्दांजी के सामने दीक्षा में हल्की–सी उलझन आ गई अतः उनका चिन्तित होना स्वाभाविक था।

समस्या का अभिनव समाधान

उन्होंने अपनी व्यथा–कथा मुनिश्री मगनलालजी के सामने रखी। मंत्रीमुनि ने अपनी प्रखर प्रतिभा से समस्या को सहज समाधान देते हुए कहा – यह सारा झगड़ा एक मात्र सुखलाल के लिए है। उसकी दीक्षा तो तुम्हारी आज्ञा से हो सकती है, क्योंकि तुम इसकी मां हो। तुम्हारे रहते इसकी आज्ञा के लिए दूसरे की आवश्यकता नहीं है। तुम पहले इसे आज्ञा दे दो, फिर संभवतः तुमको कोई नहीं रोकेगा, आज्ञा स्वतः मिल जाएगी।

मंत्री मुनि के उपरोक्त कथन से चान्दांजी को कुछ सन्तोष तो हुआ पर मन में एक सन्देह खड़ा हो गया – पुत्र को दीक्षा देने के बाद आचार्यवर मुझे दीक्षा न दें तो मैं क्या करूंगी? उन्होंने मुनि मगनलालजी के सामने निस्संकोच भाव से अपनी आशंका रख दी। मंत्रीमुनि ने दृढ़ता के साथ कहा – 'यह जिम्मेदारी मेरी है, तुम इस बात पर किंचित भी विचार मत करो और आज्ञा दे दो। माता ने सहर्ष दीक्षा की स्वीकृति दी और सं. 1968 पौष कृष्णा 4 को राजलदेसर में कालूगणी के कर–कमलों से मुनि सुखलालजी की दीक्षा सानन्द सम्पन्न हो गई।

मंत्रीमुनि के चिन्तन के अनुसार परिवार वालों ने चान्दांजी को सहर्ष अनुज्ञा प्रदान की। उन्होंने स. 1968 फाल्गुन कृष्णा 3 को लाडनूं में पूज्य कालूगणी के हाथों चारित्र–रत्न प्राप्त किया। उनके साथ साध्वी केसरांजी और जड़ावांजी की भी दीक्षा हुई। उस दिन तीन दीक्षा हुई और तीनों ही मेवाड़ की बहिनें थी। कालूयशोविलास में आचार्यवर ने उसे निम्न पद्य में इस प्रकार प्रस्तुति दी है –

अड़सट्ठे माघ महोत्सव है चन्देरी,
फागण बिद तीज तीन दीक्षा शिवसेरी।
सुखमुनि की मां चान्दां, केसरा, जडावां.....

दीक्षित होने के पश्चात् साध्वी चान्दांजी को प्रायः–प्रायः गुरुकुलवास में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। परमपूज्य कालूगणी का तो उन पर सहज वात्सल्य भाव था ही, मातुश्री छोगांजी की भी उन्हें विशेष कृपा प्राप्त थी। साध्वीप्रमुखा जेठांजी,

कानकुमारीजी एवं झमकूजी की भी उन्हें निकट सन्निधि मिली। उनके सीधे सादे निश्छल व्यवहार के प्रति साध्वी–समाज का आत्मीय भाव था। वे साधु चर्या के प्रति पूर्ण जागरूक थी और प्रमाद आलस्य से कोसों दूर रहती थी। स्वाध्याय और सेवा के साथ तपस्या से अपने आपको भावित रखती। घोर तपस्वी मुनिश्री सुखलालजी की भांति सेवा और तपस्या उनकी पहचान बनीं।

अन्तरंग व्यक्तित्व की ऊंचाई

आचार्यश्री तुलसी ने उनके व्यक्तित्व के अन्तरंग पक्ष की प्रस्तुति एक गीत के माध्यम से दी है –

चांदाजी समणी सुखकारी धारी संयम सार।
विविध प्रकार तपस्या करनै कीधो सफल जमार।।
संयम रंगे निशदिन रमती, खमती परिषह घोर।
वमती पाप प्रमाद प्रसंगज, क्रमती करम कठोर।।
कर्म निर्जरा करण वरण शिव रहती अति हुंशियार।
गुरु सेवा तन मन स्यूं बहती, अब तप रो अधिकार।।

उत्कृष्ट तपः साधना के प्रयोग

साधु–चर्या के अनुरूप जीवनचर्या को ढालते हुए साध्वी चान्दांजी तप समरांगण में कूद पड़ी। उन्होंने उपवास से लेकर सौलह तक तपस्या की लड़ी की और अठारह से लेकर चौतीस दिन की तपस्या तक पन्द्रह थोकड़े किए। उनकी तपस्या निम्न तालिका में देखें –

उपवास	–	1601	पन्द्रह	–	1
बेला	–	224	सोलह	–	2
तेला	–	126	अठारह	–	1
चोला	–	30	उन्नीस	–	1
पंचोला	–	25	इक्कीस	–	2
छह	–	7	बाइस	–	1
सात	–	3	चौबीस	–	1
आठ	–	4	सत्ताइस	–	1
नौ	–	2	उनतीस	–	1
दस	–	2	तीस	–	2

ग्यारह	–	1	इकतीस	–	1
बारह	–	1	बत्तीस	–	1
तेरह	–	1	तेतीस	–	1
चवदह	–	2	चौतीस	–	2

उनके कुल तपस्या 3513 दिन की हुई। कालूगणी की ख्यात में साध्वी चान्दाजी की पैंतीस दिन की तपस्या का भी उल्लेख है पर उनकी (चान्दांजी) तपस्या में नहीं है।

स. 1996 में आचार्य तुलसी ने बीदासर चातुर्मास किया। मातुश्री छोगांजी को सेवा कराने के उद्देश्य से वह चातुर्मास बीदासर में हुआ।

उस चौमासे में साधु–साध्वियों एवं श्रावक समाज में लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप की आठ परिपाटी एक साथ प्रारंभ हुई। तेरापंथ धर्मसंघ में यह एक नया कीर्तिमान था। उन आठ तपस्वियों में एक साध्वी चान्दाजी थी।

आठों के नाम इस प्रकार है –

साध्वी	चान्दांजी	तीसरी	परिपाटी	बीदासर	में
"	अणंचाजी	चौथी	"	"	"
"	प्यारांजी	दूसरी	"	"	"
मुनिश्री	अमृतलालजी	चौथी	"	"	"
" "	सुपारसमलजी	पहली	"	राजनगर	"
साध्वी	गुलाबांजी	"	"	मोमासर	"
श्राविका	लच्छी बाई (सवेग)	चौथी	"	बीदासर	"
श्रावक	मंगलचंदजी संचेती	पहली	"	सरदारशहर	"

इसी वर्ष शेषकाल में मुनि चम्पालालजी गंगापुर तथा साध्वी जड़ावांजी चाड़वास ने भी पहली परिपाटी प्रारंभ की।

साध्वी चान्दाजी के तीसरी परिपाटी का क्रम पूरा होने वाला था। परिपाटी के क्रम में एक तेला 1 बेला और दो उपवास करने थे – पांच दिन पारणे के होते हैं – इस प्रकार केवल बारह दिन शेष थे। बेले की तपस्या में उनकी शारीरिक स्थिति कमजोर देखकर उन्होंने आजीवन अनशन स्वीकार कर लिया। सात घंटे के अनशन में सं. 1996 कार्तिक शुक्ला सातम को रात्रि के समय बीदासर में उनका स्वर्गवास हो गया। भावों की श्रेणी अन्त तक प्रवर्धमान रही। लगभग 28 वर्ष तक संयमी जीवन

में सेवा और तपस्या के माध्यम से साध्वीजी ने खूब कर्म निर्जरा कर अपने जीवन को हल्का फूल–सा बना लिया। आचार्यश्री तुलसी ने दुष्कर तपस्या की भूरि–भूरि सराहना करते हुए एक सोरठा कहा –

चान्दा सती सुजाण, माता मुनि सुखलाल की।
कर तप ग्रही कृपाण, कर्म–कटक स्यूं जुध कियो।।

इसके साथ 14 पद्यों का एक लम्बा गीत रचकर आचार्यश्री ने तपस्विनी साध्वी के गुणों का व्याख्यान किया जिसका अन्तिम पद्य है –

छिनवै बीदासर चौमासो कार्तिक मास मझार।
सुद बारस चान्दां गुण गाया गणपति हर्ष अपार।।

पूरा गीत पढे – शासन सुषमा पृ.

8. साध्वी ज्ञानांजी (पीतास) (765)

साध्वी ज्ञानांजी का जन्म सं. 1960 आषाढ कृष्णा 10 को पीतास (मेवाड़) गांव में हुआ। उनका गोत्र धाड़ीवाल था। उनके पिता का नाम दीपचंदजी और मां का नाम नोजांजी था। नोजांजी का जीवन प्रारंभ से ही उतार–चढाव का रहा। उनके कई सन्तान हुई पर प्रायः कालकवलित हो गई। एक मात्र पुत्री बची जिसका नाम रखा 'घीसी'। उस समय यह मान्यता थी कि जिनकी संतान जीवित नहीं रहती उसके ऐसे अर्थहीन नाम रख दिए जाते थे। संयोग की बात थी कि मां को एक बेटी का सुख प्राप्त हो गया। लेकिन जिसकी नियति वाम होती है – उसके जीवन में एक दुःख का अन्त होने से पहले दूसरा नया दुःख खड़ा हो जाता है। नोजांजी इकलौती संतान के लालन–पालन का आनन्द उठा ही नहीं पाई कि महामारी ने उनके पति को उठा लिया। पति की मृत्यु से नोजा बाई के जीवन में अमावस जैसा अन्धेरा छा गया। ऐसी विषम स्थिति में भी उन्होंने अपना संतुलन नहीं खोया। धैर्य और साहस का आलम्बन लेकर हर स्थिति को खुली आंखों से देखती और निर्भय बन आगे बढ़ने का प्रयत्न करती। कर्मठता का वरदान उन्हें सहज प्रकृति से मिला था, इसलिए उन्होंने अपने घर की स्थिति को अच्छी तरह संभाल लिया। उनके पति लेन–देन का अच्छा धंधा करते थे, नोजांबाई ने उस धंधे को कुशलता से संभाल लिया। वे अपने गांव में बोहरणजी के नाम से प्रसिद्ध हो गई। उनकी नीतिनिष्ठा से बोहरा लोग भी बहुत संतुष्ट थे।

वैराग्यभावना का उदय

पीतास में साधु–साध्वियों का समय–समय पर पधारना होता रहता था, जिससे नोजांजी उनके सम्पर्क में आती रहती थी। वे नियमित दर्शन करती और व्याख्यान सुनती थी। वे अपनी पुत्री को भी साथ में ले जाती। ज्यों–ज्यों धर्म के प्रति उनका झुकाव बढा स्वतः संसार से विरक्ति होने लगी। बालिका के मन में भी साधु जीवन के प्रति आकर्षण बढने लगा।

एक घटना जिसने दिशा ही बदल दी

बालिका घीसी ने देखा उसके मकान में रहने वाला एक भाई अपनी पत्नी को निर्दयता से पीट रहा था। उसकी पत्नी पीड़ा से करुणक्रन्दन कर रही थी वह गालियां भी बक रहा था। बालिका घीसी भयभीत हो अपनी मां के आंचल में छिप गई और उसने अपनी मां से पूछा – 'यह क्यों मार रहा है?' मां ने कहा – "पुरुष अपनी पत्नी पर हर दृष्टि से अधिकार जमाता है। जो व्यक्ति क्रोध में पागल हो जाते हैं

अथवा क्रूर स्वभाव के होते हैं वे कुछ भी हरकत कर बैठते हैं, यह महिला होने की त्रासदी है, उसे सब कुछ सहन ही करना पड़ता है।'' इस घटना ने बाल मन पर एक गहरी चोट की और हल्के फुल्के वैराग्य रंग को गहरे मजीठी रंग में बदल दिया। संकल्प विचारों की आंच में पककर मजबूत बना और बालिका ने दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की। मां के मन वैराग्य भाव पहले से ही था। दोनों ने गृह त्याग कर साधु बनने का दृढ संकल्प कर लिया।

दीक्षा : दो और दो चार

राजस्थान में उस समय संचार–साधनों की भयंकर कमी थी। इसलिए यात्रा करना काफी कष्टप्रद एवं समय सापेक्ष था। अष्टमाचार्यश्री कालूगणी का प्रवास उस समय थली में था। उन्होंने पत्र के माध्यम से अपनी दीक्षा की भावना गुरु–चरणों में प्रस्तुत की और साधुप्रतिक्रमण सीखने की अनुज्ञा प्राप्त की। साध्वियों के पास प्रतिक्रमण सीखकर मर्यादा–महोत्सव के समय उन्होंने कालूगणी के दर्शन करने का निश्चय किया। उनकी देवरानी मगनांजी और उनके पुत्र प्यारचंदजी की भी दीक्षा लेने की भावना थी। दीक्षा के सन्दर्भ में एक शुभ संयोग बन गया। एक साथ चारों सदस्य मां–बेटी और मां–बेटा अपने परिवार को साथ लेकर गुरु–चरणों में उपस्थित हुए और दीक्षा की प्रार्थना की। उन्होंने सं. 1968 फाल्गुन कृष्णा 6 को अष्टमाचार्य श्री कालूगणी द्वारा लाडनूं में भागवती दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा के पश्चात् बालिका घीसी का नाम साध्वी ज्ञानांजी रखा गया। उस समय उनकी अवस्था मात्र साढे आठ साल की थी, गर्भ के नौ महीने अवस्था के साथ नत्थी करने से दीक्षा का कल्प मान्य किया गया। आचार्य तुलसी ने कालूयशोविलास में इन चारों की दीक्षा का वर्णन करते हुए लिखा है –

बिद छठ बलि दीक्षा च्यारूं वरी सुभावां।
मुनि प्यारचन्द, मगनां नोजां ज्ञानांजी,
पीतास निवासिणी जीती जीवन–बाजी।।

कालू. उल्लास.1 ढा. 16 गा. 24

दीक्षित होने के पश्चात् साध्वी ज्ञानांजी को गुरु सन्निधि में रहने का दीर्घकालीन सौभाग्य प्राप्त हुआ। अवस्था छोटी होने से उनकी बाल–सुलभ चंचलता सबको आकृष्ट करने वाली थी। वे सहज–सरल और सीधी थी, उनके बाल्यकाल की कुछ ऐसी घटनाएं हैं जिन्हें पढ़कर हंसी आए बिना नहीं रह सकती।

साध्वी हीरांजी (जो साध्वी ज्ञानांजी को साध्वाचार तथा कपड़े पहनने आदि

का प्रशिक्षण देती थी) ने उनको कई बार समझाया कि सिर को पछेवड़ी से ढंककर रखना चाहिए। वे छोटी थी, साध्वी के कपड़ों का भार लगता था अतः सिर प्रायः अधढका ही रहता। एक दिन झुंझलाहट में साध्वी हीरांजी ने कहा – ज्ञानांजी! यह पछेवड़ी खूंटी पर टांग दो। बाल साध्वी कथन के मर्म को पकड़ नहीं पाई। बड़ी साध्वी ऐसा क्यों कह रही है कुछ भी नहीं समझ पाई। उन्होंने तत्काल पछेवड़ी खोली और खूंटी पर टांग कर बैठ गई। उधर से आने वाली साध्वियाँ बिना पछेवडी ओढ़े साध्वी को देखकर हंसे बिना न रह सकी। सतियों ने पछेवड़ी टांगने का कारण पूछा तो उन्होंने भोलेपन के साथ कहा – मुझे साध्वीश्री हीरांजी ने ऐसा करने को कहा था। मैंने सोचा – आज मुझे नई पछेवड़ी मिलेगी इसलिए पुरानी पछेवड़ी को खूंटी पर टांग दी।

सहज–सरलता

जैन साधु पादविहारी होते हैं, उसमें अवस्था भी अपवाद नहीं होती। साध्वी ज्ञानांजी मेवाड़ की थी, वहां पथरीली भूमि है, इसलिए सर्दी के मौसम में बर्फ जमे धोरों पर चलना उनके लिए असह्य–सा हो जाता। एक बार शीतकाल में विहार करते समय रेतीले टीबों की ठंडी धूल के कष्ट से बचने के लिए साध्वी ज्ञानांजी ने अपने रजोहरण को खोलकर पैरों के नीचे रख लिया और वहीं खड़ी हो गई। साध्वीश्री हीरांजी ने पूछा तो वे बोली – ''रेत बहुत ठंडी है, मेरे से चला नहीं जाता। करुणार्द्र हृदय साध्वी हीरांजी ने तत्काल उनको अपने कन्धों पर बैठाया और डेढ मील तक ले गई। संयम साधना में अनुराग पैदा करने में बड़ों का यह वात्सल्य भाव बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। साध्वी हीरांजी इस सन्दर्भ में कुशल थीं।

साध्वी ज्ञानांजी सरल स्वभाव की थी। जो मन में होता स्पष्टता से कह देती। एक बार कालूगणी ने उनसे पूछा – नानकी! म्हारै कनै रहसी या जेठांजी कनै? उन्होंने ऋजुता के साथ कहा – ''मैं तो म्हारै महासत्याजी महाराज कनै ही रहस्यूं। आरैं बिना सुबह मनै साकर की कांकर कुण देवै।'' उस समय साधु–साध्वियां प्रातःकालीन नाश्ता/प्रातराश नहीं करते थे। पर साध्वी ज्ञानांजी छोटी थी इसलिए सुबह साध्वीप्रमुखा जेठांजी उनको मिश्री आदि मंगाकर दिया करते थे।

साध्वी ज्ञानांजी के जीवन निर्माण में साध्वीप्रमुखा जेठांजी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। दीक्षा लेते ही संस्कारों की घूंटी उन्हीं से मिली और चार वर्ष बाद जब साध्वीप्रमुखाजी राजलदेसर में स्थिरवासी बनीं, साध्वी ज्ञानांजी को भी उनकी सेवा में रहने का सौभाग्य मिला। यह शुभ संयोग उनके जीवन निर्माण के लिए मणिकांचन

योग जैसा सिद्ध हुआ। उन्होंने साध्वाचार में जागरूक रहकर विनय, अनुशासन, सेवा और समर्पण भावना का अच्छा विकास किया। अध्ययन की दृष्टि से वे सदा अप्रमत्त भाव से पुरुषार्थ करती रही और उसी के परिणाम स्वरूप पांच आगम, नाममाला, सिद्धांतचन्द्रिका, शांतसुधारस कल्याणमंदिर, भक्तामर तथा अनेक थोकड़े, व्याख्यान आदि लगभग पचीस हजार पद्य कंठस्थ किए। कंठस्थ ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिए स्वाध्याय का क्रम भी उनका सुव्यवस्थित था।

लेखनकला का विकास

साध्वी ज्ञानांजी ने चौदह वर्ष की अवस्था में लिपि कला का अभ्यास चालू किया। निरन्तर अभ्यास करने से लिपि में सौन्दर्य निखर आया। लेखन कार्य में उनकी सहज रूचि थी। उन्होंने लगभग 11 पुस्तकें – (एक–एक पुस्तक में चार सौ से अधिक पत्र दोनों ओर से लिखे होते हैं) लिखीं। एक बार वे स्थानांग सूत्र की प्रतिलिपि लिखकर लाई। लिपि का सौन्दर्य, स्वच्छता और अक्षरों की बनावट को देखकर पूज्य कालूगणी ने उनकी लेखन कला की साधु–साध्वियों की परिषद में प्रशंसा की।

अग्रगामी और यात्राएं

साध्वीप्रमुखा जेठांजी का स. 1981 कार्तिक शुक्ला दशमी को राजलदेसर में स्वर्गवास हुआ। उनकी सेवा में रहने वाली तेरह साध्वियां थी। आचार्यवर ने उनमें से पांच साध्वियों को अग्रगामी बनाया, उनमें एक नाम साध्वी ज्ञानांजी का है। विनम्रता से जुड़े हाथ, झुका हुआ सिर, विचारों की उदारता, लज्जाशीलता आदि गुणों को देखकर आचार्यवर ने उन्हें 21 वर्ष की अवस्था में अग्रणी बना दिया। उन्होंने सैंतीस साल तक मारवाड़, मेवाड़, मालवा, हरियाणा, थली आदि क्षेत्रों में विहार कर लगभग 21 हजार मील की यात्रा की। उन्होंने हजारों व्यक्तियों को उपदेश देकर सुलभबोधि अणुव्रती और उनके श्रावक बनाने का प्रयत्न किया।

नजीर निरभिमानता की

उनकी निरभिमानता, स्वावलम्बिता और सरलता विशेष उल्लेखनीय एवं अनुकरणीय थीं। वे अपने काम स्वयं करके आत्मतोष का अनुभव करतीं। कभी–कभी तो व्याख्यान के समय वे अपना कम्बल स्वयं बिछा लेती। उनकी सहवर्तिनी साध्वियां उन्हें बार–बार निवेदन करती – जब आप स्वयं कम्बल बिछातीं है उस समय श्रावक–श्राविकाएं सोचते होंगे कि – अनुगामी साध्वियां विनयवान नहीं है तभी

अग्रगण्या को अपने काम स्वयं करने पड़ते हैं।

वे मधुर एवं मृदु भाषा में उत्तर देती – "ईं बारै में लोगां नै विचार करणै री कांई जरूरत है। म्है तो उण पथरीली भूमि में पैदा हुया, भाटां में ही खेल्या कूद्या आ तो गुरुदेव री कृपा हुई जिकै स्यूं संयम रत्न मिल्यो और ओ शासन मिल्यो। सतियां रो ओ जोग मिल्यो, थे म्हारी घणी सेवा करो।"

निर्जरा की उत्तम भावना

जब कभी उनके शरीर में असाता वेदनीय का उदय हो जाता, उस समय मेरे कर्मों की निर्जरा हो रही है, इस लक्ष्य के साथ वे समभाव से उत्पन्न कष्ट को सहन करने का प्रयास करतीं। सं. 2018 में उनका चातुर्मास थामला (मेवाड़) में था। एक दिन वे पानी की पात्री लेकर छत पर जा रही थी। अचानक पैर फिसल जाने से वे गिर पड़ीं। उनकी बाएं हाथ की अंगुली की हड्डी टूट गई। पूरे हाथ में सूजन आ गया, दर्द भी बढ़ गया फिर भी उन्होंने अपनी दैनिक चर्या प्रतिक्रमण आदि में कोई कमी नहीं आने दी। यहां तक कि रात्रि में रामचरित्र का व्याख्यान भी स्वयं देतीं। वेदना की अधिकता देखकर साध्वी सुखदेवांजी ने निवेदन किया – आपके हाथ में वेदना बहुत है, अतः रात्रि का व्याख्यान थोड़े दिन मैं दे दूं। उन्होंने कहा – "बखाण म्हारै कर्म निर्जरा रो सहज साधन है। बखाण देऊं जद वेदना रो अनुभव कम हुवै, इं वास्तै आ निर्जरा तो मनै ही करणै दै।" यह पीड़ा उन्हें अन्तिम समय तक कम या ज्यादा सताती रही, पर इसके कारण अपने संयमचर्या में कहीं कमी नहीं आने देतीं। कभी कभी दर्द के कारण पूरी रात नींद नहीं आती, उसे भी आत्म–साधना में उपयोगी मान स्वीकार करतीं। उनकी कष्टसहिष्णुता और कर्म–निर्जरा की भावना सबको स्वतः प्रभावित करती थी।

गुरुदृष्टि ही सर्वोपरि

साध्वी ज्ञानांजी के जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य था – गुरुदृष्टि की आराधना करना। वे कठिन से कठिन स्थिति में भी गुरु–आज्ञा को शिरोधार्य कर कार्य करने का प्रयत्न करतीं। उस समय उनके दिमाग में विकल्प तो पैदा ही नहीं होता। चातुर्मास से पहले वे जयपुर में प्रवास कर रही थी। वहां साध्वियों के प्रवास–स्थान को लेकर दो श्रावकों में आपस में विवाद खड़ा हो गया। दोनों ने अपनी अपनी तरफ से बीदासर तार देकर अष्टमाचार्य कालूगणी को निवेदन करवाया कि – साध्वियां हमारे मकान में रहें। आचार्यवर को जब विवादग्रस्त स्थिति की जानकारी हुई तो

उन्होंने वहां से विहार करने का आदेश दे दिया। ज्योहीं आदेश की जानकारी मिलीं, वे विहार करने के लिए तैयार हो गई। उस समय सूर्यास्त होने में एक मुहुर्त (48 मिनिट – लगभग) शेष था। श्रावकों ने निवेदन किया – आज अमावस्या है और सूर्यास्त का समय भी नजदीक है अतः आज विहार न कर कल सुबह कर देना। उन्होंने समग्र वातावरण को एक मोड़ देते हुए कहा – गुरु आज्ञा से बड़ा मेरे लिए दूसरा मुहुर्त्त नहीं है।

भार नहीं उपहार बनें

उनका वि. सं. 2010 का चातुर्मास जयपुर के लिए घोषित था। आचार्यश्री ने यह भी संकेत दिया कि – यदि जाने में कठिनाई न हो तो शेषकाल में कोटा–बून्दी की तरफ चली जाना। वे विहार करते–करते सवाई माधोपुर पहुंची तब गर्मी के तेवर बहुत तीखे हो गए। लूएं चलने लगी। श्रावकों ने निवेदन किया – "अब मौसम की अनुकूलता नहीं है, अतः आप आगे न जाएं।" उन्होंने गुरु दृष्टि को सर्वोपरि मानते हुए वहां से विहार कर दिया। संयोग की बात थी कि दूसरी मंजिल में ही उनको 105 डिग्री बुखार हो गया। साध्वियों ने परस्पर चिन्तन किया – एक बार पुनः सवाईमाधोपुर चले जाए, ठीक होने पर पुनः विहार कर देंगे। यह बात जब उनके कानों में आई, वे साध्वियों के मनोबल को बढाते हुए बोली – "इत्तै सै कष्ट नै लेकर आचार्यवर कै आदेश नै टाल देस्यां, फेर तो आपां संघ के वास्तै हार (आभूषण) नहीं बण र भार बण ज्यास्या।" उन्होंने मंत्रिमुनिश्री मगनलालजीं के कथन को उद्घृत करते हुए कहा – "साधपणो लेकर शासण रै काम नहीं आवै और गुरु–आज्ञा रो ध्यान नहीं राखै बीं रो जीवन ही फालतू है।" कोटा पहुंचते–पहुंचते बुखार ने टाइफाइड का रूप ले लिया। उन्होंने 22 दिन कोटा में प्रवास किया और श्रावक समाज की संभाल की। टाइफाइड से आई कमजोरी की परवाह न करते हुए हिम्मत और साहस के साथ कोटा से विहार कर चातुर्मास के लिए जयपुर पहुंच गई।

साध्वी ज्ञानांजी इस प्रकार पचास वर्ष तक आत्म–साधना और धर्म के प्रचार–प्रसार में अपनी शक्ति का नियोजन करती रही और कर्म निर्जरा का महान लक्ष्य बना आगे बढती रहीं। सं. 2018 के शेषकाल का समय था। वे केलवा में प्रवास कर रही थी। चैत्रशुक्ला 12 के दिन उन्हें पीठ में तथा हृदय में असह्य पीडा का अनुभव हुआ। डाक्टर ने ऐलोपैथिक दवा लेने का सुझाव दिया पर उन्होंने दवा लेने से इन्कार कर दिया। त्रयोदशी के दिन केलवा में एक सन्तों का सिंघाड़ा और एक साध्वियों का सिंघाडा पहुंचा। साधु–साध्वियों को देखकर अत्यधिक प्रसन्नता की

अनुभूति हुई। अत्यधिक दर्द के होते हुए आग्रहपूर्वक स्वयं गोचरी गई और पानी भी लाई। अन्तिम क्षण तक सक्रिय और सार्थक जीवन जीती हुई चवदश के दिन मध्याह्न में दो बजकर तीस मिनिट पर पण्डितमरण को प्राप्त हो गई।

9. साध्वी अणचांजी (श्रीडूंगरगढ़) (770)

साध्वी अणचांजी का जन्म राजस्थान के बीकानेर जिला में श्रीडूंगरगढ़ तहसील के राजपुरा नाम के छोटे–से कस्बे में हुआ। वह सं. 1951 वैशाख शुक्ला पूर्णिमा का दिन था। उनके पिता सूरजमलजी हीरावत वहां के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनकी मां का नाम सोना देवी था। उनके दस सन्तान पैदा हुई, उनमें दूसरा नम्बर बालिका अणचां का था। कहते हैं कि उनसे पहले भी एक कन्या का जन्म हुआ। माता–पिता और परिजनों को दूसरी संतान के समय पुत्र जन्मोत्सव की कामना थी, उसी की संभावना एवं आशा संजोए परिजनों को जब बेटी के जन्म की खबर मिली, एक बार अच्छा नहीं लगा। इसलिए उन्होंने बालिका का नाम अणची (यानी अनचाही) रखा। नाम से अणची होने पर भी बाल सुलभ चपलता से वह सबकी मनचाही बन गई। बालिका अणचां का गौर वर्ण, गठीला बदन, चंचल आकृति और मुस्कुराती आंखे देखकर सब मुग्ध से हो जाते।

मां की भविष्यवाणी

बालिका अणचां घुटनों के बल चलना सीख ही रही थी कि एक दिन घर के बाहर चौराहे तक चली गई। वहां गाय भैंस आदि पशु आ जा रहे थे, पर बालिका वहीं निडर बैठी खेल रही थी। तभी उनके पिता उधर से निकले। अंकेली बच्ची को चौराहे पर बैठी देख गोद में उठा लाए और अपनी पत्नी को उलाहना देते हुए कहा – बच्ची का ध्यान नहीं रखती, कहीं पशु उसे चोटिल कर देंगे तो..... कहीं पशु के पैरों के नीचे आ जाएगी तो.....? मां ने आत्मविश्वास के साथ कहा – चिन्ता मत करो, यह भाग्यशालिनी है और इसकी पुण्याई जबरी है। इसलिए इसका कुछ नहीं बिगड़ेगा। मां द्वारा की गई भविष्यवाणी उनके जीवन में अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई। केवल वैधव्य का वज्राघात उन्होंने अवश्य झेला, पर वह भी उनके श्रेयस की ओर प्रस्थान करने का निमित्त बना। राजस्थानी लोकोक्ति है कि – सोने की थाली में भी कहीं–कहीं ताम्बे की मेख रह जाती है।

विवाह और वैराग्य

राजस्थान उस समय शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े प्रदेश की गणना में आता था। स्त्री शिक्षा का तो यहां प्रश्न ही पैदा नहीं होता था। जीवन का एक दशक पार करते–करते राजस्थानी कन्याएं गृह कार्यों में माता से प्रशिक्षण प्राप्त कर पारंगत बन जाती थी। बालिका अणचां भी अपनी मां को हर काम में सहयोग करती। वह घर

के सारे काम में दक्ष बन गई। खाना बनाना, सिलाई करना, पशु पालन एवं खेती का काम प्रायः स्त्रियां ही करती थी। ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश किया और परिवार में शादी की चर्चा होने लगी। श्रीडूंगरगढ निवासी बाघमलजी बोथरा के सुपुत्र जेठमलजी के साथ सं. 1962 मिगसर शुक्ला दूज को बालिका अणचां का विवाह हुआ। अपरिचित घर, नया वातावरण और अनजान परिजनों के बीच रहना एक कन्या के लिए कसौटी का समय होता है। नववधू अणची ने ससुराल में समझदारी, कार्यकुशलता और अनुशासन में रहकर अच्छी शोभा प्राप्त की। घर के सारे कार्य उन्होंने दक्षता के साथ संभाल लिए। सास की प्रकृति कठोर थी, पर उन्होंने अपने आपको उनके अनुरूप ढ़ालने का प्रयत्न किया, इसलिए घर का वातावरण उनके लिए प्रेम सौहार्द और वात्सल्य से भरा रहा।

अणची बाई का जन्म जैन तेरापंथी परिवार में हुआ था, पर धार्मिक संस्कार उनके जीवन में बिल्कुल नहीं थे। उनको अपने घर, गृहकार्य और खेती बाड़ी तथा पशु पालन में ही रस आता था। साधु साध्वियों के प्रति न रुझान था और न आकर्षण। बचपन में अपने पीहर के मोहल्ले में जब कभी साधु–साध्वियों को देखती, घर बन्द कर लेती। एक बार उनकी बहिन ने पूछा – घर बन्द क्यों करती हो? तब स्पष्ट भाषा में कहा – ये लोग घर में आते है, रोटी आदि देते हैं तो कहते हैं थोड़ा दो, थोड़ा दो। मैं तो मनुहार करती–करती थक जाती हूँ। उन्हें ससुराल में जाकर साधु–साध्वियों के दर्शन करने का कम ही मौका मिला।

शादी हुए मात्र पांच वर्ष हुए थे, उनके पति जेठमलजी अस्वस्थ हो गए। स्वयं की बढ़ती अस्वस्थता ने जेठमलजी को मृत्यु के भय से आक्रान्त कर दिया। एक दिन उन्होंने अपनी पत्नी से कहा – मेरे शरीर का भरोसा नहीं है। यदि तुम्हे वियोग का दिन देखना पड़े तो धैर्य मत खोना। तुम्हारे में क्षमता हो तो महाव्रतों का महापथ स्वीकार कर लेना, पर पहले स्वयं को अच्छी तरह से तोल लेना। जेठमलजी के शब्द निराशा भरे थे, सुनकर अणची देवी का व्यथित होना स्वाभाविक था। विधि के सामने सब विवश थे। परिवार के सब लोग जागरूक थे, चिकित्सा भी चल रही थी पर उनको बचा नहीं पाए। मात्र 22 वर्ष की अवस्था में जेठमलजी चल बसे। उस समय उनकी पत्नी सत्रह वर्ष की थी। वह युग रूढ़ परम्परा और अन्धविश्वास को प्रश्रय देने वाला था। एक सतरह वर्षीया बालिका दो वर्ष तक कोने में बैठकर वैधव्य का दंश झेलती रही। उस समय एक विधवा को जो शारीरिक, मानसिक कष्ट झेलने पड़ते थे, वह हृदयद्रावक परिस्थितियां थी। अणचीदेवी ने ऐसी विरह व्यथा की विकट बेला में स्वयं को संतुलित बनाए रखा। अपने मनोबल को डांवाडोल नहीं होने दिया।

कल्पवृक्ष घर आया

वैधव्य के दुःखद और संतप्त वातावरण में अणचीदेवी को चारों ओर कांटे ही कांटे दिखाई दे रहे थे। अचानक उन्हें लगा, बरसाती हवा का एक झौंका आया है। जब उन्हें उनकी सास अष्टमाचार्य श्री कालूगणी के दर्शन कराने ले गई। आचार्यवर का श्रीडूंगरगढ में आगमन हुआ। दर्शन और व्याख्यान श्रवण से उनके मन को शांति मिली। साध्वियों के पास गई, बातचीत की। उनके आत्मीय व्यवहार ने प्रभावित किया। पति की प्रेरणा स्मृति में पहले से सुरक्षित थी। अणचीदेवी ने सोचा – सौभाग्य से कल्पवृक्ष की छांव उपलब्ध हो गई है, तो इसीमें जीवनभर विश्राम करुं और सुख समाधि का अनुभव करुं।

साध्वी बनने का संकल्प मन की धरती पर उगा। उसे फलवान बनाने के लिए क्या करना चाहिए, यह जानकारी करने के लिए वे साध्वियों के पास गई। बातचीत के प्रसंग में एक साध्वी के पास अपनी भावना रखते हुए कहा – मैं साध्वी बनना चाहती हूँ। वहां पास में खड़ी साध्वी ने राजस्थानी भाषा में पूछा – बाई! तूं कुण है? तनै कांई आवै? तत्काल अणची बाई ने सहजता से बताया – महाराज! मैं डूंगरगढ कै सूरजमलजी हीरावत री बेटी हूँ। मैंने काम घणांई आवै – "मैं सगली रसोई बणाणी जाणूं। आटा रो, दाल रो सीरो बणाल्यूं। गोंद मैथी रा लाडू भी करणा आवै। गायां भैंस्या दूहणी, विलोवणो करणो सै काम करणा आवै। खेती बाड़ी रा काम, जिंया मोठ उपाड़ना, सिट्टा तोड़ना, सब काम अकेली करल्यूं।"

सुनते ही सब साध्वियां खिलखिलाकर हंस पड़ी। एक साध्वी ने गंभीरता के साथ कहा – हमारे पूछने का तात्पर्य है कि तत्त्वज्ञान जाणपणा तुमको क्या आता है? साधु जीवन स्वीकार करने से पहले साधु जीवनोचित ज्ञान आवश्यक है, वह करो। अणचीदेवी ने विनम्रता से निवेदन किया – महाराज! वह मुझे कुछ नहीं आता, आप सीखा दो, मैं सीख लूंगी। साध्वियों का मार्गदर्शन मिला। उसी समय वे साध्वी चान्दाजी के निर्देशन में साध्वी कुनणांजी के पास तत्त्वज्ञान कण्ठस्थ करने लगी। लगभग तीन महीने में उन्होंने पच्चीस बोल पंचपदवंदना, चर्चा, तेरहद्वार, बावनबोल, आदि कई थोकड़े सीख लिए।

पूज्य कालूगणी का सं. 1969 का चातुर्मास चुरु था। बहिन अणची कार्तिक महीने में आचार्यश्री के दर्शन करने गई। मातुश्री छोगांजी और अणची बाई दोनों का पीहर पास–पास में था, इसलिए माजी महाराज उनको अच्छी तरह से जानते थे। माजी महाराज ने उनकी प्रार्थना कालूगणी तक पहुंचाई। अणची बाई भी दो चार बार

आचार्यप्रवर के पास गई और दीक्षा के लिए निवेदन किया। गुरुदेव ने ध्यान नहीं दिया। वैरागिन संघीय रीति–नीति से अपरिचित थी, अतः उनको यह सारा अटपटा लगा। वे तत्काल माजी महाराज के पास गई और बोली – दीक्षा देणी है, तो हां कहद्यो, नहीं तो ना कहद्यो, बार–बार दर्शण वास्तै आऊं, अर्ज करूं, म्हारै कनै तो इत्ता रूपिया कोनी''।

माजी महाराज ने समझाते हुए कहा – तू भोली है क्या? गुरुदेव तुम्हारी परीक्षा कर रहे हैं। दयालुता का परिचय देते हुए माजी महाराज ने साधु प्रतिक्रमण सीखने और आज्ञा पत्र लिखवाने का उपाय बताया और श्रीडूंगरगढ़ जाने वाली साध्वियों से कहा, इसके सामने परिस्थिति है, यहां आ नहीं सकती। तुम वहां इनको प्रतिक्रमण सीखा देना। श्रीडूंगरगढ़ पहुंचकर जितना जल्दी हो सका, प्रतिक्रमण सीखा और अपनी चल–अचल जो भी सम्पत्ति पास में थी, जेठ के नाम कर दी और आज्ञा पत्र लिखवा लिया। समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को साक्षी बनाकर अपना काम पक्का कर लिया। बहिन अणची के मन में दीक्षा ग्रहण करने की उत्कट लालसा जाग गई, ऐसी स्थिति में वे अपने आपको रोकने में असमर्थ हो गई। जब दोनों काम सम्पन्न हो गए, अति उत्साह के साथ रतनगढ में पुनः आचार्यवर के दर्शन करने आईं और गुरुदेव के चरणों में आज्ञा पत्र रखते हुए कहा – '' गुरुदेव! मैंने प्रतिक्रमण सीख लिया है, आप मुझे दीक्षा प्रदान कराओ।''

पूज्य कालूगणी ने आज्ञा पत्र देखा और प्रतिक्रमण सीख लिया, सुनते ही पार्श्वस्थित सन्तों से पूछा – यह बहिन कौन है? हमने तो दीक्षा और प्रतिक्रमण के सन्दर्भ में कुछ नहीं कहा और यह अपनी सम्पत्ति दूसरों को देकर आ गई। मुनिश्री अभयराजजी और जुहारजी वहां खड़े थे। उन्होंने निवेदन किया – बहिन भोली नहीं है, इसका खूंटा लूंठा है। मातुश्री छोगांजी की प्रेरणा से ही इसने इतना बड़ा साहस किया है।

आचार्यप्रवर का सं. 1970 का लाडनूं चातुर्मास था। सावण का महीना था, जसोल के आशारामजी को आचार्यश्री ने दीक्षा का हुकम फरमाया। मातुश्री छोगांजी ने अवसर देखकर निवेदन किया – श्रीडूंगरगढ वाली अणची पर कृपा कराओ? आचार्यश्री कालूगणी ने मातुश्री की बात पर ध्यान देते हुए कहा – ऐसे कैसे दीक्षा का आदेश दें। वह कौन है? उसकी प्रकृति कैसी है? किस परिवार की है? मैंने तो उसे प्रतिक्रमण का आदेश ही नहीं दिया और वह सारी सम्पत्ति देकर आज्ञापत्र लिखा लाई। वह भोली तो नहीं है?

मातुश्री छोगांजी ने निवेदन किया – मेरा और उसका पीहर पास में है, मैं उस परिवार को जानती हूँ। उसकी उमर छोटी है, पर उस पर आफत बहुत मोटी है, इसलिए प्रतिक्रमण सीखने और आज्ञा पत्र लिखाने का संकेत मैंने ही किया था। इसकी सारी जिम्मेदारी मैं लेती हूँ, आप उसकी दीक्षा फरमाने की कृपा कराओ। मातुश्री की अर्जी पर कालूगणीराज ने बहिन अणची को दीक्षा का आदेश दे दिया। यह भी कहा जा सकता है कि माजी महाराज की कृपा से उन्हें दीक्षा का आदेश मिल गया।

यद्यपि बहिन अणची उस दिन लाडनूं में ही थी, पर व्याख्यान में उपस्थित नहीं थी। वे श्रीडूंगरगढ़ नहीं गईं। परिवार के लोग समय पर लाडनूं पहुंच गए। सं. 1970 सावण शुक्ला अष्टमी के दिन जसोल निवासी आशारामजी और बहिन अणची को आचार्यवर ने चतुर्विध धर्मसंघ के समक्ष भागवती दीक्षा प्रदान की। बहिन अणची साध्वी अणचांजी बन गई। दीक्षा महोत्सव ऐसे मंगल एवं शुभ मुहुर्त में आयोजित हुआ कि दीक्षित दोनों साधु साध्वी धर्मसंघ में ख्यात नाम तपस्वी बने।

नवदीक्षिता साध्वी अणचांजी का प्रथम केशलोच साध्वीप्रमुखाश्री जेठांजी ने किया। उन्होंने साध्वी जीवन की मूल नींव को मजबूत बनाया, आचार–विचार में जागरूक रहने की प्रेरणा दी। साध्वीप्रमुखा जेठाजी द्वारा प्रदत्त ओज आहार जीवन भर शक्ति प्रदान करता रहा। दीक्षा के दो माह बाद मातुश्री छोगांजी एवं साध्वीवरा कानकंवरजी का कुशल संरक्षण उन्हें उपलब्ध हुआ। अक्षर ज्ञान से लेकर जीवन निर्माण के सारे गुर साध्वी अणचांजी ने माजी महाराज एवं साध्वी प्रमुखा कानकंवरजी से प्राप्त किए। यद्यपि साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी ने उनको शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढाने का बहुत प्रयत्न किया, पर साध्वी अणचांजी की सेवा और तपस्या में रुचि थी। साध्वी अणचांजी विनम्र थी, सेवाभावी थी; जो भी कार्य सौंपा जाता निष्ठा के साथ सम्पन्न करतीं।

सेवाभावना

साध्वी अणचांजी का जन्म सेवाव्रती के रूप में हुआ, कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। उनके जीवन के दो लक्ष्य थे – सेवा और तपस्या। सेवा के लिए उन्होंने तपस्या गौण की, पर तपस्या के लिए सेवा कभी गौण नहीं की। उनकी जीवन–पोथी में सेवा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पृष्ठ रहा। एक ओर शिखरपुरुष आचार्यों की सन्निधि में साध्वीप्रमुखा जैसी महानीय व्यक्तित्व की सेवा का अवसर उन्हें मिला, तो दूसरी ओर सामान्य से सामान्य कुष्ट रोगी, क्षययोगी, जलोदर रोगी, साध्वियों की सेवा भी उन्होंने

अग्लान भाव से की। आवश्यकता होने पर रात दिन रोगी के पास बैठी रहतीं। हाथों से ग्रास देकर खिलाती। बच्चों की भांति गोदी में उठाकर एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जाती। येन केन प्रकारेण रोगी को साता पहुंचाकर ही रहती। उनके जीवन में ऐसे प्रसंग अनेक बार आए, जब असंभव अथवा असाध्य से दिखाई देने वाले कामों को उन्होंने सेवाभाव से अंजाम दे दिया।

साध्वी अणचांजी को दीक्षा लिए दो वर्ष ही हुए थे। साध्वी नजरकुमारीजी (वास) नवदीक्षित साध्वी थी। उनके पूरे शरीर में खुजली हो गई। समुचित उपचार के अभाव में रोग ने भयंकर रूप ले लिया। इसी प्रकार सं. 1986 में साध्वी धनकंवरजी (लाडनूं) का शरीर खुजली से आक्रान्त हो गया। दोनों साध्वियों की सेवा का दायित्व अणचांजी ने संभाला। साध्वी अणचांजी ने मां बनकर दोनों साध्वियों की परिचर्या की। दो–दो घंटे धूप में बैठकर उनके घी की मालिश करती। डेढ दो महीने की अथक श्रम साधना और सेवाभावना से दोनों साध्वियों का तन कंचन–सा निर्मल बन गया।

साध्वी मानाजी (चाड़वास) मनसुखांजी (मोमासर) एवं पन्नाजी (बीदासर) तीनों साध्वियों के अंगुठे में विषकण्टा (विषैला फोड़ा) हो गया। उसकी पीड़ा इतनी अधिक होती है, कि रोम रोम में कम्पन हो जाता है। उस समय ऑपरेशन की सुविधा थी नहीं। देशी दवा एवं घरेलू उपचार किया जाता था। इन तीनों साध्वियां की चिकित्सा साध्वी अणंचाजी ने की। साध्वी मनसुखांजी का फोड़ा एक महीने बाद ठीक हुआ। साध्वी पन्नाजी को चार महीने लगे। रात दिन परिचर्या में बड़े उत्साह और लगन का परिचय दिया साध्वी अणचांजी ने। वे कभी थकी नहीं।

पैर काटना होगा

सं. 1991 की बात है, साध्वी विजयश्री (रतनगढ़) के पैरों में दाद हो गए और उनमें मवाद भर गया। दाद ने इतना भयंकर रूप लिया कि डाक्टर को दिखाया तो उन्होंने कहा – लगता है, पैर काटना पड़ेगा अन्यथा यह मवाद पूरे शरीर में फैल जाएगी। उस समय आचार्यश्री का प्रवास मारवाड़ के रामसिंहजी के गुडे में था। चलना तो बहुत दूर की बात थी, यदि पैरों को थोड़ा–सा हिलाना पड़ता तो असह्य वेदना होती। ऐसी स्थिति में साध्वी अणचांजी ने अपने अनुभव का उपयोग किया। वे नीम के सूखे पत्ते पानी में डालकर एक–एक घाव की सफाई करती और देशी दवा लगाती। एक दिन वे घाव साफ कर रही थी कि वहां के ठाकुर दर्शन करने आ गए। उन्होंने कहा – महाराज! यदि आप उचित समझे तो एक प्रयोग करें – घाव को इसी प्रकार जैसा आप कर रही हैं साफ कर दें और उसके ऊपर पीसी हुई हल्दी लगा

दें। तीन चार दिन के बाद पुनः सफाई कर हल्दी लगाएं। इस क्रम से इनको जल्दी लाभ मिलेगा। ठाकुर साहब की बात साध्वी अणचांजी की समझ में आ गई। ठीक इसी क्रम से उपचार प्रारंभ किया। दो महीने तक निरन्तर उपचार चलता रहा और साध्वी विजयश्रीजी का पांव ठीक हो गया। वे पांव पांव चलकर गुरु सन्निधि में पहुंच गई। आचार्यवर ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा "अणचांजी का हाथ लाग्या पछै ए रोगी नै ठीक कर ही देवै"

साध्वी अणचांजी ने सं. 1970 में दीक्षा ली और 1997 तक 27 चातुर्मास लगातार आचार्यों के पावन सान्निध्य में किए। आचार्य तुलसी का उस वर्ष का चौमासा लाडनूं में था। सुजानगढ़ में साध्वी सन्तोकांजी कुष्ट रोग से ग्रसित थी। उनकी सेवा के लिए पहला चातुर्मास आचार्यप्रवर से अलग किया। इसी तरह साध्वी संतोकाजी चूरु की जलोदर रोग में जिस तरह से साध्वी अणचांजी ने सेवा की, वह अद्वितीय है। कई साध्वियों को टाइफाइड में सन्निपात आ जाने पर लम्बे समय तक उनकी परिचर्या की। एक नहीं अनेक साध्वियों को स्वस्थ बनाकर साता उपजाई तथा सेवा कर बहुत कर्म निर्जरा की।

साध्वी को ब्यावर से लाडनूं तक कंधों पर लेकर चली

साध्वी सूरजकुमारीजी (राजगढ़) अल्पायु में क्षय रोग से आक्रान्त हो गई। वह चलने में असमर्थ हो गई। वे चलते चलते जेठाणा गांव में रुक गई। यह प्रसंग सं. 1993 ब्यावर मर्यादा महोत्सव से पहले का है। साध्वी अणचांजी उनको जेठाणा से ब्यावर कन्धों पर बैठाकर लाई। मर्यादा महोत्सव के अवसर पर आचार्यश्री ने साध्वी सूरजकुमारीजी से कहा – तुम्हारी सेवा में तुम्हारी तीन बहिनों को रख देता हूँ, तुम कहीं एक जगह रह जाओ। साध्वी सूरजकुमारीजी ने हठ पकड़ लिया मैं तो साध्वी अणचांजी के पास में ही रहूँगी। साध्वी अणचांजी गुरुकुलवास में ही रहना चाहती थीं। उनकी गुरुकुल में उपयोगिता भी थी। छोटी अवस्था, क्षय रोग और मानसिक समाधि को ध्यान में रखते हुए आचार्यश्री ने उनको साध्वी अणचांजी के पास में रखना उचित समझा। साध्वी अणचांजी ने अपनी गुरु–सेवा भी नहीं छोड़ी और रुग्ण साध्वी को भी समाधि पहुंचाई। उन्हें कन्धों पर उठाकर चल पड़ी। ब्यावर से लाडनूं तक कन्धों पर उठाकर ले गई। इस प्रकार की कठिन से कठिनतर सेवा उन्होंने एक दो साध्वियों की नहीं, पूरी 29 साध्वियों की सेवा कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया।

संघ सेवा के विविध आयाम

साध्वी अणचांजी ने 61 वर्ष संयम साधना की, उसमें 54 वर्षों तक

उन्हें गुरु–सान्निध्य में रहने का सौभाग्य मिला। अष्टमाचार्यश्री कालूगणी की सेवा में 23 चातुर्मास और आचार्यश्री तुलसी की सन्निधि में 24 चातुर्मास किए। एक चातुर्मास उन्होंने मातुश्री वदनाजी के पास किया। आचार्यों के सान्निध्य में जब तक वे रही, विहार में जब भी अपेक्षा होती, साध्वियों की संख्या कम करनी होती अथवा वजन कम करना होता, साध्वी अणचांजी अक्षम, अस्वस्थ और नवदीक्षित साध्वियों के साथ अलग विहार करती। वे साध्वियों की सार संभाल ठीक कर लेती, पुस्तकों आदि की सुरक्षा भी सजगता से रखती। कभी एक महीने के लिए और कभी दो महीनों के लिए उनको पांच दस पन्द्रह और अधिक से अधिक पैंतीस साध्वियों के साथ रहने का काम पड़ा। इसे वे गुरु की कृपा और संघ सेवा का अवसर मानती और प्रसन्नता का अनुभव करती। जब भी संघीय सेवा के सन्दर्भ में अपेक्षा होती, साध्वी अणचांजी पहली पंक्ति में खड़ी दिखाई देती।

सं. 1974 का प्रसंग है। राजस्थान में प्लेग का प्रकोप था। ईड़वा, छोटी खाटू, ...आदि क्षेत्र प्लेग से बुरी तरह आक्रान्त हो गए। इन दोनों गांवों में साध्वियों के चातुर्मास थे। अधिकांश श्रावक गांव छोड़कर अन्यत्र चले गए। इस कठिन घड़ी में खाटू निवासी जुगराजजी मूथा की पुत्री धापूबाई अविचल निर्भय बन साध्वियों की सेवा में रही। संयोग की बात थी कि ईड़वा और खाटू दोनों जगह तीन–तीन साध्वियां प्लेग की चपेट में आकर दिवंगत हो गई। आचार्यश्री कालूगणी उस समय सरदारशहर विराज रहे थे। चातुर्मास सम्पन्न होते ही आचार्यवर रतनगढ पधारे। ईड़वा खाटू में दिवंगत साध्वियों के उपकरणों का वजन लाने के लिए आचार्यवर ने साध्वी भत्तूजी बीदासर एवं सुवटांजी राजलदेसर को भेजने का चिन्तन किया। साध्वी अणचांजी को दीक्षित हुए चार वर्ष हुए थे, उक्त प्रसंग में उनके नाम की चर्चा तक नहीं चली पर वे हिम्मत के साथ गुरुदेव के पास पहुंची और निवेदन किया – यह सेवा का अवसर मुझे दें। तीनों साध्वियां गईं और जब वापिस दर्शन किए तब अकेली साध्वी अणचांजी के पास लगभग 25 से 30 सेर वजन था। यह एक ऐसा प्रसंग था, जिसके बाद शासन सेवा के दायित्वपूर्ण कामों में साध्वी अणचांजी का नाम प्रमुख रूप से पहले नम्बर पर आने लगा।

उनको आचार्यों की सेवा, साध्वीप्रमुखा की सेवा का अनुपम अवसर भी बहुत मिला। वे गुरु सन्निधि में जितने वर्ष रही – गोचरी, सिलाई, रंगाई तथा औषधि आदि का काम बड़े उत्साह से एवं समर्पित भाव से करती। प्रातः एवं सायं, दोनों समय आचार्यवर की प्रतिलेखना का सौभाग्य उन्हें लगभग 44 वर्ष तक मिला।

साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी की सेवा में अपने आपको नियोजित कर वे धन्य बन गई। साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी के शरीर में गर्मी का अत्यधिक प्रकोप रहता था, इसलिए घृत की मालिश करानी पड़ती थी। साध्वी अणचांजी प्रतिदिन दो घंटे पूरे शरीर पर मालिश करती और यहां तक कि वे मासखमण की तपस्या में भी इस क्रम को नहीं छोड़ती। विहार के समय वे नौ सेर पानी की मटकी सिर पर लेकर चलती। साध्वीप्रमुखा के उपकरणों की सिलाई बहुत निपुणता के साथ सम्पादित करती। रात्रि के समय घंटों तक वैयावृत्य करती।

अणचांजी धर्मशाला है

आचार्यश्री तुलसी ने मर्यादा महोत्सव शताब्दी समारोह के अवसर पर बालोतरा में माघ सुदि 15 को साध्वी अणचांजी को अग्रगण्य की वन्दना कराई। उस समय साधु साध्वियों की परिषद में आपने कहा – "साध्वी अणचांजी धर्मशाला है। जैसे धर्मशाला में अपेक्षा होती है, लोग ठहर जाते हैं, और रवाना हो जाते हैं। वैसे ही हमें जब जिस साध्वी को भेजना होता है, अणचांजी के पास भेज देते हैं, लेना होता है तब वापिस ले लेते हैं। विशेषता यह है कि जिस साध्वी को दूसरे ले जाते कठिनाई महसूस करते हैं, ये मना नहीं करती और न कभी मांग करती है। सबके साथ प्रकृति मिलानी जानती है।" आचार्यवर ने केवल फरमाया नहीं, प्रयोग भी किया – सोलह वर्ष की अवधि में 63 साध्वियों को साध्वी अणचांजी के पास भेजा।

यद्यपि साध्वी अणचांजी का साझ सं. 1995 में ही बना दिया था। एक दिन मातुश्री छोगांजी ने निवेदन किया – गुरुदेव! अणचांजी का साझ बनाओ। उसी वर्ष का एक प्रसंग है – साध्वी अणचांजी ने पन्द्रह साध्वियों के साथ सुजानगढ़ से छापर की ओर विहार किया। भयंकर गर्मी की मौसम थी। धरती तवे की भांति तप रही थी। उस दिन ऐसा लग रहा था, सूरज आग उगल रहा है। साध्वियां पानी लेकर चली थी, संयोग की बात सिर पर रखा पानी का तूम्बा गिर गया और पानी बिखर गया। प्यास के मारे सबका हाल बेहाल हो गया। साध्वी अणचांजी और चान्दांजी दोनों तेज चलकर छापर पहुंची। आहार पानी की गवेषणा कर गोचरी लाई, तब तक दस साध्वियां तो पहुंच गई और तीन साध्वियां देवाणी गांव में वृक्ष के नीचे बैठ गई। वे अत्यधिक थकान से चलने में असमर्थ हो गई। यह संवाद सुनते ही साध्वी अणचांजी हाथ में गोचरी की झोली और सिर पर पानी का तूम्बा लेकर पुनः देवाणी गई और साध्वियों को आहार पानी कराया। छापर से देवाणी लगभग छह–सात किलोमीटर दूर है। उस दिन साध्वी अणचांजी के बेले की तपस्या थी।

पुस्तकों का संरक्षण

भारतीय ऋषि परम्परा में ज्ञान–सम्पदा की सुरक्षा के दो प्रमुख साधन रहे हैं। प्रथम कण्ठस्थ ज्ञान राशि को विरासत के रूप में अगली पीढी को सौंपने की विधि तथा दूसरी हस्तलिखित पाण्डुलिपि में संरक्षित करने की विधि। तेरापंथ धर्मसंघ में दोनों विधियां अतीत में प्रचलित रही है और आज भी संघ में दोनों का महत्त्व है। सं. 2000 से पहले हस्तलिखित प्रतियों का अत्यधिक महत्त्व था क्योंकि उस समय तक पुस्तक प्रकाशन की परम्परा बहुत कम प्रचलित थी। सं. 1991 में आचार्यश्री कालूगणी का जोधपुर चातुर्मास था। आचार्यवर मारवाड़ में विहरण कर रहे थे। आचार्यश्री ने 18 साध्वियों को साध्वी अणंचाजी के साथ अलग से जोधपुर की ओर भेजा। उनको हस्तलिखित 35 पुस्तकों के सार संभाल का दायित्व भी सौंपा। उनके साथ लगभग नवदीक्षित तथा वृद्ध साध्वियां थी। साध्वी अणचांजी इस कार्य में निपुण एवं दक्ष थी। यात्रा के मध्य एक दिन मध्याह्न में उन्होंने दस माइल चलने का लक्ष्य बनाकर विहार कर दिया। विहार के समय आकाश साफ था। दो माइल का रास्ता तय करते करते आकाश काली घटाओं से भर गया और कुछ ही क्षणों में भारी वर्षा होने लगी। चारों ओर समतल भूमि थी, दूर दराज तक सघन वृक्ष या झोंपडी तक दिखाई नहीं दे रही थी। ऐसी स्थिति में हस्तलिखित पुस्तकों की सुरक्षा कैसे की जाए? प्रश्न सामने था। उस समय प्लास्टिक या प्लास्टिक बैग जैसा उपकरण था ही नहीं। साध्वी अणचांजी सभी साध्वियों के साथ एक स्थान पर बैठ गई। साध्वियों से कहा – अपने सारे काष्ट पात्र धरती पर रख दो। उनपर करीने से एक–एक हस्तलिखित पुस्तकें रख दी और पुस्तकों के ऊपर साध्वियों का जितना वजन था, वह रखवा दिया। रजोहरण की डंडियों के सहारे कपड़ों को तिरछा तान दिया, जिससे पानी की धारा बीच में न पड़कर टेढ़ी होकर पड़ने लगीं। ज्योंही एक पछेवड़ी पानी से गीली होती, उसे उतार लेतीं और दूसरी तान देती। इस प्रकार अठारह (18) पछेवड़ी काम में ले ली। दो घंटे तक कच्चे पानी में कपड़े तथा सभी साध्वियां भीगती रही, पर पुस्तकों की पूर्णतया सुरक्षा कर ली। जब आचार्यवर जोधपुर पधारे, साध्वी अणचांजी ने सारा घटनाक्रम सुनाया और सभी पुस्तकें आचार्यवर के चरणों में रख दी। आचार्यवर सहित कुछ सन्तों ने पुस्तकों का प्रतिलेखन किया। 35 पुस्तकों में एक पत्र पर कुछ बूंदें किनारे पर लगी थी पर लिखे हुए अक्षर सारे सुरक्षित थे। आचार्यश्री ने साध्वी अणचांजी के उपाय–कौशल की तारीफ करते हुए कहा – पुस्तकों की सुरक्षा का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

महत्व बुद्धि का है, शक्ति का नहीं

सं. 1992 का प्रसंग है। साध्वी अणचांजी पैंतीस साध्वियों के साथ रावलिया पहुंची। स्थान खुला था, कल्प न होने की दृष्टि से साध्वी अणचांजी रात्रि के समय बैठी–बैठी पहरेदारी कर रही थी। लगभग सभी साध्वियों को नींद आ चुकी थी। तभी उन्होंने देखा – एक चोर अन्दर घुस रहा है। उस मुहल्ले के कुत्ते भी भौंककर सूचना दे रहे थे। साध्वी अणचांजी निर्भीक मनोवृत्ति की थी। आसपास कोई भाई–बहिन थे नहीं, इसलिए उन्होंने अपनी बुद्धि का उपयोग किया और जोर से बोली – सज्जन – सिंहजी केसरसिंहजी! जागो, देखो, आपसे कोई मेहमान मिलने आया है। ठाकुरों के नाम सुनते ही चोर भाग गया। वहां सजनांजी और केसरजी नाम की दो साध्वियां सो रही थी, वे दोनों अपना नाम सुनते ही उठ गई। चारों ओर हलचल होने से भय का नाम निशान नहीं रहा। इस घटना को जिस किसी ने सुना एक बात कही – शक्ति बड़ी नहीं, मनुष्य की बुद्धि बड़ी होती है।

साध्वी अणचांजी की शरीर संरचना भी मजबूत थी। लम्बे विहार और पर्याप्त वजन उठाकर उन्होंने समय–समय पर शारीरिक सक्षमता का परिचय दिया। सं. 2003 में सरदारशहर के वरिष्ट श्रावक वृद्धिचंदजी गोठी ने अनशन किया। आचार्यवर ने साध्वी अणचांजी को निर्देश दिया कि साध्वी धनकुमारीजी (सरदारशहर) को साथ लेकर सरदारशहर जाएं और गोठीजी को सेवा कराएं। उल्लेखनीय है कि साध्वी धनकुमारीजी उनकी संसारपक्षीया दोहित्री थी। साध्वी अणचांजी ने उस समय रेतीले टीलों में 22 माइल तक का विहार किया।

सरदारशहर से पुनः विहार किया तब अकेली साध्वी अणचांजी ने 13 थान कपड़े का वजन उठाया और आचार्यश्री के दर्शन किए तब वे थान भेंट किए, पर रास्ते में किसी को भी वजन हल्का करने की दृष्टि से नहीं दिया। इसी प्रकार आचार्यश्री तुलसी का सं. 1995 का चातुर्मास सरदारशहर था। चौमासा सम्पन्न होने पर आचार्यवर का विहार चूरु की ओर होना था। साधु–साध्वियों की संख्या अधिक थी, छोटे गांवों में स्थान कम उपलब्ध होता था और मौसम सर्दी का था। इसलिए साध्वी अणचांजी कुछ साध्वियों को लेकर आगे–आगे विहार कर आचार्यवर से दो दिन पहले चूरु पहुंच गई। दूसरे दिन पुनः विहारकर 5 साध्वियों के साथ दर्शन करने गईं। उस दिन 6 साध्वियों ने 50 थान कपड़े का वजन लेकर लगभग सभी साधु साध्वियों का वजन हल्का कर दिया। यह थी साध्वी अणचांजी की उत्कृष्ट निर्जरा की भावना और सेवा भावना। सबको साता पहुंचाना उन्हें बहुत बहुत अभीष्ट था।

इसी प्रकार सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी दिल्ली चातुर्मास कर पधार रहे थे। उनके पास कपड़े आदि का वजन अधिक था। इसलिए आचार्यवर ने वजन लाने के लिए साध्वी अणचांजी आदि साध्वियों को सामने भेजा। साध्वीजी एक दिन में छब्बीस माइल चली और वजन लेकर लौट आई। उस समय उनकी अवस्था 56 वर्ष की थी।

पांच साध्वीप्रमुखा का सान्निध्य

साध्वी अणचांजी ने दीक्षा ग्रहण की, तब साध्वीप्रमुखा जेठांजी थी। उनका केशलोच साध्वीप्रमुखा जेठांजी ने किया। उसके बाद साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी, साध्वीप्रमुखा झमकूजी, साध्वीप्रमुखा लाडांजी एवं साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी की उपासना का उन्हें अवसर मिलता रहा। सौभाग्य की बात यह है कि उन्होंने सभी साध्वीप्रमुखा की कृपा प्राप्त की और इंगित की आराधना की। साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी की सेवा का साध्वी अणचांजी को अनुपम मौका मिला। साध्वीप्रमुखा लाडांजी के पावन सान्निध्य में उन्हें लम्बी यात्राएं करने का अवसर मिला। साध्वीप्रमुखाजी की महती कृपा से 61 वर्ष की अवस्था में मुम्बई की और, 66 वर्ष की अवस्था में सुदूर कलकत्ता की यात्रा का लाभ लिया और खूब काम कर निर्जरा की।

कलकत्ता यात्रा के मध्य एक बार साध्वी अणचांजी के घुटनों में दर्द बढ़ गया। साध्वीप्रमुखा लाडांजी ने देखा – दर्द के कारण चलना कठिन हो रहा है, तब आपने एक दिन आचार्यवर से निवेदन किया – साध्वीश्री अणचांजी के घुटनों में बहुत दर्द है, पीछे वे रहना नहीं चाहतीं और आचार्यप्रवर के विहार लम्बे हो रहे हैं, क्या करें? तभी साध्वी अणचांजी ने निवेदन किया – गुरुदेव! आप थोड़े और लम्बे विहार कराने की कृपा करें, जिससे घुटने अपने आप ठीक हो जाएंगे। आश्चर्य की बात आचार्यप्रवर पूर्ववत विहार कराते रहे और साध्वी अणचांजी उसी उत्साह के साथ चलती–चलती ठीक हो गई।

कलकत्ता यात्रा के दौरान आचार्यवर राजगृही के वैभारगिरि पर पधारे। साध्वी अणचांजी को आचार्यश्री ने कहा – अणचांजी! यह ऐतिहासिक स्थल है, यहां धनजी शालिभद्रजी आदि कितनी पुण्यआत्माओं ने अनशन किया है, तुम भी यहीं संथारा कर लो। यहां की प्रकृति भी कितनी रमणीय है। साध्वीप्रमुखा लाडांजी ने भी उनको उत्साहित किया। साध्वी अणचांजी ने कहा – संथारा करना स्वीकार है, पर सेवा आपको करानी पड़ेगी! आप यहीं विराजें और मेरा कल्याण कराएं।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी की सन्निधि में रहने का उन्हें समय कम मिला, पर साध्वीप्रमुखाजी की विनम्रता, कर्मठता, श्रमशीलता से वे अत्यधिक प्रभावित थी। समय–समय पत्र सन्देश के माध्यम से साध्वीप्रमुखाजी द्वारा सम्मान व कृपा उन्हें मिलती रही।

नव दीक्षित साध्वियों का केशलुंचन किया

सं. 2018 में आचार्यवर मर्यादामहोत्सव गंगाशहर में कर उदयपुर की ओर पधारते समय नोखा पधारे। वहां दो बहिनों की दीक्षा हुई। साध्वीप्रमुखा लाडांजी स्वास्थ्य–लाभ हेतु गंगाशहर में रह गए। तब आचार्यवर ने साध्वी ऋजुमतीजी एवं संयमश्रीजी के प्रथम केशलोच के लिए साध्वी अणचांजी को निर्देश दिया। यद्यपि उस समय उनसे बड़ी साध्वी वहां उपस्थित थी।

न कभी समर्पण किया न तेरह बोल लिखे

साध्वी अणचांजी ने जब से दीक्षा ली और जबतक शारीरिक शक्ति से सम्पन्न रही, प्रायः गुरुकुलवास का उन्हें अवसर मिला। जब–जब आचार्यवर ने उनको आवश्यकता वश अलग विहरण कराया, पुनः जब भी राज में आए, वहीं रहते। इसलिए वे अग्रगामी पर लगने वाले हर नियम के अपवाद बनकर रहे।

1. तेरापंथ धर्मसंघ में यह परम्परा है अग्रगमी बनने वाला साधु/साध्वी बहिर्विहार से आकर जब गुरुदर्शन करते हैं, तब एक निर्धारित समर्पण शब्दावलि का उच्चारण करते हैं और उसके माध्यम से अपने आपको, सहगामी – साधु–साध्वियों को तथा पुस्तकों को श्रीचरणों में समर्पित करते हैं।

2. बहिर्विहार में किए कार्यों का सम्पूर्ण विवरण, जिसे संघीय भाषा में तेरह बोल कहते हैं, गुरुचरणों में लिखकर निवेदन करते हैं।

3. बहिर्विहारी साधु निर्धारित संख्या में लिखित गाथाओं को गुरुचरणों में भेंट करता है तथा साध्वियां साधुजीवन के लिए अनिवार्य एक रजोहरण और प्रमार्जनी गुरुचरणों में अनिवार्य रूप में उपहृत करते है। एक प्रकार से यह अग्रगामी पर अनिवार्य टेक्स है। (वर्तमान में प्रकाशित पुस्तकों की सुविधा होने से गाथा प्रणाली बन्द है।)

4. मर्यादा महोत्सव पर आचार्यवर अपने साधु साध्वियों का योगक्षेम करने के लिए उनसे बातचीत करते हैं। वर्षभर में साधना में विकास–ह्रास कितना हुआ?

संघीय मर्यादा अनुशासन की पालना में कमी तो नहीं रही। इसे हमारी भाषा में पुच्छा कहते हैं।

साध्वी अणचांजी बहिर्विहार की इन चारों मर्यादाओं के पालन में सदा अपवाद बनी रही। क्योंकि जिस समय आचार्यवर ने उनको अग्रगामी रूप में भेजने का निर्णय लिया, उस समय उन्होंने निवेदन किया – "गुरुदेव! मैं बहिर्विहार में जाकर क्या करूंगी। मुझे न तो व्याख्यान देना आता है और न प्रचार प्रसार करना। मैं तो यहां तक नहीं जानती कि बहिर्विहार की रीति नीति मर्यादा क्या होती है।" आचार्यवर ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा – "व्याख्यान तो साथ वाली साध्वियां दे देगी, तुम तो केवल नवकार कर देना। दूसरी बात, न्यारा के नियम कानून तुम पर लागू नहीं होंगे।" बस साध्वी अणचांजी ने आचार्यवर के मुखारविन्द से निकले सहज वचनों के आधार पर कभी यह नहीं माना – मैं आगीवान हूँ और कभी यह नहीं माना कि मैं बहिर्विहारी हूँ।

आचार्यप्रवर चार वर्षीय दक्षिण यात्रा कर पुनः राजस्थान पधारे, उस समय साध्वी अणचांजी ने चार वर्ष मेवाड़ में प्रवास कर जब आचार्यश्री के दर्शन किए, तब वहां उपस्थित संतों ने विनोद में कहा – अणचांजी! समर्पण करो। साध्वीजी ने आचार्यवर के सामने ही कहा – "मैं के मांग्या, न सत्यां मांगी और न पुस्तक पानां मांग्या। जको लेवै बो देवै। मैं जकी टेम दीक्षा ली गुरु–चरणां में तन मन समर्पण कर दियो, अब के करूं? ये शब्द सुनते ही आचार्यवर ने वात्सल्य बरसाते हुए कहा – संतां! अणचांजी स्यूं क्यूं रकझक करो, आंनै उत्तर देणो आवै, अै तो समर्पण कोनी करै। सचमुच जीवनभर उन्होंने न समर्पण किया, न तेरह बोल लिखे न रजोहरण बनाया और न उनकी आचार्यवर ने पुच्छा की। वे हमेशा राज के अपनत्व भरे भावों से बन्धी रही और जब भी राज में आती उनकी ऊठ बैठ रहना, सोना वहीं होता।

परोटने की कला

साध्वी अणचांजी गुरु इंगित की आराधना करने के लिए कठिन से कठिन कार्य करने में उत्साहित रहती और गुरु–कृपा से उन्हें सफलता भी मिलती। सं. 1996 की घटना है। साध्वी प्यारांजी (पहुना) साध्वी सजनांजी के साथ कालू से आ रही थी। श्रीडूंगरगढ़ में आकर रुक गई। आचार्यश्री की दृष्टि उनको वहां से विहार कराने की थी, पर उनका वहां से विहार कराना बड़ा मुश्किल काम था। उनकी प्रकृति कठोर और आग्रही थी। उस वर्ष उन्होंने यह धार लिया था कि मैं तो कहीं नहीं जाऊंगी। मेरी आंखे ठीक नही है। मुनिश्री अमोलकचन्दजी स्वामी श्रीडूंगरगढ़ पधारे,

उनके साथ साध्वी प्यारांजी के संसारपक्षीय पुत्र मुनि मांगीलालजी थे, उनको भी वहां से विहार नहीं करने दिया। आचार्यवर ने साध्वियों से कहा – साध्वी प्यारांजी को श्रीडूंगरगढ़ से लाडनूं पहुंचाने की हिम्मत कौन करेगा? प्रायः सभी साध्वियां मौन हो गई। साध्वी अणचांजी एवं साध्वी पारवतांजी (लाडनूं) दोनों ने निवेदन किया – कृपाकर हमको भिजवाओ। प्रातः बीदासर से विहार किया। रेतीले टिब्बो के रास्ते 30 माइल चलकर शाम को श्रीडूंगरगढ़ पहुंच गई। साध्वी प्यारांजी को वन्दना की तब पूछा – कुण है?

साध्वी अणचांजी ने विनम्रता से कहा – आचार्यश्री ने कृपाकर हम दो साध्वियों को आपकी सेवा में भेजा है। सुनते ही प्रसन्न हो गई। वहां की साध्वियों से जानकारी की तथा कहा – आप लोग विहार की तैयारी रखें। इनका जब मन होगा, तभी विहार करेंगे। वहां के वरिष्ट एवं प्रतिष्ठित श्रावक बींजराजजी से बात की और चिन्तन किया – साध्वी प्यारांजी को विहार कैसे कराएं? साध्वी अणचांजी ने कहा – जितना जल्दी विहार करें उतना ही अच्छा रहेगा।

बींजराजजी ने उसी समय साध्वी प्यारांजी के दर्शन कर निवेदन किया – आचार्यश्री ने कृपाकर आपकी सेवा में दो जहाज भेजे हैं। महाराज! मैं आज मुहूर्त देख रहा था, आपके नाम से आज दोपहर तीन बजे बहुत अच्छा मुहूर्त्त है। ऐसा अच्छा मुहूर्त आगे चार महीने तक तो नहीं आएगा। आपको विहार करना हो तो आज ही कर दीजिए। तत्काल विहार की मानसिकता बन गई। ठीक तीन बजे विहार कर दिया। रास्ते में झोंपड़ी दिखाई दी और साध्वी प्यारांजी ने पैर रोक लिए। साध्वी अणचांजी ने बुद्धिकौशल का परिचय देते हुए कहा – यहां तो संत ठहरेंगे, आगे जगह मिलते ही देखेंगे। जब भी कोई गांव, ढाणी, झोंपड़ी दिखाई देती साध्वी अणचांजी कपड़ा हाथ में लेकर कहती – आंख कमजोर है, धूप से बचाओ..... ज्योंहीं गांव निकल जाता, पसीना पौंछकर हटा देती। इस प्रकार सात आठ माइल का विहार करा देती। जब वे आचार्यश्री के चरणों में पहुंची, सभी को आश्चर्य हुआ। आचार्यप्रवर ने पहला शब्द यही कहा – अणचांजी! थानै सौ–सौ साधुवाद।

इस प्रकार सं. 2021 में टापरा में स्थिरवासी साध्वी प्रतापांजी को टापरा से बालोतरा लेकर आई। इन कठिन से कठिन सेवाओं को ध्यान में रखकर आचार्यप्रवर ने संस्कार बोध में लिखा –

अणचांसती उदार, गण में दीर्घतपस्विनी।
श्रम सेवा सुखकार, कठिन काम करती सदा।।

बाल साध्वी को गोदी में उठाकर विहार किया

सं. 1982 में पचपदरा की जमनांजी और बेटी पानकंवरजी ने दीक्षा ली। साध्वी पानकंवरजी उस समय दस वर्ष की थी। विहार करते–करते बैठ जाती और कहती – 'म्हारै स्यूं चालणी न आवै'। साध्वियां वात्सल्य के साथ मनुहार कर चलाने का प्रयत्न करती, पर ठंड के कारण वे चल नहीं पाती। साध्वी अणचांजी ने देखा बाल साध्वी चल नहीं पा रही है, गोदी में उसे उठाया और दो तीन माइल ले गयी। जब उनसे पूछा – अब चलोगी? उन्होंने हां कही, तब जाकर उतारा। इस प्रकार शैक्ष साध्वियां थक जाती तो उनका वजन ले जाती। किसी के मालिश करती तो किसी को जुकाम होने पर घासा उकाली देकर स्वस्थ बनाती। कुल मिलाकर शैक्ष साध्वियों की सेवा कर वे आत्मिक प्रसन्नता का अनुभव करती।

तपस्या का प्रभाव

साध्वी अणचांजी की दीर्घ और तेजस्वी तपः साधना का अपना प्रभाव था और तपस्या के प्रति लोगों में अच्छी आस्था थी। अनेक–अनेक श्रद्धालु भक्तों ने तप प्रभाव से अथवा यह कहे अटूट आस्था से चमत्कार का अनुभव किया और अभीप्सित लाभ भी उठाया।

साध्वी अणचांजी श्रमशील सेवाभावी होने के साथ–साथ घोर तपस्विनी थीं। तपस्या के साथ अभिग्रह (विशेष संकल्प) प्रायः–प्रायः करतीं। लगता है उनकी नियति तपः साधना की लिपि से ही लिखी गई थी। गृहस्थ जीवन में ही उन्होंने तपस्या प्रारंभ कर दी, पर वहां उपवास से लेकर ग्यारह दिन तक की तपस्या ही की। उस तपस्या के कुल 190 दिन हुए। साधुत्व स्वीकार करने के बाद जल के आधार पर और कभी–कभी बिना जल अर्थात चौविहार तप भी किया। वह तपस्या 7825 दिन की हुई। आछ के आगार से 744 दिन का तप किया और लघुसिंह निष्क्रीडित तप की चौथी परिपाटी में 154 दिन की तपस्या और पारणे के दिन आयंबिल तप किया। आयंबिल कुल 33 हुए। विस्तार से जानना चाहे तो संयमी जीवन स्वीकार करने के बाद तपस्या–क्रम इस प्रकार रहा –

उपवास	–	4684	सतरह	–	1
बेला	–	741	अठारह	–	1
तेला	–	194	उन्नीस	–	1
चोला	–	55	बीस	–	1

पंचोला	–	25	इक्कीस	–	1
छह	–	8	बाइस	–	1
सात	–	6	तेइस	–	1
आठ	–	6	चौबीस	–	1
नौ	–	5	छब्बीस	–	1
दस	–	2	सत्ताइस	–	1
ग्यारह	–	2	अठाइस	–	2
बारह	–	2	उनतीस	–	1
तेरह	–	1	तीस	–	1
चवदह	–	2	इकतीस	–	1
पन्द्रह	–	1	बत्तीस	–	1
सोलह	–	2			

आछ के आगार से की गई तपस्या –

चोला	–	1	इकावन	–	1
बारह	–	1	चौंसठ	–	1
पन्द्रह	–	1	बंयासी	–	1
इक्कीस	–	1	एक सौ सेंतीस	–	1
अठाइस	–	1	एक सौ तंयासी	–	1
उनतीस	–	1			

इनके अतिरिक्त उन्होंने अपने जीवन में दस प्रत्याख्यान – 54 बार किए। 19 चातुर्मास में एकांतर उपवास किए। 32 चातुर्मास में श्रावण भाद्रव दो महीने एकांतर किए। 1 वर्ष दो महीनें बेले बेले तपस्या की।

सं. 1977 में उनका चातुर्मास भिवानी में था। उस समय उनकी अवस्था मात्र 27 वर्ष की थी। उस समय उन्होंने दो संकल्प याज्जीवन के लिए ग्रहण किए।

1. चाय बर्फ, खादिम–सूखा मेवा, स्वादिम – इलायची लवंग आदि मुखवास का सेवन न करना।

2. किसी भी स्थिति में जीवन भर ऐलोपैथिक दवा इंजेक्शन न लेना।

सं. 2007 में आचार्यप्रवर की सन्निधि में वे हांसी चातुर्मास कर रही थी, उस

समय कुछ विशेष संकल्प किए, जो इस प्रकार हैं –

1. खाद्य–पदार्थ के विषय में अच्छा–बुरा कुछ नहीं कहना।

2. तपस्या करते समय आछ (छाछ को उबालने के बाद ऊपर आया पानी) कैसा भी आए खट्टा, तीखा कडुवा, उस समय मुंह से शब्द भी न कहना।

3. गोचरी में सहज आए द्रव्यों का उपयोग करना, उसके अतिरिक्त पुनः गोचरी जाकर लाए पदार्थ खाने का त्याग तथा कोई भी चीज मंगाकर खाने का त्याग किया।

4. स्वयं की सिलाई रंगाई धुलाई कोई कैसी भी करे, कोई टीका टिप्पणी न करना।

लघुसिंहनिष्क्रीडित तप

सं. 1993 आचार्य तुलसी का पहला ब्यावर मर्यादा महोत्सव। आचार्यश्री तुलसी पदाभिषेक के उपलक्ष्य में हस्तलिखित तथा कलात्मक चित्रमय पत्र साधु साध्वियों को पुरस्कार स्वरूप प्रदान कर रहे थे। उस समय महासती झमकूजी ने आचार्यवर से निवेदन किया – गुरुदेव! तपस्विनी साध्वीश्री अणचांजी को भी कुछ प्रदान करें। आचार्यवर ने मुस्कुराते हुए कहा – अणचांजी! पत्र पढ़ना जानती है क्या? तभी आचार्यश्री के हाथ में एक कलात्मक हार का चित्र हाथ में आया। वह चित्र लघुसिंहनिष्क्रीडित तप का था। वह पत्र गुरुदेव ने साध्वी अणचांजी को देते हुए कहा – लो अणचांजी! हार पहन लो।

आचार्यवर के प्रेरक शब्द शक्ति से उनके विचारों को बल मिला और भीतर ही भीतर एक संकल्प का निर्माण हो गया। तीन वर्ष तक विचारों की आंच में पका संकल्प उस समय शब्दों का परिधान पहनकर सामने आया, जब सं. 1996 में मुनिश्री अमृतलालजी आदि कई तपस्वियों ने लघुसिंहनिष्क्रीडित तप की प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ परिपाटी प्रारंभ की। उस समय साध्वी अणचांजी ने आचार्यश्री तुलसी से प्रार्थना की – भंते! मैं इस तप की चौथी परिपाटी करना चाहती हूँ। आचार्यवर ने समझाते हुए कहा – अणचांजी! अभी पहली या दूसरी परिपाटी कर लो, चौथी परिपाटी का तप बहुत कठिन है। साध्वी अणचांजी ने निवेदन किया – गुरुदेव! आप द्वारा प्रदत्त हार ही पहनूंगी तो छोटा क्यों? सबसे बड़ा हार पहनूंगी। चौथी परिपाटी करूँगी और आपकी शक्ति से करूँगी। उस समय आचार्यवर के पास में मंत्री मुनि

मगनलालजी बैठे थे, उन्होंने कहा – इतनी क्या जल्दी है, क्यों बिस्तर बांधकर तैयार हो रही हो? साध्वी अणचांजी की क्षमता सामर्थ्य देखकर आचार्यवर ने चौथी परिपाटी की स्वीकृति प्रदान कर दी और उसी समय कहा – लगता है इनका तप पूर्ण हो जाएगा।

लघुसिंहनिष्क्रीडित तप दुष्कर तप है। उसमें भी चौथी परिपाटी करना अत्यन्त–अत्यन्त दुष्कर तप है। इस उग्र तप को प्रारंभ करने का साहस अनेक तपस्वी साधु–सतियों ने किया, पर इतिहास साक्षी है – साध्वी मुक्खाजी (सुजानगढ़) और धन्नाजी (जसोल) दो साध्वियां ही चौथी परिपाटी के शिखर तक पहुंची। साध्वी मुक्खांजी ने सं. 1977 राजलदेसर में चौथी परिपाटी की तपस्या की। साध्वी धन्नाजी ने सं. 1980 में यह तप सानन्द सम्पन्न किया। ये दोनों महान तप अष्टमाचार्य कालूगणी के युग में हुए।

नवमाधिशास्ता आचार्यश्री तुलसी के पावन सान्निध्य में साध्वी अणचांजी ने चाड़वास में सं. 1996 आषाढ शुक्ला दशमी के दिन चौथी परिपाटी की तपस्या प्रारंभ की, जो सं. 1999 पोष कृष्णा चतुर्थी को बीदासर वीरभूमि में सम्पन्न हुई। उस समय साध्वी अणचांजी की अवस्था मात्र 45 वर्ष की थी। इस एक सौ सत्तासी दिन की तप महायात्रा में जो उतार चढाव आए, रोमहर्षक हैं। तपस्या के दिनों की वृद्धि के साथ उनकी मानसिक प्रसत्ति और उत्साह अनाबाध गति से बढता रहा, पर शारीरिक शक्ति क्षीण होने लगी। कभी कभी तो वे बेहोश हो जाती। शरीर अस्थिपंजर जैसा दिखाई देने लगा। उनकी शारीरिक स्थिति को देखकर सभी तपस्या की सकुशल सम्पन्नता पर सन्देह व्यक्त करते–रहते, पर दो व्यक्ति इसमें अपवाद थे। प्रथम पूज्य गुरुदेव के मन में एक क्षण के लिए संशय नहीं उभरा। मातुश्री छोगांजी विश्वास के साथ कहती – साध्वी अणचांजी का तपोनुष्ठान सानन्द सम्पन्न होगा।

शारीरिक स्थिति की गंभीरता देख श्रावक समाज ने दो बार उनके लिए बैकुण्ठी का निर्माण कराया। जब बैकुण्ठी तैयार हो गई, श्रावकों ने विनोद भरे लहजे में पूछा – विमाण तैयार है, अब आपके कितनी देरी है। यद्यपि शारीरिक शक्ति क्षीणप्राय थी पर मनोबल इतना दृढ था कि वे एक ही उत्तर देती – "मैं तो आं मैं को बैठूं नी, कोई दूसरा ही बैठसी।" साध्वीजी के दृढ़ विश्वास के साथ निकले शब्द सत्य साबित हुए, दोनों बैकुण्ठी दूसरों के ही उपयोग में आई।

संघ के वरिष्ठ संत जब उनकी सुखसाता पूछने आते, शरीर की स्थिति देखकर कहते – अणचांजी! संथारो कर लो और जीने की आशा छोड़ दो। कहीं ऐसा

न हो जाए कि तुम संथारा के बिना चली जाओ। इसके लिए हम आपको सावधान कर रहे हैं। शासन स्तम्भ अनुभवी संत मुनिश्री चौथमलजी (जावद) ने एक दिन उनसे कहा – "अणचांजी! थांरै मन में विश्वास हुसी मैं पहला री तरह विभाग रो आहार करस्यूं, वजन उठास्यूं, यात्रा करस्यूं और संघ–सेवा करस्यूं। पर सफलता मिलणी मुश्किल है। शरीर रो मोह छोड़कर संथारो करल्यो।"

कई समझदार व्यक्तियों ने सलाह देते हुए कहा – "तपसणजी! चाहे देवता को पूछलो, अब आप बचने वाली नहीं है।" साध्वी अणचांजी ने संतुलित भाषा में उत्तर दिया – जिन्हें अपने आप पर भरोसा नहीं है, वे देवों से पूछे। मुझे अपने आत्मबल पर पूरा विश्वास है। यहां तक देववाणी में किसी ने कहा – अब आयुष्य थोड़ा है, संथारा कर लो' सुनकर भी वे विचलित नहीं हुई। वे कहती मुझे देवों से अधिक अपने गुरु पर विश्वास है। उस समय उनका स्वास्थ्य जनभाषा के अनुरूप ही दिखाई देता था। स्वयं आचार्यवर ने उन के शारीरिक स्थिति की अभिव्यक्ति एक पद्य के माध्यम से दी –

अणचा! तू आछी करी, करणी शिव–सुख काम।
मुद्दो न दीसै मांस रो, चिलकै कोरी चाम।।

जब साध्वी अणचांजी ने चौथी परिपाटी सम्पन्न की, आचार्य तुलसी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा – "चतुर्थ आरे के दृढ़ संहनन और उत्तम संस्थान वाले साधकों द्वारा सम्पन्न होने वाले उग्र तप को धैर्यवती मनोबली साध्वी अणचांजी ने पांचवे आरे में सम्पन्न किया है। तेरापंथ धर्मसंघ की इससे महती प्रभावना हुई है।" सचमुच इस महान तपसाधना से साध्वी अणचांजी ने गण गौरव को शिखर पर चढ़ाया और महान कर्म निर्जरा की।

<u>चातुर्मासिक तप : छमासी तप</u>

तेरापंथ द्विशताब्दी का ऐतिहासिक अवसर। तेरापंथ धर्मसंघ में व्यापक एवं विशाल स्तर पर कार्यक्रम का श्रीगणेश इसी से प्रारंभ हुआ। आचार्य तुलसी की दूरगामी सोच, व्यापक चिन्तन और पुरुषार्थी कर्तृत्व ने विकास के कीर्तिमान स्थापित किए। उस वर्ष तपस्या के सन्दर्भ में विविध आयामी प्रयोग हुए। साध्वी भूरांजी ने जहां बारह मासी तप किया, वहां कई साध्वियों ने चौमासी तप किए। उनमें एक नाम साध्वी अणचांजी का है। पूज्य गुरुदेव आषाढ महीने में सबको यथाशक्ति तपःसाधना की प्रेरणा दे रहे थे। इसी क्रम में तपस्विनी साध्वी अणचांजी से पूछा – इस चातुर्मास

में तुम कितने दिनों की तपस्या करोगी? साध्वी अणचांजी ने विनम्रता से कहा – भंते! तेले की तपस्या तो मैं अपनी शक्ति से कर सकती हूँ और उसके आगे आप जितनी शक्ति प्रदान करेंगे तपस्या करने का भाव है। आचार्यवर का अगला प्रश्न था – अब तक कितने मासखमण किए हैं? उन्होंने कहा – गुरुकृपा से सात हुए हैं। आठवें मासखमण की प्रेरणा पाकर साध्वी अणचांजी ने एक साथ मासिक तप का संकल्प किया। 30 दिन का तप जिस दिन सम्पन्न हुआ पुनः एक मासिक तप करने का संकल्प ले लिया। तीन दिन की तप साधना की भावना से प्रारंभ की गई आछ के आगार का यह तप अनुष्ठान एक सौ अठारह दिनों से सानन्द सम्पन्न हुआ। चातुर्मासिक तपस्या की सम्पन्नता पर आचार्यवर ने कहा – "यदि साध्वी अणचांजी के यह तपस्या दो महीना और आगे बढ़ जाती तो छह मासिक तपस्या हो जाती।" इससे स्पष्ट है कि आचार्यवर की इच्छा छहमासिक तप कराने की थी, पर साध्वीजी के मुंह में छाले अत्यधिक हो जाने से पारणा करना पड़ा। चार वर्ष के पश्चात सं. 2021 में उनका चौमासा दिवेर में था, वहां उन्होंने 183 दिन अर्थात छहमासी तपस्या कर आचार्यवर की भावना साकार की। उल्लेखनीय है कि तपस्या काल में उन्होंने अपने चातुर्मासिक क्षेत्र के चोखले को संभाला। एक–एक क्षेत्र की सार संभाल करती–करती तपस्या के 23वें दिन वे छापली गांव आई और चौवन दिन की तपस्या के दिन आठ किलोमीटर का विहार कर दिवेर पहुंची। उस समय उनकी अवस्था तिहोत्तर वर्ष की थी।

तप साधना और स्वावलम्बन

साध्वी अणचांजी तपस्या में चाहे वह उपवास बेला तेला हो या मासखमण चौमासी अथवा छहमासी तपस्या हो, अपना काम स्वयं करती। प्रतिलेखन, प्रतिक्रमण आदि क्रियाएं स्वयं करतीं। हजारों पद्यों का प्रतिदिन स्वाध्याय करतीं। छहमासी तप में उन्होंने 20 लाख 67 हजार 6 सौ 14 गाथाओं का स्वाध्याय और जप किया। ध्यान, जप और मौन का क्रम भी उनका व्यवस्थित रहता। प्रायः तपस्या में प्रातःकाल घूमने जातीं। तपस्या काल में भी कभी दीवार का सहारा नहीं लेती। कभी–कभी सिलाई भी करतीं। रात्रिकालीन और प्रातःकालीन प्रार्थना नियमित रूप से करती थी। कभी–कभी साध्वियां कह देती – आपके तपस्या है, सो जाइए या ध्यान स्वाध्याय कर लीजिए। वे स्पष्ट शब्दों में कहती – "मेरे साधु जीवन के नियम मुझे ही पालने हैं, तुम अपने पालो। यदि तपस्या से मेरी जीवन चर्या प्रभावित होगी तो मेरे लिए तपस्या करना आवश्यक नहीं है।"

अभिग्रह

छोटी बड़ी और दीर्घकालीन तपस्या में वे अभिग्रह अवश्य करती थी। पहले पहले उनके अभिग्रह स्थान, पदार्थ और व्यक्तियों से सम्बंधित होते और विचित्र विचित्र प्रकार के होते। जैसे – अमुक स्थान का व्यक्ति, अमुक वेशभूषा में, अमुक स्थिति में आकर पारणा के लिए कहे तो पारणा करूँगी। लेकिन कुछ समय पश्चात उनकी समझ में आ गया कि – यह तो प्रदर्शन का स्वरूप ले रहा है। इसलिए उसके स्थान पर वे ध्यान मौन जप स्वाध्याय आदि अन्तरंग तप के आधार पर अभिग्रह करती।

तपस्या काल में अनेक बार कसौटी के क्षण भी उपस्थित हुए पर उनका धैर्य और मनोबल एक समान बना रहा। सं. 2015 में उनका चातुर्मास लावा सरदारगढ़ मेवाड़ में था। उस वर्ष उन्होंने 82 दिन का तप किया। तपस्या के 40 वें दिन संभवतः किसी जहरी जंतु के काटने से अथवा अन्य किसी कारण से ललाट से लेकर सीने तक सूजन आ गया। दोनों आंखें सूजन के कारण खुल नहीं रही थी। वह समय पयुर्षण का था। सात दिन–रात आंखें बंद रही। आठवें दिन संवत्सरी का प्रतिक्रमण कर 40 लोगस्स का ध्यान किया। ध्यान प्रारंभ किया तब दोनों आंखें बन्द थी, ध्यान सम्पन्न हुआ, आंखें खोली तो सारा सूजन गायब था।

अद्‌भुत सहनशीलता

एक बार मेवाड़ में विहार करते समय बबूल की शूल उनके पैर में बहुत गहरी चुभ गई। उन्होंने साध्वियों से तत्काल उसे निकालने को कहा। साध्वियों ने पूरी शक्ति के साथ खींचकर निकाली पर इतनी गहरी थी कि उसका बहुत छोटा अंश भीतर रह गया। उस दिन का प्रवास आमली गांव में था। मध्याह्न में साध्वियां अपने कपड़े धो रही थी, उन्हें लगा यहां से विहार कर देना चाहिए और साध्वियों को आदेश की भाषा में कहा – अभी विहार करना है।

वे विहारकर मुश्किल से आधा किलोमीटर चली होंगी, उन्हें लगा पैरों में सूजन बढ़ रहा है और साथ में शरीर का तापमान भी। बड़ी कठिनाई से अगली मंजिल आसाहोली गांव पहुंचे। उस समय उनको एक सौ तीन डिग्री बुखार हो गया। पैर से एक कदम चलना भी अंसभव हो गया। एड़ी के सिवाय पूरे पैर में भयंकर मवाद होने से भयंकर स्थिति बन गई। दूसरी ओर बुखार ने टाइफाइड का रूप ले लिया। खांसी जुकाम ने इस कदर शरीर को प्रभावित कर लिया कि भूख और नींद दोनों

समाप्त हो गई फिर भी उन्होंने एक टेबलेट तक नहीं ली। स्वयं अपने हाथ से पींच–पींच कर रस्सी (मवाद) निकालती। कहते हैं, एक बार पट्टी करती तब दो छटांक तक मवाद निकल जाती। ढाई महीना बाद हलका–सा सुधार हुआ। उस वर्ष उनका चौमासा लावासरदारगढ फरमाया हुआ था। कभी श्रावकों ने चिकित्सा के लिए गंगापुर की अर्ज की और कभी चातुर्मास क्षेत्र में पधारने के लिए आसपास विहरण करने वाली सतियाँ उठाकर ले जाए, ऐसी प्रार्थना की। पर उनका एक ही उत्तर था – दवा जब लेनी ही नहीं है तो अन्यत्र जाने का सवाल ही नहीं उठता। चौमासा करने के लिए धीरे–धीरे चलकर जाने की भावना व्यक्त करते हुए कहा – खांधै पर चढ़कर एक बार ही जास्यूं.....आश्चर्य की बात यह है कि एक माइल में दस बार विश्राम किया पर चातुर्मास लावासरदारगढ़ जाकर ही किया। इस पूरी अस्वस्थता में न कभी दवा ली और न लगाई। तप और जप की दवा सतत चालू रखी।

वचन की दृढ़ता

साध्वी अणचांजी अपने मुंह से कहे गए वचन के प्रति बहुत दृढ़ रहतीं। वे अवस्था से वृद्ध होने पर भी मन से कभी वृद्ध नहीं बनीं। वे संघीय हर नए चिन्तन और निर्णय में अपने आपको मन से ढ़ाल लेतीं। गुरु के या साध्वीप्रमुखाश्रीजी के मुख से निकले वचन का प्राणपण से पालन करतीं। एक बार साध्वीप्रमुखा लाडांजी ने विनोद में कहा – अणचांजी महासतीजी! अस्सी वर्ष से ज्यादा जीकर क्या करोगी? लो त्याग कराऊं यदि अस्सी वर्ष के बाद जीओ तो पांच द्रव्य से अधिक मत खाना। उन्होंने तत्काल तहत कहकर स्वीकार कर लिया। यह प्रसंग 2005 का था। जब सं. 2031 की जेठ वदी एकम को उन्होंने 81 वें वर्ष में प्रवेश किया, उस समय तक उनकी सहवर्तिनी साध्वियां यह बात बिल्कुल भूल चुकी थीं। जब उन्होंने दूसरे दिन पारणा किया, पांच द्रव्य से अधिक द्रव्य का उपयोग नहीं किया। साध्वियों ने निवेदन किया आपने त्याग तो किए नहीं थे, फिर .....? उन्होंने कहा – बड़ों के सामने कही गई या स्वीकार की गई बात त्याग से कम नहीं होती।

दूसरी ओर उनकी तपस्या में रुचि गहरी रहती थी, पर तपस्या करना उनको उस हालत में ही स्वीकार था जब उनकी दैनिक चर्या, जप स्वाध्याय में विघ्न न आए। यदि उन्हें लगता कि प्रतिदिन होने वाली निर्जरा में तपस्या बाधक बन रही है तो तत्काल पारणा कर लेती। आग्रह उनकी मनोवृत्ति में नहीं था। इसलिए तपस्या अधिक निखार पा सकी।

पक्षाघात का आक्रमण और अनशन

सं. 2031 का उनका चातुर्मास लाछुड़ा गांव में था। चातुर्मास सम्पन्नता से पहले कार्तिक शुक्ला 14 को उनके बाएं हाथ में शून्यता आ गई। हाथ से धागा तक उठना मुश्किल हो गया। उन्होंने मनोबल का परिचय देते हुए वहां से विहार कर दिया और आसींद पहुंच गईं। सामान्य उपचार तथा तप जप के प्रयोग भी किए, पर विशेष शारीरिक लाभ नहीं मिला। दशमी को सायंकालीन प्रतिक्रमण करने के पश्चात लगभग आठ बजे शरीर के दाहिने अंग में पक्षाघात का प्रबल आक्रमण हो गया। जिससे जबान बन्द हो गई और एक हाथ, एक पैर पूर्णतः निष्क्रिय हो गए। एक दो दिन पिपलामूल आदि घरेलू दवा का उपयोग किया। स्वास्थ्य की स्थिति में थोड़ा भी सुधार न होने पर उनका आत्मबल जाग उठा और मिगसर कृष्णा द्वादशी को रात्रि के दो बजे प्रच्छन्न रूप से आजीवन अनशन ग्रहण कर लिया।

दूसरे दिन अनशन की बात ज्ञात न होने से साध्वियों तथा श्रावकों ने आहार, दवा आदि के लिए निवेदन किया। उनकी जबान बन्द होने से स्पष्ट रूप से बता नहीं पा रही थी। आखिर शाम होते–होते उन्होंने संकेत से स्पष्ट कर दिया कि – मैंने चौविहार संथारा कर लिया है। मेवाड़ में विचरण करने वाली साध्वियां भी आसींद तपस्विनीजी के दर्शन करने पहुंचने लगी। उनमें एक थी साध्वीश्री जतनकुमारीजी (राजगढ़)। उन्होंने मिगसर कृष्णा अमावस्या के दिन परिषद के मध्य साध्वी अणचांजी को विधिवत चौविहार अनशन पचखाया।

दीर्घतपस्विनी का सम्बोधन

साध्वी अणचांजी को जिस समय सभा के समक्ष अनशन पचखाया जा रहा था। लगभग उसी समय दिल्ली में विराजमान आचार्य श्री तुलसी का षष्टीपूर्ति समारोह मनाया जा रहा था। आचार्यप्रवर ने उस कार्यक्रम में – साध्वी अणचांजी को 'दीर्घतपस्विनी' सम्बोधन से सम्बोधित किया।

सम्बोधन पत्र

हमारे धर्मसंघ में अनेक साधु साध्वियां समय–समय पर हुए हैं, तथा वर्तमान में भी हैं, जिन्होंने विशिष्ट कार्यों से शासन की शोभा बढ़ाई है। उनमें से एक साध्वी अणचांजी का आज मैं दीर्घतपस्विनी के रूप में स्मरण करता हूँ।

नई दिल्ली अणुव्रतभवन

13 दिसम्बर 1974

आचार्य तुलसी

दीर्घतपस्विनी साध्वी अणचांजी के अनशन के अवसर पर आचार्यवर ने साधु साध्वियों को आदेश दिया कि अपनी इच्छा और सुविधानुसार जो भी साधु साध्वियां आसीन्द रुकना चाहे रुक सकते हैं। साध्वी जतनकुमारीजी राजगढ़ के अतिरिक्त साध्वी पानकुमारीजी सरदारशहर, विद्यावतीजी श्रीडूंगरगढ़, संघमित्राजी श्रीडूंगरगढ़ यथासमय वहां पहुंच गए तथा जितना बन सका, आध्यात्मिक सहयोग देने का प्रयत्न किया। मुनिश्री खेतसीजी जो उनके संसारपक्षीय अनुज थे, वे और मुनिहर्षलालजी लाछुड़ा भी आसीन्द पहुँचे।

श्रावक श्राविकाओं के आवागमन का सतत तांता–सा लगा रहा। हजारों–हजारों जैन जैनेतर लोगों ने दर्शन का लाभ लिया तथा त्याग प्रत्याख्यान कर अपने वैराग्य भाव को वृद्धिगंत किया।

दीर्घतपस्विनी के नाम आचार्यश्री तुलसी का एक पत्र

मैंने सुना है तुमने चौविहार अनशन ग्रहण कर लिया। एक बार तो लगा, ऐसे कैसे हुआ? अनशन करना, यह भी एक बड़ी बात है और उसमें चौविहार अनशन (उसमें पानी भी नहीं पीना और वह भी जीवनभर के लिए) बहुत कठिन बात है। फिर भाई चान्दमलजी के मुंह से सुना कि उन्होंने सचेत अवस्था में बहुत ही आंतरिक इच्छा सहित स्वतः अनशन किया है। तब मन में जंचा कि जो व्यक्ति अपनी इच्छाओं से अपने जीवन को तपस्या में झोंक देता है, उसके बारे में चिन्ता की बात ही क्या है? योंही साध्वी अणचांजी के जीवन के लिए कोई जोखिम की बात तो है ही नहीं। मैं चाहता था अनशन थोड़ा सोच विचार कर किया जाता। कर लिया तो कर लिया, अब तो फतह होनी ही है। मैंने सुना कि अकस्मात तुम्हारे पक्षाघात की बीमारी हो गई तो उसका इलाज करना चाहिए था, चिकित्सा करानी चाहिए थी। एकदम इस तरह से शरीर के साथ में क्या नाराजगी हो गई। देखो, शरीर ने कितना बड़ा साथ दिया है। इस शरीर से कितनी तपस्याएं हुई, कितनी सेवाएं हुई, कितने विहार हुए, कितनी गुरुकुल की साधना की है और इस शरीर के द्वारा कितने लोगों को प्रेरणा मिली है। ऐसे उपकारी शरीर को एकदम छोड़ने का निर्णय कर लेना – यह साहस का काम है। यद्यपि शरीर, शरीर है, नश्वर है, क्षणभंगुर है। यह हमको छोड़े तो उससे पहले हम इसको छोड़ दें, यह भावना भी बहुत क्रान्तिकारी है। हमारे जैनधर्म में एक बहुत बड़ी कला सिखाई गई है। जीने की कला तो बहुत लोग सिखाते हैं। जीने का वर्णन बहुत धर्मों में मिलता है किन्तु मरने की कला केवल जैन दर्शन में और जैन सिद्धान्तों में है। कोई कहेगा कि मरना भी कोई कला है क्या? कला कैसे नहीं है, एक तो

त्राहि–त्राहि करके मरे, और एक मौत को उत्साहपूर्ण निमंत्रण दें, इसमें बहुत बड़ा अंतर है। मौत से मुकाबला करने के लिए कटिबद्ध होकर बैठ जाना मृत्यु की कला है। मुझे लगता है, साध्वी अणचांजी ने कलापूर्ण और पण्डित मृत्यु की बात सोची है, इसलिए चौविहार अनशन स्वीकार कर लिया।

हमारे धर्मसंघ में अनेक साध्वियां हुई है, जिन्होंने अपूर्व तपस्याएं की है। संघ को अपनी सेवाएं दी है। इनमें अणचांजी का भी एक स्थान है और अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए हमने इस षष्टीपूर्ति समारोह के अवसर पर 'दीर्घतपस्विनी' का सम्बोधन तुमको दिया और तुमने बहुत जल्दी जाने की तैयारी कर ली। अच्छा हुआ, वरना मरणोपरांत हमको यह विशेषण तुम्हारे नाम के साथ जोड़ना पड़ता। जीवित अवस्था में जोड़ दिया और तुमने अपने कानों से सुन लिया, अच्छा हुआ।

साध्वी अणचांजी! तुमने हमारे धर्मसंघ में जिस तरह से आचार्यो की दृष्टि की आराधना की है, जिस तरह से धर्मसंघ को सेवाएं दी है, संस्मरणीय रहेगी। हमने तुमको जहां भेजा और जिस काम के लिए भेजा, उस काम को तुमने पूर्ण किया। उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्पन्न किया। यह हमारी भावी पीढ़ी वाली साध्वियों के लिए उदाहरण रहेगा। मुझे याद है बहुत सारी पढ़ी–लिखी साध्वियां जो काम नहीं कर सकी, वह तुमने कर दिखाया। उसमें मांगीलालजी स्वामी की संसारपक्षीया माता साध्वी प्यारांजी का उदाहरण है। एक बार एक साध्वी बीमार हो गई, अवस्था छोटी थी, ब्यावर से लाडनूं पहुंचाना था। तुमने उस साध्वी को कन्धों पर बिठाकर लाना स्वीकार किया और लायी भी। ऐसी–ऐसी तुम्हारी अपूर्व सेवाएं मैं याद करता हूँ तो मेरा हृदय गद्‌गद् हो जाता है। कालूगणी के शासनकाल में तुम्हें गुरुकुल की सेवा का सतत लाभ मिलता रहा। कालूगणी के स्वर्गवास हो जाने पर मेरे (वर्तमान) समय में भी तुम बहुत वर्षों तक सेवा में रही हो। जब तक तुम्हारी शारीरिक शक्ति ने थोड़ा भी साथ दिया, तब तक तुमने गुरु उपासना का लाभ•लिया। वैसा अवसर किसी–किसी भाग्यशाली को ही मिल पाता है।

अब तुम अनशन में हो और अन्तिम विजय की बात सामने है। मैं चाहता हूँ कि तुम अपने परिणामों की श्रेणी को उत्तरोत्तर चढ़ती बढ़ती रखो। उत्तरोत्तर अपूर्व–अपूर्व पर्यायों को प्राप्त करो और अब तो परिणामों पर ही सारी बाजी है। भले ही तुम बोल नहीं सकती हो, कुछ कह नहीं सकती हो। बोलना है ही किसको? बोलने की जरूरत ही क्या है? अब तो पूर्णतया अन्तर्मुखी बनने के क्षण है। मुझे लगता है तुम अपने आप ही अन्तर्मुखी बन गयी हो। मैं चाहता हूँ कि इसी तरह तुम अन्तर्मुखी

बनते–बनते अपने चिर–साध्य को प्राप्त करो और हमारे धर्मसंघ की शोभा बढ़ाओ।

अणचांजी! तुम धन्य हो कि तुमने अपने जीवन के अन्तिम साध्य को साधा और साध रही हो। तुम्हारे साथ में रहने वाली साध्वियां हैं, उन्होंने तुम्हारी बहुत सेवाएं की है। योग ऐसा मिला कि आसींद क्षेत्र तुमको मिला। आसीन्द के लोग बड़े उत्साही है। आगन्तुक कई साध्वियां तुम्हारे पास में है। तुम्हारे संसारपक्षीय भाई मुनि खेतसीजी भी तुम्हारे पास पहुंच गए हैं। एक मेला--सा लग गया है। मैं चाहता हूँ, जो साध्वियां रास्ते चलती, उधर से आ रही है, वे चाहे तो संथारे की स्थिति में वहां रह सकती है।

आसीन्द के श्रावकों के लिए मैं एक बात कहना चाहता हूँ। अनशन के प्रसंग पर लोग आएंगे ही, उनका स्वागत भी करना पड़ेगा, पर मैं चाहता हूँ कि स्वागत में आडम्बर को प्रश्रय न दिया जाए। इस स्वस्थ परम्परा का निर्वाह करना है। साध्वी अणचांजी की शोभा यात्रा में भी इस परम्परा का उल्लंघन न हो, यही उचित है। आसीन्द के विनीत श्रावक इस क्रम का ध्यान रखेंगे और शालीनता का परिचय देंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

अन्त में साध्वी अणचांजी के प्रति मेरी हार्दिक शुभकामनाएं! उनके अनशन के प्रति मेरा सुफल आशीर्वाद। वे अत्यन्त उच्च परिणामों की श्रेणी में अपने समाधिपूर्ण मरण को प्राप्त करें व अपने साध्य को प्राप्त करें।

आचार्य तुलसी

नई दिल्ली

17 दिसम्बर 1974

अन्तिम क्षण

साध्वी अणचांजी यद्यपि शारीरिक दृष्टि से अनशन काल में अस्वस्थ थीं, पर अपनी साधना आराधना में पूर्ण जागरूक थी। कहीं भी थोड़ी–सी स्खलना होती, वे संकेत कर देती। यद्यपि वे उस समय लकवे/पक्षाघात के कारण बोलने में पूर्णतः अक्षम थी। अनशन–काल में इक्कीस साधु–साध्वियां आसीन्द में उपस्थित थे। मिगसर शुक्ला सप्तमी को दस बजकर पन्द्रह मिनिट पर उन्होंने अन्तिम सांस ली। संयोग की बात ही कही जा सकती है – उनका जन्म, संयम ग्रहण और स्वर्गारोहण तीनों एक ही वार–शनिवार को हुआ।

यद्यपि मेवाड़ की परम्परा और उत्साह के कारण श्रावक–श्राविका खूब ठाटबाट से अन्तिम यात्रा निकालना चाहते थे, पर आचार्यवर के इंगित की आराधना करते हुए सारे काम सादगी से सम्पन्न किए।

आचार्यश्री तुलसी ने सं. 2033 में कालू जन्म शताब्दी के विशालतम आयोजन में संघ के कुछ विशिष्ट साधु–साध्वियों को विशेष रूप में याद किया, उनमें एक थी – दीर्घ तपस्विनी साध्वी श्री अणचांजी।

स्मृति–पत्र

पूज्य गुरुदेव श्री कालूगणी की इस जन्म शताब्दी के पुनीत अवसर पर मैं उन दिवंगत साधु साध्वियों का विशेष रूप से स्मरण करता हूँ जिन्होंने पूज्य गुरुदेव की कृपादृष्टि का आराधन किया और संघ की गौरववृद्धि में उल्लेखनीय सेवाएं दीं। उनमें एक नाम है साध्वी अणचांजी का। जिन्होंने तपस्या कर धर्मसंघ की प्रभावना की है।

आचार्य तुलसी

वि. सं. 2033

फाल्गुन शुक्ला 2

10. साध्वी जड़ावांजी (सरदारशहर) (771)

साध्वी जड़ावांजी के पीहर और ससुराल दोनों पक्षों का सम्बन्ध सरदारशहर की धरती से था। उनका जन्म सं. 1937 दफ्तरी परिवार में हुआ और शादी छाजेड़ परिवार में हुई। उन्होंने अट्ठाइस वर्ष की अवस्था में पति वियोग के बाद पूज्य कालूगणी के हाथों संयम स्वीकार किया। उन्होंने लगभग 20 वर्ष संयम का अमृतपान किया। अपनी योग्यतानुसार तप, जप और स्वाध्याय कर जीवन को सफल और सार्थक बनाया।

साध्वी चूनांजी (819) बीदासर सं. 1991 का चातुर्मास करने भगवतगढ जा रही थी। साध्वी जड़ावांजी उनके साथ थीं। लाडनूं में साध्वी चूनांजी का संसारपक्षीय पीहर था, इसलिए वे अपने सम्बंधीजनों को सेवा कराने के लिए कुछ समय लाडनूं रुकी। अचानक साध्वी जड़ावांजी अस्वस्थ हो गईं और वे चलने में अक्षमता अनुभव करने लगी। उन्होंने अपनी बीमारी को चिकित्सा से, दवा से नहीं, तपस्या से ठीक करने के लिए पांच दिनों का तप किया। उस तप को प्रारंभ करने के बाद उनकी भावना उत्तरोत्तर बढ़ती रही। उनके मन में पारणे की भावना न होकर अनशन की भावना दृढ होने लगी। उन्होंने आचार्यश्री से अनशन के लिए निवेदन कराया। आचार्यवर ने तपस्या का निर्देश दिया।

साध्वी जड़ावांजी का तप अनुष्ठान आगे बढता रहा। उस समय लाडनूं सेवाकेन्द्र में साध्वी विरधांजी बोरज (577) सेवा दे रही थी। मुनि चम्पालालजी राजनगर भी वहीं प्रवास कर रहे थे। तपस्या के सैंतीसवें (37) दिन साध्वी जड़ावांजी ने साध्वीजी को तथा मुनिश्री को आग्रहभरी विनती की। चार दिन तक वे भी चिन्तन करते रहे। आखिर 41 वें दिन चार तीर्थ – साधु साध्वियों श्रावक श्राविकाओं के मध्य उन्होंने अपने विचार रखते हुए कहा – मेरे मन में संथारा करने की तीव्र भावना है। मैं सोचती हूँ – यह भावना मेरे मन में न रह जाए अतः आप मुझे अविलम्ब संथारा करा दें। आप संथारे की चिन्ता न करें। मेरा मन मजबूत है। लोह की भांति मजबूत मनोबल देखकर साध्वी विरधांजी से परामर्श लेकर मुनिश्री चम्पालालजी ने उनको तिविहार अनशन करवा दिया। संथारा स्वीकार करते ही उनकी प्रसन्नता फूट पड़ी। भावों की ऊंचाई अनवरत बढती गई। अनशन की सूचना ज्यों–ज्यों फैली, लोग उमड़ने लगे। आसपास के गांवों के लोगों ने भी लाभ उठाया। लाडनूं के जैन–जैनेत्तर सभी लोगों का तांता–सा जुड़ गया। लाडनूं के ठाकुर बालसिंहजी स्वयं दो बार दर्शन करने आए। ठुकरानीजी ने भी दो बार आकर दर्शन कर अपने आपको धन्य माना।

संथारे के समय हुए त्याग प्रत्याख्यान विशेष उल्लेखनीय रहे। साध्वी जड़ावांजी ने अनशन के इकतीसवें (31) दिन सवा बारह बजे चौविहार अनशन स्वीकार किया, जो उसी दिन सानन्द सम्पन्न हो गया। साध्वी जड़ावांजी के संलेखना संथारे के कुल दिन 71 हुए। फाल्गुन शुक्ला सातम को उन्होंने संलेखना प्रारंभ की और वैशाख कृष्णा तीज के दिन लाडनूं में उन्होंने पण्डितमरण प्राप्त किया। दूसरे दिन खूब ठाटबाट के साथ तेरह खंडी मंडी बनाकर उनकी शवयात्रा निकाली गई और विधिवत दाह–संस्कार किया। इतने लम्बे संलेखना तप और अनशन का साध्वी समाज में यह पहला अवसर था।

11. साध्वी प्यारांजी (पुर) (778)

साध्वी प्यारांजी मेवाड़ की बेटी और मेवाड़ की बहु थी। बागोर गांव में पृथ्वीराजजी चपलोत की पुत्री थी और पुर में डांगी परिवार में उनका ससुराल था। उनके पति का नाम चुन्नीलालजी था। प्यारांजी का जन्म सं. 1946 में चैत्र कृष्णा 13 को हुआ। उन्होंने पति के दिवंगत होने पर दसवर्षीय पुत्र कानमलजी के साथ अपने गांव पुर में सं. 1972 चैत्र शुक्ला 10 को आचार्यश्री कालूगणी के कर – कमलों से संयम स्वीकार किया। उसका वर्णन आचार्य तुलसी ने इन शब्दों में किया है –

प्यारी प्यारां मात, कानूडो रुड़ो मुनि।
पुर दीक्षा गुरु हाथ, वर्ष बहोत्तर चैत सुद।।

साध्वी प्यारांजी की साधारण जीवनशैली ने उनको असाधारण उपलब्धियां दी। वे अधिक पढ़ी–लिखी नहीं थी, पर उनकी सहज शान्त जीवन शैली थीं। साधुचर्या के प्रति वे सजग थीं। उन्होंने सेवा और तपस्या दोनों में अपना जीवन समर्पित कर दिया। उनका शरीर कृश था पर तप साधना में उनका मनोबल आश्चर्यजनक था। उनको गुरु–कृपा का प्रसाद भरपूर मिला। वे तैंतीस साल गुरु सान्निध्य में रही। बीस वर्ष अष्टमाचार्यश्री कालूगणी की सेवा की और 13 वर्ष आचार्यश्री तुलसी के उपपात में रहने का अवसर मिला। वे साध्वी सोनांजी सरदारशहर (674) के साझ में थीं। साध्वी सोनांजी गुरुकुलवास में रहती थी। इसलिए साध्वी सोनांजी का सहवास उनके लिए सोने में सुगन्ध जैसा था।

उन्होंने तपस्या बहुत की और अनवरत करती रही। उनका जीवन तपस्यामय था कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। उन्होंने उपवास से लेकर उन्नीस तक लड़ी बद्ध तप किया। दो बार इक्कीस दिन और एक मास खमण की तपस्या की। दो बार पचरंगी, एक बार धर्मचक्र तथा 15 वर्ष लगातार एकान्तर किए।

सं. 1996 बीदासर में आचार्य तुलसी के पावन सान्निध्य में उन्होंने लघुसिंहनिष्क्रीडित तप की दूसरी परिपाटी की। उस समय आचार्यश्री तुलसी ने उनको सम्बोधित कर एक दोहा कहा –

प्यारां ते भारी कस्यो, परिपाटी स्यूं प्रेम।
कान – मात करणीज तप, वरणी जावै केम।।

उनकी तप–तालिका निम्नोक्त है –

उपवास	–	2748	बारह	–	2
बेला	–	708	तेरह	–	2
तेला	–	353	चौदह	–	1
चोला	–	94	पन्द्रह	–	1
पंचोला	–	81	सोलह	–	1
छह	–	13	सतरह	–	1
सात	–	9	अठारह	–	1
आठ	–	8	उन्नीस	–	1
नौ	–	4	इक्कीस	–	2
दस	–	2	मासखमण	–	1
ग्यारह	–	1			

साध्वी प्यारांजी ने अपनी चालीस वर्षीय संयम यात्रा में अठारह वर्ष सतरह दिन की तपस्या कर अपनी आन्तरिक तपरुचि की अभिव्यक्ति दी। वे तपस्या के साथ स्वाध्याय भी करती थीं। वे खाद्य संयम भी अच्छा रखती। सेलड़ी वस्तु का अनेक वर्षों तक त्याग रखा। आयंबिल और अभिग्रह की साधना भी चलती रहती। मौन भी नियमित रखती।

तपस्या के साथ–साथ आचार की निर्मलता, प्रकृति की सरलता, संघ एवं संघपति के प्रति अटूट आस्था आदि उनकी विरल विशेषताएं थीं जो उनकी तपः साधना को और अधिक तेज सम्पन्न बनाती थीं। उन्होंने हमेशा समाधिस्थ जीवन जिया। साध्वी सोनांजी के साथ तो उनका दूध मिश्री जैसा आत्मीय भाव जुड़ा हुआ था। वे जीवनभर उनके साथ विनम्रता व बहुत अनुकूलता के साथ रही। सं. 2005 तक साध्वी सोनांजी गुरु सेवा में रही। जब आचार्यश्री तुलसी ने जयपुर–यात्रा प्रारंभ की, तब साध्वी सोनांजी वृद्धावस्था के कारण थली में रह गई। साध्वी प्यारांजी उनके सिंघाडे में रही। अन्तिम सांस तक उन्होंने साध्वी सोनांजी की छत्रछाया प्राप्त की।

सं. 2011 वैशाख कृष्णा 10 को उन्होंने साध्वी सोनांजी द्वारा अनशन ग्रहण किया। लगभग दस घंटे, सात मिनिट का संथारा आया। उसी दिन रात्रि में आठ बजकर बावीस मिनिट पर चूरू में वे समाधिपूर्वक पण्डितमरण को प्राप्त हो गईं। आचार्यश्री तुलसी ने उनकी स्मृति में एक सोरठा इस प्रकार कहा –

प्यारां सती पिछाण, पकड़ी शिवपुर पावड़ी।
तपी तपस्या ताण, कान मुनी की मावड़ी।।

12. साध्वी भूरांजी (मंदारिया) (780)

साध्वीश्री भूरांजी का जन्म सं. 1943 पौषकृष्णा 3 को देवरिया (मेवाड़) में हुआ। उनके पिता का नाम वैणीरामजी तथा माता का नाम केसरदेवी पीतलिया था। भूरांजी का विवाह मात्र नौ वर्ष की अल्पावस्था में मंदारिया के स्थानकवासी सम्प्रदाय के प्रमुख सेठ चौथमलजी कोठारी के सुपुत्र हीरालालजी के साथ हुआ। जिस ठाटबाट और हंसी खुशी भरे माहौल में उन्होंने ससुराल में प्रवेश किया। वह समय एक साल के बाद गहरी उदासीनता में बदल गया। खुशी दुख में बदल गई। भूरांजी का जीवन गहरे अन्धकार में डूब गया। शादी के एक वर्ष पश्चात संवत 1953 में अचानक उनके पति का देहांत हो गया। यह एक ऐसा वज्राघात था, जिससे पूरा परिवार डगमगा गया। हीरालालजी अपने पिता के इकलौते पुत्र होने से परिवार का कोई आलम्बन नहीं रहा।

कसौटी का कठिन समय और वैराग्य

मृत्यु का घाव कितना ही गहरा हो, समय की मरहम ही उसे भर सकती है। यद्यपि चौथमलजी के अन्तस का जख्म भर नहीं पाया था पर उन्हें एक आलम्बन की अत्यधिक अपेक्षा थी, इसलिए कुछ काल बीतने पर उन्होंने अपने पारिवारिक जनों से विचार–विमर्श किया और भूरांजी के कौटुम्बिक देवर के लड़के सीतारामजी को बख्सीस–नामा दिलवाकर पुत्र की जगह स्थापित कर दिया। पर अब भी दुख के बादल जैसे उनका पीछा कर रहे थे। कुछ ही वर्ष बीते थे कि सीतारामजी भी काल–कवलित हो गए। सीतारामजी के एक लड़का था, इसलिए उन्होंने उसे परिवार की आशा का केन्द्र माना पर विधि को यह भी मान्य नहीं था बालक के यौवन में प्रवेश करने से पहले–पहले मृत्यु ने उसे भी अपना ग्रास बना लिया। इस प्रकार एक के बाद एक दारुण मृत्यु के दृश्य को तीन बार देखकर भूरांजी का मन वैराग्य–सागर में गोते लगाने लगा। संसार की नश्वरता को देखकर वह शाश्वत सुख की खोज में लग गई। जब कभी जहां कहीं उन्हें साधु–साध्वियों का योग मिलता, वे उपासना करतीं, धर्म चर्चा करतीं और साधुजीवन की जानकारी करने का प्रयत्न करतीं। इस अवधि में उन्होंने अपने वैराग्य रंग को गहरा किया और संस्कारों को परिपक्व बनाया। साधना के कठिन मार्ग पर चलने में जब स्वयं को सक्षम बना लिया, तब एक दिन उन्होंने अपने श्वसुर के सामने दीक्षा लेने की भावना रखी।

पुत्रवधू के मुख से गृहत्याग की बात सुनकर चौथमलजी चौंक उठे, उनके मन में यह कल्पना ही नहीं थी। उन्होंने अपनी व्यथा प्रस्तुत करते हुए कहा – मेरा

क्या होगा? अभी तक सीताराम की बहू गृहकार्य में दक्ष हुई नहीं है, तुम्हारे दीक्षित होने पर मेरी क्या दशा होगी?

संघर्ष–संयम के लिए

भूरांजी ने स्पष्ट शब्दों में अपनी भावना रखते हुए कहा – आपके विषय में चिन्तन करते समय मेरे मन में भी यही विचार आता है पर आपके और मेरे देखते देखते घर की तीन पीढियां इस संसार से विदा हो गई। हम कोई कुछ भी नहीं कर पाए। मैं भी चली जाऊं तो कौन क्या कर सकेगा? इस निरुपाय स्थिति में मैं अपनी साधना आराधना कर आत्मा का कल्याण करूं यह मुझे अभीष्ट है। आपका भविष्य अच्छा रहे इसलिए आवश्यक है कि सीताराम की बहू के लिए किसी पारिवारिक सदस्य को गोद ले लिया जाए। मेरी दीक्षा लेने की भावना हो चुकी है, अब मैं अधिक विलम्ब नहीं कर सकती। आप उदारता के साथ सोचें और मुझे दीक्षा की स्वीकृति दें।

मंदारिया में कोठारी परिवार की बहुत अच्छी प्रतिष्ठा थी। वहां के लोगों के मन में भी कोठारी परिवार के प्रति इज्जत की भावना थी। आस–पास के गांवों में उनकी अच्छी ख्याति थी। जब कभी देवगढ के राव मंदारिया आते तब कोठारीजी के यहीं ठहरते और वहीं खाना खाते। इसलिए कोठारीजी की बहू को दीक्षा की स्वीकृति देना घर से निकालने जैसा लगा। वे नहीं चाहते थे कि कोठारी परिवार की बहू–बेटी दीक्षा लें अतः उन्होंने अपनी असहमति प्रकट कर दी।

भूरांजी की भावना का वेग तीव्र होता जा रहा था और घर का वातावरण प्रतिकूल बनता जा रहा था। ऐसी स्थिति में उन्हें लगा कि – "मैं कितना ही कहूँ उसका प्रभाव होने वाला नहीं है। इसलिए उन्होंने इस संकल्प के साथ तपस्या प्रारंभ कर दी कि जब तक आज्ञा नहीं मिलेगी तपस्या चालू रखूंगी।"

कोठारी परिवार की आस्था स्थानकवासी परम्परा में थी। पुत्रवधू के दृढ संकल्प और तपस्या से प्रभावित होकर कोठारीजी ने कहा – यदि दीक्षा की भावना प्रबल है तो मैं स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षा लेने की अनुमति दे सकता हूँ।

भूरांजी की मानसिकता स्थानकवासी परम्परा में दीक्षित होने की नहीं थी इसलिए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा – मैं दीक्षा तेरापंथ सम्प्रदाय में ही लूंगी। उन्होंने अपने निर्णय का ठोस आधार प्रस्तुत करते हुए कहा – दोनों सम्प्रदाय की साध्वियों को निकटता से देखा है। तेरापंथ के साधु साध्वियों की आचारविधि एक है। एक

आचार्य का अनुशासन है। तीसरो महत्वपूर्ण बात है कि यहां रोगी और वृद्ध की जो सेवा होती है वह स्थानक वालों में नहीं होती।

पुत्रवधू द्वारा सोच समझकर लिए गए निर्णय के सामने कोठारीजी ने स्वीकृति की मुहरछाप लगा दी और सहर्ष दीक्षा की लिखित आज्ञा प्रदान कर दी।

अष्टमाचार्यश्री कालूगणी सं. 1971 में मेवाड़ में विहरण कर रहे थे। उसी वर्ष आषाढ शुक्ला एकम को गोगुन्दा में आचार्य कालूगणी के कर–कमलों से भूरांजी ने भागवती दीक्षा स्वीकार की। उस दिन कालूगणी ने मेवाड़ के चार भाई बहिनों को दीक्षित किया। कालूयशोविलास में दीक्षा का वर्णन करते हुए आचार्य तुलसी ने लिखा है –

अब गोगुन्दै आषाढ मास सुखमाणी,
गुरु–चरणां चारूं दीक्षा हुई सुहाणी।
धनजी बेमाली, छोगो बोराणा रो,
भूरांजी निजरकुंवारी कन्या हेरो।।

तपस्या के क्षेत्र में प्रवेश

दीक्षित होने के पश्चात ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप की आराधना करती हुई साध्वी भूरांजी अपने जीवन को सार्थक बनाने लगी। उनकी तपस्या में विशेष रुचि थी और जीवन भर तपस्या में अपनी शक्ति का नियोजन कर खूब कर्म निर्जरा की। उन्होंने तपस्या को जीवन का लक्ष्य बना लिया। उनके द्वारा की गई तप साधना विविध आयामी है।

उन्होंने सं. 2008 से एकान्तर तप प्रारंभ किया और 2012 से बेले–बेले तप शुरु कर दिया।

उन्होंने अपने जीवन में पांच बार पंचरंगी की। जिसमें कुल 500 दिन लगे। तपस्या के 355 दिन और पारणा के 125 दिन। एक बार सतरंगी तप किया जिसमें 245 दिन लगे। 196 दिन की तपस्या हुई और 49 पारणे के हुए।

उनके तप तालिका निम्नप्रकार से हैं –

उपवास	–	2129	आठ	–	2
बेला	–	265	नौ	–	1
तेला	–	128	दस	–	1

चोला	–	51	ग्यारह	–	1
पंचोला	–	46	चवदह	–	1
छह	–	10	पन्द्रह	–	1
सात	–	11			

उपरोक्त तपस्या के कुल दिन 3689 हुए। वर्ष महीनों की दृष्टि से – 10 वर्ष 2 महीने 29 दिन होते हैं। द्विशताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में उन्होंने महाभद्रोत्तर तप किया, जिसकी गणना उपरोक्त तालिका में सम्मिलित नहीं की गई।

एक गुणवर्णन गीत में लिखा है कि उन्होंने उपवास से सौलह तक तपस्या की लडी की। इनके अतिरिक्त आछ के आधार पर उन्होंने एक बार बारहमासी तप किया तथा एक एक बार अठाई, तीस और तेतीस किए।

उबाली हुई गर्म छाछ का निथरा हुआ पानी आछ कहलाता है। वि. सं. 2016 बैसाख कृष्णा अष्टमी को बारह मासी तप का पारणा लावासरदारगढ में किया। पारणे के दिन उन्होंने तेरह प्रकार के अभिग्रह किए, जो सब फलित हुए। बारहमासी तप की सम्पन्नता पर आचार्य तुलसी ने साध्वी भूरांजी के आत्मबल और तपोबल की भूरि–भूरि प्रशंसा की और रूग्णावस्था में गर्म आहार लेने तथा विगय वर्जन करने की बक्शीश की।

यद्यपि बारहमासी तपस्या को साध्वी भूरांजी आगे बढाना चाहती थी परन्तु आचार्यश्री ने स्वीकृति नहीं दी, इसलिए उन्होंने पारणा कर लिया। बारहमासी तपस्या के संदर्भ में एक बात विशेष ज्ञातव्य यह है कि उनकी तपस्या के दिन 336 हुए थे। अट्ठाइस दिन का मास माना जाए तो ही बारहमासी कह सकते हैं।

सवर्तोभद्र तप महाभद्रोत्तर तप

आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ धर्मसंघ की स्थापना विक्रम संवत 1817 में की। विक्रम संवत 2017 में आचार्य तुलसी ने तेरापंथ द्विशताब्दी के उपलक्ष्य में विविध आयामी विशाल कार्यक्रम की समायोजना की। आचार्य भिक्षु के चरणों में श्रद्धा–समर्पण के क्रम में अनेक अनेक साधु साध्वियों ने दीर्घ तपस्याएं की। उन तपस्वी साध्वियों में एक नाम साध्वी भूरांजी का था। उन्होंने उस ऐतिहासिक अवसर पर महाभद्रोतर तप की साधना प्रारंभ की। इस तपः साधना को सर्वतोभद्रतप भी कहा जाता है। इस तप में कम से कम पंचोला तप होता है और अधिक से अधिक ग्यारह की तपस्या की जाती है। इस तप की सात लताएं होती है। एक लता में 56 दिन का तप और सात

दिन पारणे के लगते हैं। सात लताओं में 392 दिन अर्थात 1 वर्ष, 2 महीने 21 दिन लगते हैं। तब इस तप की एक परिपाटी पूरी होती है। कुल चार परिपाटी सर्वतोभद्रतप में की जाती है जिसमें 4 वर्ष 10 महीने 24 दिन लगते हैं। महाभद्रोत्तर तप का यंत्र इस प्रकार है –

5	6	7	8	9	10	11
8	9	10	11	5	6	7
11	5	6	7	8	9	10
7	8	9	10	11	5	6
10	11	5	6	7	8	9
6	7	8	9	10	11	5
9	10	11	5	6	7	8

महाभद्रोत्तर तप आछ और जल दोनों में से एक के आगार पर की जा सकती है। साध्वी भूरांजी ने पहली पांच लता जल के आगार से की और दो लता आछ के आगार से की।

कीर्तिमान बनाए

साध्वी भूरांजी ने तपस्या के सन्दर्भ में तेरापंथ धर्मसंघ में कीर्तिमान स्थापित किए। इन्होंने महाभद्रोत्तर तप और बारहमासी तपस्या – दोनों का कीर्तिमान बनाया। इससे पहले तेरापंथ में किसी भी साधु साध्वी ने बारहमासी तप नहीं किया और न ही महाभद्रोत्तर तप किया। ये दोनों तप नवमाचार्य आचार्य तुलसी के युग में हुए। जयाचार्य के युग में वि. सं. 1912 में मुनि अनोपचंदजी ने आछ के आगार पर सवा सात मासी तप किया था। अष्टमाचार्य कालूगणी के युग में साध्वी मुक्खांजी ने वि. सं. 1978 में नौमासी तपस्या (आछ के आगार से) की। उसके बाद साध्वी भूरांजी ने वि. सं. 2017 द्विशताब्दी समारोह के ऐतिहासिक अवसर पर राजसमंद चातुर्मास में आचार्य तुलसी के सान्निध्य में प्रारंभ किया और वि. सं. 1918 आमेट में सम्पन्न किया। उल्लेखनीय है कि साध्वी भूरांजी दीर्घकालीन तपस्या में स्वाध्याय और ध्यान का क्रम व्यवस्थित रखती थी।

अन्तिम समय

सं. 2018 माघ कृष्णा 13 के दिन साध्वी भूरांजी ने अपनी अग्रगण्या साध्वी इन्दूजी मोमासर से कहा – मुझे आचार्य प्रवर को निवेदन करवाना है।

साध्वी इन्दूजी ने पूछा – किस बात के लिए क्या निवेदन करवाना है। किसी वस्तु विशेष अथवा साध्वी की अपेक्षा है?

साध्वी भूरांजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा – नं मुझे किसी पदार्थ विशेष की अपेक्षा है और न साध्वी की। मुझे तो अनशन करना है और यही निवेदन करवाना है।

साध्वी इन्दूजी ने जानना चाहा कि – क्या आप अभी संथारा करना चाहती हैं?

साध्वी भूरांजी बोली – अभी तो नहीं, समय आने पर करूँगी।

साध्वी इन्दूजी ने कहा – आप चिन्ता न करें, मैं अवसर देखूंगी तो आपको संथारा कराने का भाव रखती हूँ। जहां तक संभव होगा अनशन के बिना आपको नहीं जाने दूंगी। इस घटना के लगभग 9 दिन पश्चात माघ शुक्ला 7 की रात्रि के 12 बजे साध्वी इन्दूजी ने अपनी सहगामी साध्वी से कहा साध्वीश्री भूरांजी को संभालो....। साध्वियों ने देखा तब वे मूर्च्छित अवस्था में सोयी हुई थी। उसी समय सूचना मिलते ही आमेट के श्रावक तत्काल वहां पहुंचे। पांच बजे तक उन्हें होश नहीं आया। उसके बाद उनको होश आया, तब साध्वी इन्दूजी ने तीन अंगुली से संकेत की भाषा में पूछा – आपको तिविहार संथारा करा दूँ।

उन्होंने अपना हाथ उठाया और चार अंगुली के संकेत से चौविहार अनशन की भावना व्यक्त की। साध्वी इन्दूजी ने अच्छी तरह से उनकी स्वीकृति लेकर चौविहार अनशन करा दिया। साध्वियां उन्हें आध्यात्मिक गीत आदि सुना रही थी। कुछ समय ही बीता था, वे पुनः बेहोश हो गईं। उसके बाद उन्हें होश नहीं आया। सं. 2018 माघ शुक्ला 11 को प्रातःकाल सवा आठ बजे वे दिवंगत हो गई।

साध्वी इन्दूजी का उसी वर्ष सिंघाडा हुआ था। उन्हें महातपस्विनी साध्वी भूरांजी को अनशन का सहयोग देने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनकी सहगामी सभी साध्वियों ने भी अच्छी सेवा की।

महातपस्विनी साध्वी भूरांजी ने महान तपस्या कर तेरापंथ धर्मसंघ के साधु साध्वियों की शृंखला में तपस्या के क्षेत्र में अपना नाम प्रथम पंक्ति में लिख दिया।

13. साध्वी निजरकंवरजी (वास) (781)

साध्वी निजरकंवरजी का जन्म मेवाड़ प्रदेश के वास नामक गांव में संवत 1958 कार्तिक शुक्ला द्वितीया को हुआ। उनकी जाति पोरवाल और गोत्र तोतावत था। उनके पिता का नाम किस्तूरचंदजी और माता का नाम नोजांजी था। मंत्रीमुनि मगनलालजी उनके संसरपक्षीय मामा थे। एक बार साध्वी केसरजी वास गांव में पधारी, उस समय निजरकंवरजी मात्र ग्यारह वर्ष की थी। साध्वी केसरजी का व्याख्यान सुनकर बालिका नजर के मन में व्याख्यान देने की उत्कट भावना जाग गई। साध्वियों के पास बैठकर उन्होंने तत्त्वज्ञान सीखा और त्याग वैराग्य की बातें सुनकर उनके धार्मिक संस्कार जागृत हो गए। उसके बाद जब कभी साध्वियों का योग मिलता निजरकंवरजी उसका पूरा लाभ उठाती। उसी के फलस्वरूप उनका वैराग्य भाव पुष्ट होता गया। जब उनकी दीक्षा लेने की भावना बलवती बन गई तब उन्होंने अपने अभिभावक जनों के साथ अष्टमाचार्य कालूगणी के दर्शन किए तथा अपनी भावना व्यक्त की।

कालूगणी ने बालिका के वैराग्य का परीक्षण किया। जब कसौटी पर वे खरी लगी तब कालूगणी ने पूछा – तुम दीक्षा क्यों लेना चाहती हो? बालिका निजर ने अपनी वैराग्य भावना प्रस्तुत की और अन्त में बाल सुलभ सहजता के साथ कहा – गुरुदेव! मुझे व्याख्यान देना भी अच्छा लगता है। मैं साध्वी बनकर व्याख्यान दूंगी। मुझे कहानियां भी आती है। जब लोगों को सुनाऊंगी तब वे तहत वाणी, धन्य वाणी आदि सम्मानसूचक शब्द कहेंगे.....। कालूगणी ने बालिका की बात सुनी और मुस्कराने लगे.....। आचार्यवर ने अच्छी तरह से परीक्षण कर उन्हें साधु प्रतिक्रमण सीखने की अनुमति दे दी।

राणाजी को शिकायत : दीक्षा में अवरोध

संवत 1971 में अष्टमाचार्य कालूगणी मेवाड़ पधारे। बालिका निजर ने केलवा में आचार्यवर के दर्शन किए। वहां से अपने गांव जाते समय वे कुछ दिनों के लिए राजनगर में रुकी। वहां किसी दुल्हन की बनौरी निकाली जा रही थी। उस समय की परम्परा थी कि शादी और दीक्षा से पहले महीनों तक बनौरिया निकाली जाती थी। बालिका निजर भी दीक्षा लेने वाली वैरागिन थी, इसलिए उस दुल्हन के साथ उनकी भी बनौरी निकाली गई। छोटी अवस्था में वैरागिन को देखकर किसी विरोधी व्यक्ति ने उदयपुर महाराणा को शिकायत कर दी। महाराणा ने दीक्षा–अवरोध का आदेश दे दिया। उदयपुर के श्रावक अम्बालालजी कावड़िया और हीरालालजी

मुरड़िया को जब यह सारी बात ज्ञात हुई, वे वैरागिन के पिता को साथ लेकर राजदरबार में पहुंचे और महाराणा को दीक्षा सम्बन्धी सारी जानकारी दी और तेरापंथ की सम्पूर्ण दीक्षा विधि प्रस्तुत की। महाराणा ने प्राप्त जानकारी की अपने विश्वस्त व्यक्तियों द्वारा जांच कराई और वस्तुस्थिति ज्ञात की। जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि दीक्षा बहकाकर नहीं दी जा रही है। बल्कि वैराग्य भाव के साथ पूरी कसौटी के बाद दी जा रही है। तब महाराणा ने दीक्षा के लिए अनुमति प्रदान की और अपना आशीर्वाद भेजा।

दीक्षा संस्कार

संवत 1971 आषाढ शुक्ला एकम को बालिका निजर ने मात्र 13 वर्ष की नाबालिग अवस्था में अष्टमाचार्य कालूगणी के कर–कमलों से गोगुन्दा में मुनि दीक्षा स्वीकार की। उस दिन चार दीक्षा हुई – दो भाई और दो बहिनों की। ये चारों ही मेवाड़ के थे। साध्वी निजरकंवरजी उनमें सबसे छोटी थी।

दीक्षा के तत्काल बाद आचार्यप्रवर ने उनकी व्याख्यान देने की भावना की स्मृति कराई और कहा – अरे! तेरी तो व्याख्यान देने की उत्कट इच्छा है, अब व्याख्यान दो। सुनते ही साध्वी निजरकंवरजी घबरा गईं। यद्यपि गुरु–आज्ञा का पालन तो उन्होंने किया पर दो चार शब्द ही बोल पाई।

साध्वी निजरकंवरजी को दीक्षित होने के बाद 4 वर्ष गुरुकुल वास में रहने का अवसर मिला और उसके पश्चात 23 वर्ष तक मातुश्री छोगांजी की सेवा का सौभाग्य मिला। यह 23 वर्ष का कालखण्ड साध्वी निजरकंवरजी के जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहा। मातुश्री छोगांजी की सन्निधि में सेवा के साथ व्यक्तित्व विकास और जीवन निर्माण का उन्हें दुर्लभ अवसर मिला। उन्होंने कुशल साध्वाचार के प्रशिक्षण के साथ अध्ययन की दिशा में अच्छा विकास किया। उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी आदि सात सूत्र कंठस्थ किए और 32 आगमों का मननपूर्वक वाचन किया। रामचरित और मुनिपत आदि कई व्याख्यान तथा कालुकौमुदी, नाममाला सिन्दूरप्रकर आदि भी सीखें।

व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के विविध आयाम

उन्होंने लिपि कला में सतत अभ्यास कर विशेष योग्यता अर्जित की। पांच सूत्र उन्होंने स्वतंत्र रूप से लिखे और तेरह सूत्र साध्वी खूमांजी के साथ लिखे। साध्वी खूमांजी पाठ लिखती और साध्वी निजरकंवरजी उसका अर्थ लिखती।

सिलाई–रंगाई आदि कार्यों में भी वे दक्ष थीं। मातुश्री छोगांजी के पास उन्होंने अपने से रत्नाधिक साध्वियों से साधना, सेवा, कला आदि के गहरे संस्कार प्राप्त किए। अग्रगण्या बनने के पश्चात साध्वी निजरकंवरजी ने अपने पास रहने वाली साध्वियों में सेवा और कला के अच्छे संस्कार दिए। साध्वी सूरजकुमारीजी (जबलपुर) की लिपिकला और रंगाई सिलाई कला में इतनी दक्षता थी कि आचार्यों की ताशक आदि पात्र बनाने का सौभाग्य उनको प्राप्त होता। कलाकार साध्वियों की गणना में उनका विशेष स्थान था। मुखवस्त्रिका के निर्माण में भी उन्होंने अपनी सहगामी साध्वियों को दक्ष बनाया।

साध्वी निजरकंवरजी के व्यक्तित्व में सौम्यता, शालीनता और विनम्रता का अद्‌भुत संगम था। वे अपने से बड़ों के सामने प्रायः हाथ जोड़कर बात करती। जीवन के आठवें दशक में भी जब वे साध्वी खूमांजी लाडनूं के पास बैठती तब ऐसा लगता एक छोटी साध्वी बैठी है। छोटी छोटी साध्वियों को वे बड़ी शालीनता के साथ मृदु भाषा में प्रेरणा देती। उनके चेहरे पर सदैव सौम्यता बनी रहती। वे मितभाषी थी।

अग्रगण्या का दायित्व

मातुश्री छोगांजी के स्वर्गवास के पश्चात आचार्यतुलसी ने सं. 1998 में उनको अग्रगण्या बनाया। उन्होंने देश के विभिन्न भागों में विहरण किया और तेरापंथ धर्मसंघ की अच्छी प्रभावना की। उनकी यात्रा लगभग इकतीस हजार कि. मी. की हुई।

बहिर्विहार में जब कभी उन्हें आचार्यों के सुख संवाद सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता। उस समय वे यदि परिषद में व्याख्यान दे रही होती तो तत्काल पट्ट से नीचे उतरती और समाचार सुनती। वे कम बोलती थीं पर जब गुरु के गुणग्राम करने लगती तो झड़ी–सी लगा देती। उस समय दिल खोलकर गण–गणपति के प्रति श्रद्धा समर्पण व्यक्त करती।

जब साध्वी निजरकंवरजी महाराष्ट्र की धरती पर विचरण कर रही थी। उस समय की घटना है भारत–पाकिस्तान के बीच युद्ध हो रहा था। उस समय रेल व राजमार्गों पर बने पुलों की सुरक्षा के लिए गार्ड तैनात थे। साध्वीजी नागपुर से औरंगाबाद जा रही थी। मार्ग में सड़क का पुल क्षतिग्रस्त था, इसलिए वह मार्ग बन्द था। दूसरी ओर रेल का पुल था, उसको पार करने के लिए नागपुर के जिलाधीश की अनुमति आवश्यक थी। श्रावक समाज के प्रयत्न से अनुमति तो मिल गई, पर लिखित आर्डर गार्ड के पास उस समय तक नहीं पहुंचा था। साध्वियां पुल तक पहुंच गई।

गार्ड जैन साधु साध्वियों से सर्वथा अपरिचित था, इसलिए उसे लगा कहीं विरोधी लोग वेष बदल कर तो नहीं आ गए, उसने बन्दूक उठा ली। साध्वियों ने समझाने का प्रयत्न किया, पर वह भाषा से अनजान कुछ समझ नहीं सका। वह बन्दूक फायर करने ही वाला था। साध्वियां शान्त भाव से 'ऊँ भिक्षु' मन ही मन जप करने लगीं। इतने में एक कर्मचारी आया और उसने जिलाधीश का अनुज्ञा पत्र गार्ड के हाथ में थमा दिया। उसी समय गार्ड का मुखिया भी आ गया। वह जैन साधुओं से परिचित था। साध्वियों को देखते ही उन्होंने श्रद्धानत हो वन्दना की और स्वयं साथ जाकर पुल पार कराया। इस घटना प्रसंग में साध्वी निजरकंवरजी का जो धैर्य और संतुलन बना रहा वह साथ वाली साध्वियों को बांधने वाला था और दर्शकों के लिए भी प्रेरणा देने वाला था।

यद्यपि उन्होंने लम्बी तपस्या कभी नहीं की, पर उनमें खाद्य संयम सहज था, वैराग्य भावना कूट–कूट कर भरी हुई थी। वे दीक्षा लेने के बाद स्वस्थ अवस्था में सदा प्रहर करती। उपवास आदि का पारणा अपवाद था। एक महीने में पांच उपवास करती। प्रतिवर्ष दस प्रत्याख्यान करतीं थीं। उन्होंने अपने जीवन में जो तपस्या की, उसकी तालिका निम्न है –

उपवास	–	2709	पंचोले	–	6
बेले	–	232	छह	–	1
तेले	–	55	अठाई	–	1
चोले	–	21			

सेवाभावना

मातुश्री छोगांजी की सेवा प्राप्त हुई, यह साध्वी निजरकंवरजी के जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। मातुश्री के पास जन्मघूंटी में मिले सेवा के संस्कार उनमें रक्तगत हो गए। जब भी सेवा का अवसर मिलता, वे उत्साह के साथ उसमें प्रवृत्त होती और उसे गुरुकृपा मान अहोभाव से कार्य को सम्पादित करतीं। उन्होंने साठ वर्ष की अवस्था में लाडनूं की चाकरी की और अठहत्तर वर्ष की अवस्था में बीदासर समाधि केन्द्र में सफलता पूर्वक दायित्व निभाया। इसके अतिरिक्त जब भी साध्वियों की सेवा का अवसर मिला, प्रसन्नता से कार्य किया।

एक बार उनकी सहगामी साध्वी सूरजकुमारीजी (जबलपुर) असह्य वेदना से ग्रसित हो गई। तब लगातार तीन वर्ष तक साध्वी निजरकंवरजी को उनकी परिचर्या

के लिए सरदारशहर रहना पड़ा। स्वयं साध्वी निजरकंवरजी ने तथा सभी सहगामी साध्वियों ने उनको शारीरिक तथा मानसिक समाधि दी, वह विशेष उल्लेखनीय है।

संवत 2022 हिसार मर्यादा महोत्सव के पश्चात साध्वी निजरकंवरजी सिरसा जा रही थी। लगभग अढाई मील सिरसा दूर रहा था। राजमार्ग पर साध्वी निजरकंवरजी आगे और साध्वी सूरजकुमारीजी उनके पीछे चल रही थी। राजमार्ग पर अचानक दो टेम्पू आपस में टकरा गए और उनमें से एक का पैट्रोल टैंक फट गया। साध्वी सूरजकुमारीजी कें ऊपर आग के साथ पेट्रोल आकर पड़ा और कपड़ों ने आग पकड ली। वे झुलसने लगी। साध्वी निजरकंवरजी ने स्थिति देखी और तत्क्षण कपड़ों की आग बुझाने का प्रयत्न करने लगी, उसमें उन्हें सफलता भी मिल गई। यद्यपि आग से बचाव करते समय उनके हाथ झुलस गए पर साहसिक प्रयत्न से अनिष्ट होते–होते बच गया। साध्वी सूरजकुमारीजी के उपचार में जो सावधानी और जागरूकता उन्होंने दिखाई उसके कारण वे मात्र पचास दिन में ठीक हो गई। जबकि डॉक्टरों के कथनानुसार यह केस छह महीने से भी अधिक समय लेता।

सेवाओं का मूल्यांकन

आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी निजरकुमारीजी की संघीय सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए समय–समय पर उनको दिए पत्रों में उल्लेख किया तथा पुरस्कृत एवं सम्मानित किया।

1 जनवरी 1984 को नव वर्ष के शुभ अवसर पर आचार्यवर ने संघीय मर्यादानुसार जो विगय वर्जन का विधान है, उससे साध्वी निजरकुमारजी को मुक्त किया। अर्थात विगय वर्जन की बक्सीस की।

वि. सं. 2043 अमृत महोत्सव के पांचवे चरण के मंगल प्रसंग पर आचार्यवर ने साध्वी निजरकंवरजी को "विनय निष्ठा" के रूप में सम्बोधित किया तथा सब प्रकार के काम काज की बारी बक्सीस की।

सम्मान–पत्र

साध्वी निजरकंवरजी!

तुम दीक्षा पर्याय और अवस्था पर्याय दोनों दृष्टियों से हमारे धर्मसंघ की वर्तमान साध्वियों में ज्येष्ठा हो। तुम्हारा विनयपूर्ण व्यवहार और स्फुरणशील जीवन एक उदाहरण है। अमृत महोत्सव के अवसर पर मैं तुम्हें "विनयनिष्ठा" के रूप में

सम्बोधित करता हूँ।

आचार्य तुलसी

जैन विश्व भारती

लाडनूं

आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रदत्त पत्र भी उनके व्यक्तित्व के कद को ऊंचाई देते प्रतीत होते हैं। प्रस्तुत है समय–समय पर दिए गए पत्रों की बानगी।

साध्वी शिष्या निजरकंवरजी (वास)

तुमने अपने जीवन को बहुत सार्थक बनाया है। मातुश्री छोगांजी की उपासना की है। साध्वी खूमांजी से तुमने शिक्षाएं पाई है, आत्मसात की है। संघ संघपति के प्रति प्रगाढ आस्था के गहरे संस्कार है। देखते–देखते तुम वयोवृद्धा हो चली, पर अब भी बालक जैसी तुममें स्फूर्ति है।

मंत्रीमुनि मगनलालजी तुम्हारे ज्ञाति थे। तुम अपने शेष जीवन को अप्रमादबहुल और जागरूकता से बिताओ। स्वाध्याय, ध्यान, सेवा, साधना से अपने संचित कर्मों की निर्जरा करो। सफल संयम जीवन और समाधि की साधना में सतत रमती रहो, यही शुभ कामना।

पार्श्ववर्ती साध्वियों में वैसे ही संस्कार भरती रहो। शेष कुशलम्।

आचार्य तुलसी

लाडनूं (जैन विश्व भारती)

स. 2034 पोष सुदी 2

एक पत्र में आचार्यवर ने उनके व्यक्तित्व की विरल विशेषताओं को उल्लिखित किया है

साध्वी शिष्या निजरकंवरजी!

तुम काफी अरसे से कारणवश सरदारशहर में रुकी हुई हो। पर तुम्हारा वहां रुकना असुहावना नहीं लगता। क्योंकि तुम श्रमशील हो और समझदारी से काम करती हो। अवस्था से पुरानी होती हुई भी आधुनिक ढंग से काम कर रही हो। यह

साध्वी समाज के लिए गौरव की बात है।

अब तो साध्वियों में तुम्हारा पहला नम्बर आ गया है। लगता है मातुश्री छोगांजी और खूमांजी के साथ रहकर तुमने जो पाया, वह चरितार्थ हो रहा है। तुम्हारा जीवन अन्य साध्वियों के लिए अनुकरणीय–सा लगता है। साध्वी सुन्दरजी आदि का सहयोग भी बड़ी शालीनता से रहा।

साध्वी सूरजकुमारीजी सघन बीमारी के साथ जूंझ रही है और आयुष्य बल से ही जी रही है, ऐसा लग रहा है। उसकी संयम निष्ठा, दृढ मनोबल और सहनशीलता अनुकरणीय है। सभी साध्वियां निजरकंवरजी के निर्देशन में रहें। शेष कुशलम्।

आचार्य तुलसी

आमेट

सं. 2039 पोष वदि 3.

ठाही ठोड़ आग्या हो

अमृत महोत्सव का ऐतिहासिक मर्यादा महोत्सव उदयपुर में आयोजित था। साध्वी निजरकंवरजी ने उस महोत्सव पर विशेष प्रसन्नता की अनुभूति की। क्योंकि मेवाड़ उनकी जन्मभूमि और आचार्यवर की अनुशासना के पचासवां वर्ष अमृत महोत्सव का तीसरा चरण वहीं मनाया गया। उनके संसारपक्षीय अधिसंख्य लोगों की कर्मभूमि उदयपुर होने से उन्हें भी अतिरिक्त प्रसन्नता हुई।

मर्यादा महोत्सव के पश्चात आचार्यवर ने मेवाड़ के विभिन्न अंचलों को चरण स्पर्श से पावन किया। राजनगर (बोधिस्थल) में प्रवेश के दिन साध्वी निजरकंवरजी ने आचार्यप्रवर के दर्शन किए। उसी समय आचार्यश्री के मुखारविन्द से सहज शब्द निकले – निजरकंवरजी! 'अब ठाही ठोड़ आग्यो हो''। यद्यपि आचार्यप्रवर के कथन की गंभीरता और लहजे को उस समय न साध्वी निजरकंवरजी समझ सकी और न उनके साथ वाली साध्वियां।

उनका उस वर्ष का चातुर्मास राजनगर पहले से घोषित था। सं. 2043 आसोज कृष्णा ग्यारस को उनके श्वास का प्रकोप हुआ और वे उसी समय दिवंगत हो गई। उस समय साध्वी निजरकंवरजी की सहगामी साध्वियों को समझ में आया आचार्यवर के कथन का रहस्य। साध्वी निजरकंवरजी जिस समय दिवंगत हुई

तेरापंथ साध्वी समाज में अवस्था और संयमपर्याय – दोनों दृष्टि से सबसे ज्येष्ठ थी। उनकी अन्तिम यात्रा में 45 गांवों के चार हजार भाई बहिन सम्मिलित हुए और दिवंगत आत्मा को श्रद्धा समर्पित की। उनकी स्मृति/सम्मान में उस दिन राजसमंद के सभी बाजार बन्द रहे।

परमश्रद्धास्पद आचार्यप्रवर ने उनके सम्बन्ध में अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा – साध्वी निजरकंवरजी विरल विशेषताओं से सम्पन्न थीं। अवस्था प्राप्त होने के बाद भी उनमें स्फूर्ति थी, वे कहीं रुकी नहीं। सतत विहार करती रही। पिछले तीन वर्ष तक सरदारशहर रही, पर स्वयं के लिए नहीं। उनके साथ सूरजकुमारीजी थी वे बीमार हो गई, इसलिए रुकना पड़ा। साध्वी सूरजकुमारीजी भी हमारे धर्मसंघ की एक सेवाभावी और कलाकार साध्वी थी। उनका स्वर्गवास होते ही साध्वी निजरकंवरजी ने वहां से विहार कर दिया।

साध्वी निजरकंवरजी मातुश्री छोगांजी की सेवा में अंत समय तक रही। गत वर्ष उनकी प्रबल इच्छा सेवा में रहने की हुई। हमने आमेट चातुर्मास में उन्हें साथ में रखा। उन्होंने जीभर सेवा की। अमृत महोत्सव के सभी कार्यक्रमों में उन्होंने उत्साह से भाग लिया।

अभी लाडनूं में अमृत महोत्सव के पांचवें चरण पर हमने उनको 'विनय निष्ठा' के सम्बोधन से सम्मानित किया। मंत्रीमुनि मगनलालजी स्वामी की वे भानजी थी। गुरु इंगित की आराधना करने वाली समर्पित साध्वी थी। वे जहां भी गई, बहुत अच्छा काम किया। पढी लिखी अधिक नहीं थी फिर भी व्याख्यान देने का उन्हें पूरा शौक था। बोलती कम थी, काम अधिक करती थी। वे संघ की एक रकम (मूल्यवान वस्तु) थी। अभी जब हम मेवाड़ से इधर आ रहे थे, उस समय साध्वी मधुस्मिता को उनके पास रखा। साध्वी निजरकंवरजी ने अन्त समय तक प्रसन्नता पूर्वक संयम साधना करते हुए पण्डितमरण को प्राप्त किया, यह हमारे लिए भी प्रसन्नता का विषय है। दिवंगत आत्मा के भावी आध्यात्मिक विकास की शुभकामना।

14. साध्वी प्रतापांजी बीदासर (786)

साध्वीप्रतापांजी का जन्म सं. 1951 वैशाख कृष्णा 12. को बीदासर के महनोत परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम जीवनमलजी था। उनका विवाह बीदासर के भानमलजी बांठियां के साथ हुआ। ससुराल का वातावरण धार्मिक था, इसलिए साधु साध्वियों के पास जाना, उपवास आदि करना और प्राथमिक ज्ञान कण्ठस्थ करना उन्होंने बचपन में ही प्रारंभ कर दिया। अठाई की तपस्या भी बहुत छोटी अवस्था में की। प्रतापांजी समझदार, मिलनसार और सहनशील महिला थी, जिससे परिवार में अच्छी शोभा प्राप्त हुई।

वियोग : साधना और दीक्षा

जीवन की दिशा में कब मोड़ आ जाए यह नियति सापेक्ष बात है। प्रतापांजी के दिन हंसी खुशी में बीत रहे थे, अचानक उनके पति की मृत्यु हो गई। उस समय उनकी शादी हुए मात्र चार वर्ष हुए थे। गृहस्थावास में यह एक ऐसा वज्राघात था जो किसी मरहम से भरना असंभव था। साधु साध्वियों के संपर्क से अध्यात्म की ओर झुकाव हुआ वे त्याग तपस्या का जीवन जीने लगी। आठ वर्ष की अवधि में निरन्तर एकान्तर तपस्या की, कर्मचूर तप, धर्मचक्र तप, दस प्रत्याख्यान, अढाई सौ प्रत्याख्यान कर खूब कर्म निर्जरा की। धीरे–धीरे धार्मिक रुचि बढती गई और वैराग्य का मजीठी रंग मन मस्तिष्क पर चढ गया। परम पूज्य कालूगणी का बीदासर में पधारना उनके सौभाग्य का सूचक हुआ। सं. 1973 चैत्र कृष्णा 8 को बीदासर में ही आचार्यश्री कालूगणी के कर–कमलों से संयम स्वीकार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दीक्षा लेने के कुछ दिनों के बाद ही कालूगणी ने उनको साध्वी केसरजी 'तारानगर' के साथ भेज दिया। साध्वी केसरजी के उपपात में रहकर साधु जीवन की आवश्यक चर्या का प्रशिक्षण लिया। ज्ञान के क्षेत्र में विकास किया और अपनी विविध आयामी क्षमता का विकास किया। वे तेतीस वर्ष तक साध्वी केसरजी के साथ रही। सं. 1996 में साध्वी केसरजी दिवंगत होने पर आचार्य तुलसी ने साध्वी प्रतापांजी को अग्रगण्या बना दिया। दो हजार सतरह तक वे राजस्थान के विभिन्न अंचलों में विहरण कर संघीय प्रचार–प्रसार करती रही। सं. 2018 से वे वृद्धावस्था के कारण विहार करने में अक्षम हो गई, इसलिए जसोल और टापरा में स्थिरवास रूप में रही।

सरल मृदु व्यवहार

जिस समय वे स्थिरवासी बनकर रही, आचार्यप्रवर प्रतिवर्ष उनकी सेवा में एक सिंघाड़ा भेजते रहे। वहां आज्ञा धारणा साध्वी प्रतापांजी की रहती और व्यवस्था

पक्ष की सारी जिम्मेदारी आने वाली साध्वियां निभाती। विशेष उल्लेखनीय बात यह थी कि समागत साध्वियों के प्रति मधुर व्यवहार, पारस्परिकता और प्रमोदभावना का साध्वी प्रतापांजी में विशेष गुण था। इसलिए सभी साध्वियां तन मन से उनकी सेवा करती और अपनेपन का अनुभव करती। साध्वी मनोरांजी (मोमासर) लगभग 29 साल तक उनके साथ रही।

उन्होंने उपवास आदि तपस्या की पर बहुत अधिक नहीं। स्वाध्याय में उनकी रुचि बहुत अच्छी थी। उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में लगभग 38 लाख पद्यों का पुनरावर्तन किया।

उन्होंने एक लम्बी अवधि तक संघ से सेवा ली पर जब वे सक्षम थी, तब उन्होंने समय–समय पर अपेक्षा होने पर संघ को सेवाएं दी। एक युग था, जब तेरापंथ धर्मसंघ में साधु साध्वियां हस्तसंचालित वाहन का उपयोग नहीं करते थे, ऐसी स्थिति में बीमार, अक्षम साध्वियों को स्थानान्तरित करने के लिए साधु साध्वियां उन्हें अपने कन्धों पर उठाकर ही ले जाते थे। सचमुच यह बड़ा कठिन कार्य था। मजबूत मनोबल और मजबूत शरीर वाला व्यक्ति ही कई मील तक उठाकर ला सकता है। साध्वी प्रतापांजी ने ऐसी कठिन सेवा दो बार दी। एक बार साध्वी तीजांजी को धुड़ीला गांव से खाटू अठारह मील लेकर आई, दूसरी बार साध्वी परतापांजी सिसोदा को रतनपुरा से ब्यावर 10 मील लेकर लाई। इस कार्य के लिए परमपूज्य कालूगणी ने उनको 9 बारी की बख्शीश कर पुरस्कृत किया।

सं. 2027 ज्येष्ठ शुक्ला 12 को सुबह सवा नो घंटे के तिविहार अनशन में साध्वी प्रतापांजी का जसोल में स्वर्गवास हो गया।

15. साध्वी मूलांजी भीनासर (789)

16. साध्वी चांदकंवरजी भीनासर (790)

जन्म : विवाह

साध्वी मूलांजी का जन्म बीकानेर के खटेड़ परिवार में सं. 1949 पौष कृष्णा 2 को हुआ। उनके पिता का नाम सालमचंदजी था। उनका परिवार मूर्तिपूजक सम्प्रदाय का अनुयायी था, पर मूलांजी का ननिहाल भीनासर के दूगड़ परिवार में था। वे तेरापंथ के अनुयायी थे।

साध्वी चांदकंवरजी का जन्म सं. 1963 माघ कृष्णा अमावस्या को भीनासर में हुआ। उनके पिता का नाम मनसुखदासजी बांठिया तथा मां का नाम लक्ष्मी देवी था। बांठिया परिवार की आस्था स्थानकवासी सम्प्रदाय में थी। चांदकंवरजी का ननिहाल देशनोक के सुराणा परिवार में था, वे भी स्थानकवासी थे। चांदकंवरजी जब दो वर्ष की हुई, उनकी माता लक्ष्मी देवी का स्वर्गवास हो गया। बालिका चांदा का लालन–पालन धाय माता ने किया। उनकी एक बड़ी बहिन भी थी, जिसका नाम सुन्दर था। मनसुखदासजी ने दूसरी शादी मूलांजी के साथ की, तब वे दोनो पुत्रियां – सुन्दर बाई व चान्दा बाई की मां बन गई। शादी को दो वर्ष ही बीते थे कि मनसुखदासजी काल–कवलित हो गए। मूलांजी संसार की नश्वरता देख विस्मित–सी हो गई और उन्हें लगा कल तक रागरंग था, आज बदरंग हो गया। वे धीरे–धीरे वैराग्य भावना से भावित होने लगी। वे अपनी खुली आंखों से संसार का दृश्य देख चुकी थी। अनवरत वियोग और सामाजिक रूढ़ बन्धनों की पीड़ा से व्यथित मूलांजी को धर्म साधना में आत्मिक सुख की शीतलता का अनुभव हुआ। इसी स्थिति में उनके मन में आत्म साधना का संकल्प जागा।

कसौटी पर खरी उतरी

मूलांजी का पीहर और ससुराल दोनों स्थानकवासी सम्प्रदाय में थे इसलिए तेरापंथ धर्मसंघ के साधु साध्वियों से उनका सम्पर्क बहुत कम हुआ। ननिहाल तेरापंथी परिवार में होने से कभी–कभी साधु साध्वियों के पास जाने का मौका मिला, वे उनकी साधना, चर्या और संघीय व्यवस्था से प्रभावित हो गई।

वह युग धार्मिक कट्टरता का युग था, इसलिए पारिवारिक जन वहां जाने पर विरोध प्रकट करते और जहां तक बन सकता प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न करते। मूलांजी के साथ भी सब कुछ वही घटित हुआ, जो उस समय के लोगों की सामान्य मनोवृत्ति थी। परन्तु मूलांजी ने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि – दीक्षा तेरापंथ में लेनी है। इसलिए जब कभी मौका मिलता, वे प्रच्छन्न रूप से गंगाशहर प्रवासी मुनिश्री पृथ्वीराजजी के दर्शन करने पहुंच जाती, जिससे उनके त्याग वैराग्य को सिंचन मिलता रहता। मुनिश्री पृथ्वीराजजी उन्हें तत्त्वज्ञान सीखने की प्रेरणा देते, वे पूरी तन्मयता से सीखने का प्रयास करती। उधर ससुराल में रहकर स्थानकवासी साधु–साध्वियों के पास जाने, सीखने में पूरी जागरूकता रखती। कुल मिलाकर व्यवहार निभाने में उन्होंने किंचित भी लापरवाही नही बरती, प्रत्युत अत्यन्त जागरूक बन सामाजिक और धार्मिक कर्त्तव्य का पालन करने लगी।

मूलांजी का त्याग वैराग्य देखकर, साधु–साध्वियों से बार–बार प्रेरणा प्राप्त कर चान्दाजी के मन में साध्वी बनने का स्वप्न जगा। यद्यपि उनकी अवस्था छोटी थी, पर संयम की भावना दृढ़ से दृढ़तर बनने लगी। लगता है, पूर्वजन्म के सुसंस्कारों के कारण ही खाने पीने खेलने कूदने की अवस्था में वैराग्य का रंग चढ़ने लगा। वे अपनी मां के साथ साधु साध्वियों के पास जाती और जब भी मौका मिलता, मुनिश्री पृथ्वीराजजी की उपासना में चली जाती। दोनो साधुत्व की प्राथमिक भूमिका का अभ्यास कर स्वयं को तोलने लगी। जब दोनों को यह आत्मविश्वास हो गया कि हम साधुजीवन का पालन अच्छी तरह से कर सकते है तब एक दिन दोनों ने मिलकर यह भी तय कर लिया कि – दीक्षा लेंगे और तेरापंथ में लेंगे।

जब नियति शुभ होती है तो निमित्त भी अपने आप शुभ मिल जाते हैं। चान्दांजी का मन था कि एक बार कालूगणी के दर्शन कर लें, पर परिवार वालों से आशा करना उन्हें बेकार लगा। फिर भी एक दिन उन्होंने अपने भाई बहादुरमलजी से आग्रह किया कि वे उनको दर्शन करा दे। योग की बात थी कि वे मूलांजी और चांदाजी को साथ लेकर लाडनूं गए। दोनों ने दर्शन कर अपना परिचय दिया और दीक्षा की प्रार्थना की। आचार्यश्री कालूगणी बांठिया

परिवार की धार्मिक कट्टरता से परिचित थ। आपने स्पष्ट शब्दों में कहा – हमारी तो मनाही नहीं है, परन्तु तुम्हारे परिवार वाले कट्टर स्थानकवासी है, अतः आज्ञा मिलनी मुश्किल है। मां–बेटी दृढ़ स्वर में बोली – मुश्किल है, पर हम आज्ञा लेकर ही रहेंगी। उस दिन वे मंगल पाठ सुन भीनासर आ गईं।

मां बेटी ने परस्पर सोच विचार कर एक दिन अभिभावकों के समक्ष अपनी भावना रखते हुए तेरापंथ में दीक्षा लेने का निश्चय सुना दिया। उस दिन घर में वैचारिक भूकंप–सा आ गया और सभी उत्तेजित हो आक्रामक बन गए। उन्होंने स्पष्ट रूप से दीक्षा देने से इन्कार कर दिया। कुछ दिनों तक घर का वातावरण गर्मागर्म बना रहा और वाद विवाद की उग्रता ने उसे और गर्म बना दिया। दूसरी ओर मां बेटी–दोनों ने तीव्र प्रयत्न प्रारंभ कर दिए। पारिवारिक जनों ने कभी कड़ाई एवं कठोर शब्दों का उपयोग कर उन्हें विचलित करने का प्रयास किया तो कभी प्रलोभन देकर फिसलन भरी भूमिका दिखाई। कभी तेरापंथ के प्रति भ्रान्तियों से भरी बाते कर उन्हें बरगलाने का प्रयास किया। आखिर उन्हें लगा ये दोनों बहिनें अपने निश्चय पर दृढ़ है, फिर भी वे अपने आग्रह पर अड़े रहे।

ऐसी स्थिति में तेरापंथ के वरिष्ट श्रावक गणेशदासजी गधैया (सरदारशहर) ताराचंदजी पुगलिया (श्रीडूंगरगढ़) हीरालालजी आंचलिया (गंगाशहर) आदि ने चान्दाजी के भाई बहादुरमलजी को बार–बार समझाने का प्रयास किया। तब उन्होंने बड़ी मुश्किल से दीक्षा की मौखिक स्वीकृति दी। जब उन्हें तेरापंथ के विधि–विधान की जानकारी देते हुए बताया गया – लिखित आज्ञा–पत्र जब तक आचार्यश्री के हाथ में नहीं आता, दीक्षा नहीं दी जाती। बहादुरमलजी और फतेहचंदजी (जो उनके भ्राता थे) ने आज्ञा पत्र लिखा, पर उसमें लिख दिया – काकीजी को दीक्षा की आज्ञा है, बाई चान्दकंवर को नहीं। आज्ञा पत्र लिख दिया पर काम नहीं बना। आखिर तीनों श्रावकों ने कहा – इसमें एक को आज्ञा दी है, दूसरी बहन को नहीं, इसलिए समुचित नहीं है। ऐसी स्थिति में दोनों को लिखित स्वीकृति देते हुए कहा – हम आज्ञा देते हैं, पर दीक्षा हम कहें, वहां देनी होगी।

जब अष्टमाचार्य कालूगणी के कर–कमलों में आज्ञा–पत्र समर्पित किया,

आपने यह कहते हुए लौटा दिया कि – पांच प्रमुख व्यक्तियों की साक्षी सहित हस्ताक्षर जब तक नहीं होंगे, दीक्षा नहीं दी जाएगी। अन्तिम बार गांव के पांच प्रमुख व्यक्तियों के हस्ताक्षर सहित आज्ञा–पत्र श्रीचरणों में उपहृत किया, तब आचार्यवर ने महती कृपाकर गंगाशहर में मुनिश्री पृथ्वीराजजी को गंगाशहर में दीक्षा देने की आज्ञा प्रदान की। उनके परिवार जनों की इच्छा थी, कि दीक्षा भीनासर में दी जाए।

मुनिश्री पृथ्वीराजजी ने सं. 2074 आश्विन शुक्ला आठम को भीनासर पधारकर मल्लीनाथजी के मंदिर में मूलांजी एवं चांदकंवरजी को दीक्षा प्रदान की। उस समय मुनि श्री पृथ्वीराजजी के अलावा मुनिश्री पूनमचंदजी "जसोल" तथा साध्वीश्री गंगाजी भी वहां उपस्थित थे। मुनिश्री का भीनासर में तथा साध्वी जी का बीकानेर चातुर्मास था। साध्वी गंगाजी ने दोनों नवदीक्षित साध्वियों का केशलोच किया। साध्वी मूलांजी की अवस्था 25 वर्ष तथा साध्वी चान्दकंवरजी की अवस्था दस वर्ष की थी। दोनो साध्वियों को दीक्षित होने के पश्चात साध्वी गंगाजी के पास बीकानेर रहने का अवसर मिला। साध्वी गंगाजी ने साधु जीवनोचित आचार विचार का कुशल प्रशिक्षण दिया।

गुरुसन्निधि में

चातुर्मास की सम्पन्नता के पश्चात साध्वी गंगाजी जब पूज्य कालूगणी की पावन सन्निधि में पहुंची। उन्होंने दोनों नवदीक्षित साध्वियों को गुरु–चरणों में समर्पित किया। गुरुदेव ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए दोनों साध्वियों को गुरुकुल वास में रखा और शिक्षा, आचार–व्यवहार में विकास करने का अवसर दिया। छोटी उम्र, बुद्धि की निर्मलता, गुरुकुलवास और गुरु की प्रेरणा व कृपा दृष्टि से साध्वी चांदाजी को ज्ञानार्जन का सर्वतोमुखी सुयोग मिल गया। उन्होंने भी श्रमपूर्वक अध्ययन और कण्ठस्थ ज्ञान में अपने आपको समर्पित कर दिया। उसका सुपरिणाम यह हुआ कि उन्होंने हजारों–हजारों गाथाएं कंठस्थ कर ली।

दशवैकालिक उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प और निशीथ सूत्र कंठस्थ किया। पच्चीस बोल, पाना की चर्चा, तेरहद्वार, पच्चीस बोल की चर्चा, हित शिक्षा के पच्चीस बोल, लघुदण्डक, बावनबोल, इक्कीस द्वार, इकतीस द्वार, कर्मप्रकृति संजया, गम्मा, बड़ी लड़िया आदि थोकड़े याद किए। संस्कृत के ग्रन्थों में

सारस्वत वृत्ति, चन्द्रिका की वृत्ति, शत सुधारस, सिंदूरप्रकर और भक्तामर याद किये। अनेक व्याख्यान और गीत आदि अच्छी संख्या में याद किए। अध्ययन के साथ आगम वाचन का क्रम भी चलता रहा। उन्होंने सम्पूर्ण बत्तीसी का वाचन कर अपने आपको कृतकृत्य बनाया।

कला के क्षेत्र में उनका अच्छा विकास था। लिपिकला सीखकर उन्होंने अनेक आगम और व्याख्यान लिपिबद्ध किए। सिलाई और रंगाई के कामों में वे अत्यन्त कुशल थी। मसा, नासूर, आदि के ऑपरेशन करने में भी उन्होंने दक्षता हासिल की। साध्वी चान्दकंवरजी ने ज्ञान एवं कला विकास के साथ साध्वाचार, विनय–विवेक, श्रद्धा–समर्पण, संघनिष्ठा, गुरुनिष्ठा और आज्ञा मर्यादा की सम्यक् आराधना करने वाली साध्वी के रूप में अपनी पहचान बनाई।

साध्वी चान्दकंवरजी को लगातार दस वर्ष गुरुकुलवास में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। साध्वी मूलांजी कई वर्ष तक मातुश्री की सेवा में बीदासर रही। सं. 1984 में आचार्यश्री कालूगणी ने साध्वी चान्दकंवरजी को अग्रगामी बनाया। उस समय उनकी अवस्था मात्र बीस वर्ष की थी। उनका प्रथम चातुर्मास उनकी ही जन्मभूमि भीनासर में कराया। सं. 1988 में उनकी बड़ी बहिन सुन्दरजी ने भी संयम पथ स्वीकार कर लिया। उनकी संसारपक्षीया मां साध्वी मूलांजी और बहिन साध्वी सुन्दरजी आचार्यश्री की आज्ञा से उनके साथ विहार करती हुई आत्म–कल्याण के साथ लोककल्याण में अपनी शक्ति का अच्छा उपयोग करतीं। साध्वी मूलांजी ने 48 वर्ष साधुत्व का पालन किया। सं. 2022 कार्तिक शुक्ला सातम को अनशन कर वे दिवंगत हो गई। उन्होंने अपने जोवन में निम्न प्रकार से तपस्या की –

उपवास	–	2056	पंचोला	–	16
बेला	–	81	छह	–	3
तेला	–	15	सात	–	1
चोला	–	26	आठ	–	2

साध्वी चान्दकंवरजी ने अपनी संयम यात्रा के साथ 1259 उपवास, 35 बेले, 7 तेले, 3 चोले और एक अठाई की। यद्यपि उन्होंने तपस्या अधिक नहीं की, पर स्वाध्याय ध्यान मौन और जप से वे अपने आपको निरन्तर भावित

रखती। वे स्वयं अप्रमत्त संयम साधना करतीं और साथ में रहने वाली सहयोगिनी साध्वियों को अप्रमत्त रहने की प्रेरणा देतीं। अंतिम वर्षों में वे प्रतिदिन हजारों पद्यों का स्वाध्याय कर लेती।

जीवन के अन्तिम वर्षों में वे वृद्धावस्था और शारीरिक अस्वस्थता के कारण विहार करने में अक्षम हो गईं तब उन्होंने तीन वर्ष नोखा मंडी में प्रवास किया। अन्तिम समय में शरीर में अत्यधिक वेदना रहती, पर उन्होंने उसे समभाव से सहन किया। वे दवा का विशेष उपयोग नहीं करती थी। आखिर सं. 2029 माघ शुक्ला तीज को 3 दिन के अनशन में उनका स्वर्गवास हो गया।

17. साध्वीश्री नोजांजी (सरदारशहर) (791)

साध्वीश्री नोजांजी का जन्म सं. 1950 कार्तिक शुक्ला द्वितीया को श्रीडूंगरगढ के समीपवर्ती गांव बींजासर में हुआ। उनके पिता का नाम रुघलालजी भूरा भंसाली और मां का नाम जसूजी था। नोजांजी के एक भाई और दो बहिनें थी। सभी का सुखमय वातावरण में लालन–पालन हो रहा था, अचानक परिवार पर वज्राघात हुआ। एक दर्दनाक दुर्घटना में रुघलालजी का देहांत हो गया। जसूजी के जीवन में चारों ओर विपत्तियों के बादल मंडराने लगे। जसूदेवी ने धैर्य, साहस और समझदारी का आलम्बन लिया। सर्वप्रथम उन्होंने बींजासर छोड़ने का निर्णय लिया और अपने बच्चों को लेकर पीहर चली गई। नोजांजी का ननिहाल पुनरासर गांव के बोथरा के यहां था। यद्यपि उस समय बोथरा परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, फिर भी नाना–नानी ने प्यार दुलार के साथ बच्चों को बड़ा किया।

जब नोजांजी बारह वर्ष की हुई तब उनका विवाह तोलियासर निवासी भीखमचंदजी बाफना के साथ हुआ। कुछ वर्ष तोलियासर में रहने के पश्चात बाफना परिवार सरदारशहर आकर बस गया। उनके श्वसुर चुन्नीलालजी भरे–पूरे परिवार के साथ सरदारशहर आए पर कुछ ही समय पश्चात उन्हें भी विपदाओं ने घेर लिया। सबसे पहले उनके पुत्र भीखमचंदजी का लड़का बहुत छोटी अवस्था में चल बसा। नोजांजी पुत्र विरह की व्यथा को भूल भी नहीं पाई थी कि उन पर पति वियोग का पहाड़ टूट पड़ा। भीखमचंदजी के अकस्मात निधन से पूरा परिवार टूट–सा गया, पर नियति के आगे सब बेबस हो गए। सभी ने कृत कर्मों का फल समझ विषम स्थितियों को धैर्य से सहन किया। पति वियोग की गंभीर चोट ने नोजांजी को अन्दर तक हिला दिया। वे एक मात्र देव, गुरु और धर्म की शरण में अपने आपको समर्पित करना चाहती थी। पर वे न तो साधु–साध्वियों से परिचित थी और न ही धार्मिक दृष्टि से कुछ जानती थी। ऐसी परिस्थिति में उन्हें एक ऐसे व्यक्ति की अपेक्षा थी, जो उनका मार्गदर्शन कर सके।

जहां चाह वहां राह

नोजांजी के जीवन की अंधियारी में दीपशिखा बनकर आई श्रीचन्दजी गधैया की धर्मपत्नी। वे साध्वियों की उपासना में बैठी थी। एक युवा बहिन को विधवावस्था में देखकर उनके मन में जिज्ञासा उभर आई और बातचीत की। दोनों के बीच साधार्मिक भावना दृढ हुई और श्रीमती गधैया स्वयं उन्हें प्राथमिक तत्त्वज्ञान सिखाने लगी। वे दोनों मिलकर चितारणा भी करती। एक दिन नोजांजी ने उनके सामने

अपनी वैराग्य भावना रखी। उन्होंने साधु जीवन की कठोरता, संघीय अनुशासन और परीषहजनित कष्टों को समझाया और कहा – मुनि जीवन सर्वोत्तम है पर वैराग्य भावना और आत्म कल्याण की गहरी तड़प हो तो.....। कुछ समय अपने आपको समझने परखने में लगा। वे अपने आपको तोलती रही। प्रारंभिक तत्त्वज्ञान के साथ उन्होंने तपः साधना प्रारंभ की। उन्होंने गृहस्थावस्था में उपवास से पन्द्रह तक की तपस्या की लड़ी की और एक बार 21 दिन की तपस्या की।

अष्टमाचार्यश्री कालूगणी ने सं. 1974 का चातुर्मास सरदारशहर में किया। आचार्यवर की उपासना और प्रवचन श्रवण से उनकी वैराग्य भावना पुष्ट हो गई। उनका मन जल्दी से जल्दी दीक्षा लेने को उतावला हो गया। उन्होंने सरदारशहर के सुप्रसिद्ध तथा जिम्मेदार श्रावक श्रीचंदजी की धर्मपत्नी से कहा – आप मेरी दीक्षा में सहयोगी बनो। मेरे घर में दीक्षा के विषय में कोई कुछ नहीं जानता। आप गधैयाजी से कहें – वे आचार्यवर के चरणों में मुझे दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना करें। श्रीमती गधैया उनसे परिचित थी, इसलिए अवसर देखकर गधैयाजी को आचार्यवर से निवदेन करने के लिए कहा। गधैयाजी ने कहा – मैं न तो उस बहिन को जानता हूँ और न उस परिवार को, फिर जिम्मेदारी कैसे लूं? भविष्य में आचार्यों से उपालम्भ मिल जाए तो? सेठाणी ने कहा – मेरी जिम्मेदारी है आप निवेदन कर दें। इनके परिवार में कोई कुछ नहीं करने वाला है। आपको दलाली मिल रही है लाभ उठाओ। गधैयाजी के प्रयत्न से कुछ समय में ही नोजांजी की भावना सफल हो गई। करुणानिधि कालूगणी ने बहिन नोजांजी की जांचपरख कर साधु–प्रतिक्रमण सीखने का तथा कुछ दिन पश्चात दीक्षा का आदेश दे दिया।

नोजांजी ने चौबीस वर्ष की अवस्था में साध्वी मालूजी और लिछमांजी के साथ सं. 1974 कार्त्तिक शुक्ला 5 को अष्टमाचार्य कालूगणी के कर–कमलों से सदारशहर में दीक्षा ली। उस दिन दीक्षित होने वाली तीनों बहनें सरदारशहर की थी।

दीक्षा होने के बाद आचार्यवर मोमासर पधारे। वहां साध्वी चांदाजी (बीदासर) स्थिरवासी थी। उनके साथ साध्वी नोजांजी को भेजा। साध्वी चांदाजी सहज, सरल, भद्र प्रकृति की साध्वी थी।

एक बार गर्मी के मौसम में कालूगणीराज मोमासर पधार रहे थे। जिस दिन मोमासर पहुंचना था विहार लम्बा था। धोरों का विषम मार्ग था। बालू रेत आग की तरह तपने लगी। गर्मी इतनी भयंकर थी कि प्यास के कारण सबके हाल बेहाल हो गए।

साध्वी चान्दाजी मौसम के कड़े मिजाज के कारण चिंतित सी बैठी थी। तभी उनकी सहगामी साध्वी ज्ञानांजी ने कहा – चिन्ता करने से क्या होगा। आप कहो तो मैं दो कोस सामने चली जाऊं। साध्वी चान्दांजी इतनी भीरु थी कि आचार्यश्री का उपालम्भ मिल गया तो.....। साध्वी ज्ञानांजी दाठीक प्रकृति की थी। उन्होंने कहा – उपालम्भ या शाबासी जो मिलेगी मैं झेल लूंगी। मैं जा रही हूँ। उन्होंने एक मटकी भर पानी सिर पर रखा और एक झोली खाद्य सामग्री की हाथ में लेकर चल पड़ी। साथ वाली साध्वी को दो तुम्बे में पानी भरकर दे दिया। लगभग दो कोस जाकर साध्वी ज्ञानांजी ने पानी और गोचरी की झोली रख दी। एक दो भाई वहीं खड़े हो गए। ज्योहीं वहां कालूगणीराज पधारे, भाइयों ने निवेदन किया – अन्नदाता! साध्वियां यहां पानी के पात्र और गोचरी की झोली रखकर गई है। ये शब्द सुनते ही आचार्यवर के आसपास खड़े संतों (जो प्यास से व्याकुल हो रहे थे) के चेहरे खिल गए। आचार्यश्री ने सन्तों पर करुणा की और स्वयं वहां विराजे। सभी सन्तों से कहा – सभी आराम से पानी पी लो। सतियां तुम्हारे लिए दो कोस तक इतना भार उठा लाई है। सचमुच सतियों ने इस भयंकर गर्मी में बहुत निर्जरा कर हमें त्राण–सा दिया है।

आचार्यश्री ने मोमासर पहुंचकर साध्वी चान्दाजी को सम्बोधित कर कहा – आज तो साध्वियों को पानी आदि लेकर भेजकर कई सन्तों के प्राण बचा लिए। साध्वी चांदाजी ने निवेदन किया – भंते! मैं तो डर रही थी, मेरे से तो कुछ नहीं होता, यह तो साध्वी ज्ञानांजी की सूझबूझ और हिम्मत थी।''

साध्वी नोजांजी को साध्वी चान्दांजी के पास केवल एक महीना रहने का मौका मिला। एक महीने के बाद उनका (सा. चान्दांजी) स्वर्गवास हो गया। पूज्य कालूगणी ने साध्वी चान्दाजी के पीछे उनकी सहगामी साध्वी गुलाबांजी (सरदारशहर) को अग्रगामी बनाया और साध्वी नोजांजी को उनके साथ भेज दिया। साध्वी गुलाबांजी अनुशासन प्रिय और कड़े मिजाज की साध्वी थी।

साध्वी नोजांजी की मां जस्सू देवी को जब ज्ञात हुआ कि साध्वी नोजांजी की अग्रगामी साध्वी गुलाबांजी का अनुशासन कड़ा है। वे समय मिलते ही साध्वी नोजांजी के दर्शन करने पहुंची और अपने मन की भावना रखते हुए कहा – देखो! आचार्यवर ने जिस साध्वीजी के साथ भेजा है, आपका दायित्व है उनके प्रति श्रद्धाभाव से समर्पित रहो। मैंने सुना है साध्वी गुलाबांजी का अनुशासन कड़क है पर आप यदि उनको सहन करना नहीं सीख पाई तो सब कुछ बेकार है। यदि आप भविष्य में

सिंघाड़ा बदलेंगी तो मैं पहले बतां देती हूँ कि मैं जिन्दगीभर आपका मुंह नहीं देखूंगी।

साध्वी नोजांजी ने मां की सीख को उसी क्षण आत्मसात कर जीवन भर याद रखा। वे साध्वी गुलाबांजी के साथ बावीस साल तक जमकर रही, कभी भी तहत् के सिवाय एक शब्द भी सामने नहीं बोली। यद्यपि साध्वी गुलाबांजी का आदेश–निर्देश कड़े शब्दों में होते थे, पर वे अनुशासन में रहने का पूरा–पूरा प्रयत्न करती। उनके पास रहकर साध्वी नोजांजी ने ज्ञानार्जन के साथ साधु जीवन के आवश्यक कार्य सीखें। सेवाभावना के साथ ज्ञानार्जन की दिशा में भी उन्होंने अच्छा पुरुषार्थ किया। उन्होंने लगभग पच्चीस थोकडे कंठस्थ किए और लगभग चौबीस रामचरित आदि व्याख्यान सीखें। इनके अतिरिक्त चौबीसी, आराधना, शील की नौ बाड़, परीषह आदि भी उन्होंने याद किए। ज्ञान को कंठस्थ करने में उनकी रुचि थी और अन्त समय तक वे कुछ न कुछ याद करती रहती थी।

महातपस्विनी

साध्वी नोजांजी की तपस्या में नैसर्गिक रुचि थी। उसे अधिक बल मिला उनकी अग्रगामी साध्वी गुलाबांजी से। वे बहुत तपस्या करतीं और तपस्या में भी उनका मनोबल बहुत ऊंचा रहता। वे तपस्या में भी व्याख्यान आदि सहजता से सम्पादित करती। अन्त समय में उन्होंने लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप की पहली परिपाटी को प्रारंभ किया। पहली परिपाटी लगभग सम्पन्नता पर थी, मात्र एक तेला, दो बेला और दो उपवास शेष थे। वे अचानक दिवंगत हो गई। आचार्य तुलसी ने उनके स्वर्गगमन पर एक पद्य के माध्यम से प्रस्तुति दी –

गुलाबां गुलजार, पहली पाटी परवरी।
उत्तरतां उद्यम भार, चोलां में चलता रह्या।।

साध्वी गुलाबांजी के दिवंगत होने के पश्चात सं. 1996 में आचार्य तुलसी ने साध्वी नोजांजी को अग्रगामी पद पर नियुक्त किया। उन्होंने लगभग 43 वर्ष तक अग्रगण्य रूप में विहरण कर आत्मकल्याण के साथ लोक कल्याण में अपनी शक्ति का नियोजन किया। उनका विहरण प्रायः राजस्थान में ही हुआ। उनकी मानसिकता छोटे गांवों में रहने की अधिक रहती। एक बार जोधपुर निवासी मुकनचंदजी भंडारी की धर्मपत्नी ने आचार्यवर से निवेदन किया – गुरुदेव! साध्वी नोजांजी का मेरे पर बहुत उपकार है, उन्होंने मुझे बचपन में प्रतिक्रमण आदि सिखाया तथा धार्मिक संस्कार दिए। इसलिए मैं चाहती हूँ कि उनका एक चातुर्मास जोधपुर में कराएं।

आचार्यप्रवर ने साध्वी नोजांजी से कहा – जोधुपर चातुर्मास करने की इच्छा है क्या? मुकनचंदजी भंडारी की धर्मपत्नी अर्ज कर रही है। साध्वी नोजांजी ने सहजता से कहा – गुरुदेव! मुझे तो शहर की अपेक्षा गांवों में रहना ही अच्छा लगता है। अतः आप मुझे तो गांवों में ही रखाने की कृपा करें।

सेवा भावना

संयम–साधना के साथ साथ सेवा, समर्पण और सहनशीलता के संस्कार जिनमें गहरे होते हैं वे अपने जीवन में सहज सफलता प्राप्त करते हैं। साध्वी नोजांजी के जीवन में यह त्रिवेणी सतत प्रवाहित रही। बीमार और वृद्ध के प्रति उनके मन में सहज संवेदनशीलता थी। जब भी अवसर आता वे अग्लान भाव से रूग्ण साध्वियों की सेवा करतीं और शारीरिक सफाई करते समय उनके मन में कभी घृणा के भाव नहीं आते। उन्होंने ऐसे अवसरों को विपुल कर्म निर्जरा का साधन माना। साध्वी मनोहरांजी (श्रीडूंगरगढ़) की कैंसर की बीमारी में, साध्वी इन्द्रूंजी की भयंकर रूग्णावस्था में, केसरजी (राजलदेसर) की गठिया रोग में, साध्वी छोटांजी के मसे की शिकायत होने पर उन्होंने तन–मन से सेवा की और संघ की प्रभावना में योगदान दिया।

श्रद्धा का परिणाम

साध्वी नोजांजी के खून की बून्द–बून्द में गुरु के प्रति अटूट आस्था थी। सं. 1931 की बात है। आचार्यश्री चैत्र महीने में सुजानगढ पधारे। साध्वी नोजांजी गुरुदर्शन की प्रसन्नता को तपस्या कर महत्त्वपूर्ण बनाना चाहती थी। उस दिन उनके बेला (दो दिन का उपवास) था। उन्होंने गुरुदेव के मुखारविन्द से नौ की तपस्या का संकल्प कर लिया। मध्याह्न में वे आचार्यवर की उपासना कर रही थी। अचानक उनके मन में आया–आचार्यश्री के हाथ से ग्रास ले लूं पर दूसरे ही क्षण तपस्या की स्मृति उभर आई। कुछ क्षण ही बीते थे कि आचार्यवर ने उनको सम्बोधित कर कहा – लो नोजांजी! पानी पी लो। आचार्यवर ने पानी पिया उसमें जो बचा वह साध्वी नोजांजी को दे दिया। उन्हें लगा जैसे आचार्यवर अन्तर्यामी हैं। एक क्षण पहले मन में आई भावना को आचार्यवर ने दूसरे क्षण साकार कर दिया। उस दिन जो अमृतमय जल पिया उससे उनकी तपस्या में बड़ी साता रही। वे जब भी तपस्या करतीं, तब उनके मुंह से पानी–गिरता था। उस तपस्या में मुह से पानी गिरना बन्द हो गया। यह है उनकी आस्था का चमत्कार।

सं. 1932 फाल्गुन शुक्ला तृतीया के दिन उनके मन में तीव्र भावना बनी कि – आज मैं आचार्यवर के हाथ से ग्रास लेकर तपस्या प्रारंभ करूं। संयोग ऐसा बना

कि साध्वी नोजांजी किसी भाई के कहने पर उनके घर गोचरी गईं। वापिस आते समय आचार्यवर के दर्शनकर दूसरे दिन से तपस्या करने की भावना व्यक्त की और विनम्रतापूर्वक निवेदन किया – गुरुदेव! कृपाकर आपके कर–कमलों से कवल (ग्रास) दिराएं। तपस्विनी की दृढ भावना देखकर आचार्यवर ने घी और खीचड़ा एक पात्र में अपने हाथ से डालकर उनको दे दिया। साध्वीजी का रोम–रोम प्रफुल्लित हो गया। उन्होंने आचार्यवर के मुखारविन्द से पांच की तपस्या का संकल्प किया। उन्होंने निवेदन किया – आपके करकमलों से आज मुझे अनुपम शक्ति प्रदान करने वाला ग्रास मिला है इसलिए लम्बी तपस्या का भाव है। साध्वीजी आस्था का आलम्बन लेकर आगे बढती गई और पच्चीस दिन की तपस्या सानन्द सम्पन्न की। पच्चीस दिन की तपस्या के पारणे की पूर्व रात्रि में उन्होंने तीन हजार गाथाओं की स्वाध्याय की।

सहनशीलता

वे शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से सहनशील थीं। प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने आपको सकारात्मक बनाना उनका सहज स्वभाव था। शारीरिक कष्टों को वे समभाव के साथ कर्मनिर्जरा के उद्देश्य से सहन करतीं। एक बार साध्वी संवेगश्रीजी उनके नाखून काट रही थी। वे नवदीक्षिता थी, नाखून काटने का काम पड़ा नहीं था, इसलिए इतने गहरे नाखून काट दिए कि पांचों अंगुलियों से खून बहने लगा। साध्वी नोजांजी मूर्ति बनी–सी सहन करती रही, मुंह से उफ तक नहीं निकला।

दीर्घतपस्विनी

साध्वी नोजांजी को महातपस्विनी कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। उन्होंने संयम की आराधना के साथ प्रखर तपः साधना की। आंतरिक वैराग्य वृत्ति के बल से जो तपस्याएं की वे वर्तमान युग के लोगों के लिए आश्चर्य से कम नहीं है। उन्होंने उपवास से लेकर सैंतीस दिन तक क्रमबद्ध तप किया। एक कर्मचूरतप, एक बार तीर्थंकर लड़ी तप, 15 बार दस प्रत्याख्यान और चन्दनबाला के 24 तेले किए। उन्होंने अपने पूरे जीवन में 7199 दिन का तप किया। तपस्या का विस्तृत वर्णन निम्न चार्ट

में देखें –

उपवास	–	5039	बीस	–	1
बेला	–	261	इक्कीस	–	1
तेला	–	74	बाईस	–	1
चोला	–	52	तेईस	–	1
पंचोला	–	54	चौबीस	–	1
छह	–	4	पच्चीस	–	1
सात	–	3	छब्बीस	–	1
आठ	–	6	सत्ताइस	–	2
नौ	–	4	अठाइस	–	1
दस	–	1	उनतीस	–	2
ग्यारह	–	1	तीस	–	1
बारह	–	1	इकतीस	–	1
तेरह	–	1	बत्तीस	–	2
चौदह	–	1	तेतीस	–	1
पन्द्रह	–	1	चौंतीस	–	1
सोलह	–	1	पेंतीस	–	1
सतरह	–	1	छत्तीस	–	1
अठारह	–	1	सेंतीस	–	1
उन्नीस	–	1			

सं. 2031 में उन्होंने उनतीस (29) दिन की तपस्या की। उसके बाद उनके पेट में गैस बनने लगी, जिससे जब भी वे तपस्या करतीं पारणे में उनके कुछ न कुछ गड़बड़ हो जाती। सं. 2037 में उन्होंने बत्तीस दिन का तप किया। उसके पारणे के बाद दस्त में केंचुएं निकलने लगे। लगभग अढाई साल में दोसौ से अधिक केंचुए निकले। फिर भी उन्होंने तपस्या–क्रम को व्यवस्थित बनाए रखा और अविच्छिन्न रूप में तप साधना चलती रही। उनके तीन विगय का जीवन पर्यंत त्याग था। वे महीने में सात दिन पांच विगय वर्जन करतीं और भोजन के समय सदा मौन रखतीं।

सम्बोधन दीर्घतपस्विनी का

आचार्यश्री तुलसी ने सं. 2031 कार्तिक शुक्ला द्वितीया को दिल्ली में

समायोजित षष्ठीपूर्ति समारोह के अवसर पर संघ की तीन तपस्विनी साध्वियों को 'दीर्घतपस्विनी' सम्बोधन से सम्बोधित किया। वे तीन साध्वियां थी –

साध्वी अणचांजी (श्रीडूंगरगढ)

" नोजांजी (सरदारशहर)

" पन्नांजी (देरासर)

सम्बोधन – पत्र

हमारे धर्मसंघ में अनेक साधु साध्वियां समय–समय पर हुए हैं, तथा वर्तमान में भी हैं, जिन्होंने अपने विशिष्ट कार्यों से शासन की शोभा बढाई है। उनमें से एक साध्वी नोजांजी का आज मैं "दीर्घतपस्विनी" के रूप में स्मरण करता हूँ।

आचार्य तुलसी

दिल्ली, अणुव्रत भवन

12 दिसम्बर 1974

दिल्ली चातुर्मास सानन्द सम्पन्न कर आचार्यवर सुजानगढ पधारे और वहां स्थिरवासिनी साध्वी नोजांजी को दर्शन दिए। उस समय आचार्यश्री ने कहा – "आज मैं साध्वी नोजांजी को 'दीर्घतपस्विनी" के रूप में देखता हूँ। ये केवल लम्बी तपस्या करती है इसलिए ही नहीं, निरन्तर तपस्या करती है इसलिए भी नहीं, किन्तु इनमें ऋजुता है, समता है, वात्सल्य की भावना है। ये हमारे धर्मसंघ की पुरानी साध्वी है, ज्यादा पढी लिखी नहीं है, बहुश्रुत भी नहीं है पर सरलता, सहजता, सहिष्णुता के गुण इन्हें नैसर्गिक रूप में मिले हैं। मैंने इनको दीर्घ तपस्विनी के रूप में सम्मानित किया। उस समय ये साक्षात सदेह हमारे सामने नहीं थी। आज हमारे सामने उपस्थित है इसलिए मैं पुनः सम्बोधित करता हूँ – दीर्घतपस्विनी साध्वी नोजांजी।

स्वप्न जो साकार बना

साध्वी नोजांजी को एक रात स्वप्न आया कि – "सुजानगढ में आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में बहुत बड़ी सभा जुड़ी हुई है और वे स्वयं उस सभा में करबद्ध खड़ी है। सुजानगढ के श्रावक मर्यादामहोत्सव की प्रार्थना कर रहे हैं"

उन्होंने उठते ही स्वप्न की बात साध्वियों से कही। उस समय तक सुजानगढ में महोत्सव का कोई वातावरण नहीं था। अचानक संघीय कार्यक्रमों के सन्दर्भ में कुछ नया चिन्तन हुआ और वह मर्यादा महोत्सव सुजानगढ में हुआ। यद्यपि सहज संयोग ही माना जाए तो भी यह कहा जा सकता है – भगवान ने भक्त के स्वप्न को साकार कर दिया।

सहज समर्पण

जीवन में कभी कभी ऐसे क्षण आते हैं जो व्यक्ति की कसौटी बन जाते हैं पर उसमें खरा उतरने वाला व्यक्ति सफलता के एक पायदान पर ऊपर चढ़ जाता है। आचार्यवर ने नवदीक्षित साध्वी संवेगश्रीजी को सं. 2031 में साध्वी नोजांजी के साथ भेजा। आचार्यवर की इस अयाचित कृपा से साध्वीजी का चित्त प्रसन्न हुआ। छह वर्ष के बाद आवश्यकतावश आचार्यश्री ने साध्वी संवेगश्रीजी को पुनः बुला लिया और साध्वी सुमनश्री के साथ उन्हें भेज दिया। उस समय साध्वी नोजांजी ने उदारता और समर्पण भाव का परिचय दिया और कहा – धणी/मालिक कृपा कराई मनै कोई चिन्ता नहीं। संवेगश्रीजी रहता तो ठीक, नहीं तो धणी ही सेवा करासी। आपरो माल है चावो जिंयां काम में लिरावो।" आचार्यश्री ने एक साल बाद में पुनः साध्वी संवेगश्रीजी को उन्हीं के साथ भेजा और साध्वीप्रमुखाकनकप्रभाजी ने उनकी उदार भावना का समादर करते हुए पत्र में लिखा – परमाराध्य गुरुदेव ने साध्वी संवेगश्रीजी को पुनः आपकी सेवा में भेजा है। गतवर्ष जब उन्हें साध्वी सुमनश्रीजी के साथ भेजा गया तब आपने संघ सेवा का नमूना पेश किया था। आप वृद्ध हैं, अस्वस्थ हैं, इस दृष्टि से उन्हें पुनः भेजा जा रहा है। साध्वी संवेगश्रीजी साध्वी सुमनश्रीजी के पास बहुत अच्छी तरह से रही और उन्होंने साध्वी सुरेखाजी की मनोयोग से सेवा की। उनके इन संस्कारों में आपकी प्रेरणा ने ही काम किया है। तपस्विनी साध्वी नोजांजी को समय–समय पर आचार्यवर की कृपा का प्रसाद मिलता रहा। जब–जब उन्हें आचार्यवर, युवाचार्यश्रीमहाप्रज्ञ और साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी के सन्देश उपलब्ध होते वे हर्ष विभोर बन जाती। उन्हें पढ़कर उनका रोम–रोम आनन्द के साथ नई ऊर्जा का अनुभव करता। पत्र और सन्देशों को पढ़ने से गुरुकृपा के साथ उनके व्यक्तित्व की ऊंचाई का सहज आभास होता है।

शिष्या नोजांजी! आदि स्यूं सुखपृच्छा। सुणवां में आवै है क थांरो शरीर बहुत कमजोर हुग्यो। आ अवस्था आ तपस्या फिर कमजोरी नै कांई दोष। पर थांरी मानसिक समाधि बढती चढती रेवै आ म्हारी भावना है। चित्त समाधि राखीज्यो,

सुखसाता स्यूं रहीज्यो। तपस्वी साधु सत्यां म्हारै गण–समुदाय री नींव है। शेष सभी सत्यां बडेरां की सेवा करो और जीवन को लावो लूटो।

दिनांक : 29.12.81

सरदारशहर

आचार्य तुलसी

श्रद्धेय युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने उनको दिए सन्देश में जो लिखा है – वह उनकी गुणात्मकता को अभिव्यक्ति देने वाला है।

तपस्विनी साध्वीवरा नोजांजी!

अन्य सभी साध्वियों से सुखपृच्छा। तुम्हारी ऋजुता ने तपस्या को अधिक गौरवमय बनाया है। जप और ध्यान से अधिक निर्मलता बढे, यही मेरी मंगल भावना है।

समाधि निरन्तर बढती जाए। तपस्या द्वारा शासन की सेवा करें और जय निर्वाण शताब्दी को तपस्या द्वारा यशस्वी बनाए।

सं. 2037 फाल्गुन शुक्ला 2

गांधी विद्यामंदिर

युवाचार्य महाप्रज्ञ

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने समय–समय पर दिए हुए पत्रों में उनकी तपस्या व साधना के प्रति अहोभाव प्रकट किए। उसका एक उदाहरण निम्नलिखित पत्र है।

आदरणीय साध्वीश्री नोजांजी (सरदारशहर)

वन्दन व सुखपृच्छा।

तेरापंथ धर्मसंघ में परमाराध्य आचार्यप्रवर द्वारा 'दीर्घतपस्विनी'' सम्बोधन से सम्बोधित साध्वीश्री नोजांजी साध्वी–समाज का गौरव है। आपने अपनी गुरुभक्ति, ऋजुता, अप्रमत्तता और तपस्या के योग से अध्यात्म की ऊंचाई पर चढना प्रारंभ किया है। स्वाध्याय में आपकी स्वाभाविक रुचि है ही, इन वर्षों में तपस्या के क्षेत्र में

नया कीर्तिमान स्थापित कर आप उत्कृष्ट मनोबल का परिचय दे रही हैं।

आचार्यप्रवर के निर्देशन में हमारे धर्मसंघ में साधना के नए–नए आयाम खुल रहे हैं। साधना का प्राण है – समता। क्षण–क्षण समता धर्म की साधना हो, पल–पल समत्व में रमण हो, इस दृष्टि से सतत जागरूक रहना है। आपकी तपःसाधना के प्रति बार–बार शुभाशंसा।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

सुजानगढ में स्थिरवास

जीवन के आठवें दशक में साध्वी नोजांजी वृद्धावस्था के कारण विहार करने में असमर्थ हो गई। तब आचार्यश्री तुलसी ने उनको सुजानगढ में स्थिरवासी बना दिया। मुनिश्री नथमलजी बागोरी वहां पहले से स्थिरवास कर रहे थे। सुजानगढवासियों के लिए शासन स्तम्भ मुनि नथमलजी बागोरी तथा दीर्घतपस्विनी साध्वीश्री नोजांजी का सान्निध्य 'स्वर्णसुरभि'' जैसा अनुपम था। साध्वी नोजांजी का लगभग 12 वर्ष तक सुजानगढ में प्रवास रहा। इस अवधि में उन्होंने तपस्या के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित कर दिया। उनकी तपस्या, स्वाध्यायशीलता तथा सहज सरलता का स्थानीय श्रावक–श्राविकाओं पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

वि. सं. 2039 माघ कृष्णा 3 को एक घड़ी के सागारी अनशन में दीर्घतपस्विनी की जीवन यात्रा सम्पन्न हो गई। उस समय उनकी अवस्था लगभग 80 वर्ष की थी। शुद्ध और शुभ भावों में 65 साल तक संयम साधना कर आराधक पद प्राप्त कर वे कृतार्थ हो गई।

परमाराध्य आचार्यप्रवर ने उनके सम्बन्ध में अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा – साध्वी नोजांजी दृढ तपस्विनी साध्वी थी। उनकी प्रकृति शान्त और ऋजु थी। उनकी सहज शान्त वृत्ति का लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। इधर में काफी वर्षों से वे सुजानगढ में स्थिरवासिनी थी। वहां शासनस्तम्भ मुनि नथमलजी स्थिरवासी हैं। नोजांजी का स्वास्थ्य इधर में कमजोर हो गया था। उन्होंने अपनी संयम यात्रा सानन्द सम्पन्न की।

18. साध्वी लिछमांजी (सरदारशहर) (793)

साध्वी लिछमांजी सरदारशहर के दूगड़ परिवार की बेटी और वहीं के बरड़िया परिवार की पुत्रवधु थी। उनका जन्म सं. 1956 आश्विन शुक्ला 14 को सरदारशहर में हुआ। उनके पिता का नाम नेमीचंदजी था और पति का नाम हणुतमलजी था। उनका विवाह बहुत छोटी अवस्था में कर दिया गया और शादी के छह महीने बाद ही उनके पति का अचानक देहान्त हो गया। बालिका का बालमन न तो विवाह का हार्द समझ पाया और न मौत का मातम। एक नाटक की तरह सब कुछ घटित हो गया। लिछमांजी स्वयं उस समय धर्म–कर्म, साधुत्व, वैराग्य कुछ भी नहीं समझती थी। उनके माता पिता की विवेक सम्पन्नता ने धीरे–धीरे संस्कार भरे। सरदारशहर में प्रवास करने वाले साधु–साध्वियों के सम्पर्क से धर्म के प्रति अनुराग जागृत हुआ और स्थानीय अनुभवी श्राविकाओं ने उनको त्याग तपस्या की प्रेरणा दी। एक बार उनके अभिभावकों ने उनको सरदारशहर निवासी श्रीमती हुलासीदेवी आंचलिया के साथ पूज्य कालूगणी की सेवा में भेजा, उस समय उनको लगभग दस महीनें लगातार सेवा में रहने का अवसर मिला। गुरु का पावन सान्निध्य, निरन्तर व्याख्यान का अमृतपान और साधु–साध्वियों की समय पर दी गई प्रेरणा, लिछमांजी के जीवन में नया सबेरा ले आई। मन में वैराग्य भावना पैदा हुई और साध्वी बनने का संकल्प दृढ बन गया। सं. 1974 में आचार्यप्रवर का सरदारशहर चातुर्मास था। कार्तिक शुक्ला 5 को दीक्षा महोत्सव हुआ। उसमें दीर्घतपस्विनी साध्वी नोजांजी, साध्वी मालूजी और साध्वी लिछमांजी को आचार्यवर ने दीक्षा प्रदान की।

अग्रगामी का दायित्व

साध्वी लिछमांजी को साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी के चरणों में बैठकर दो वर्ष साध्वोचित आचार, व्यवहार एवं ज्ञानार्जन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके पश्चात आचार्यवर ने पड़िहारा में स्थिरवासी साध्वी जड़ावांजी के पास उनको भेजा। उन्होंने समर्पण भाव से साध्वी जड़ावांजी की सेवा की और उनसे संघीय संस्कार, व्याख्यानकला, उपकरणों की सिलाई–रंगाई कला आदि सीखकर अपनी योग्यता को विकसित किया। साध्वी जड़ावांजी का सं. 2000 में स्वर्गवास हुआ। तब आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी लिछमांजी को अग्रगण्य बनाया।

सं. 2002 में उनका चौमासा जावद में था। वहां हैजा फैल गया। हैजे से एक–एक घर में तीन–चार व्यक्तियों की मौत हो गई। चारों ओर दहशत फैलने से लोग गांव छोड़कर बाहर जाने लगे। उस समय जावद में तेरापंथी परिवार बहुत कम

थे। चातुर्मास भी श्रावक के घर में किया करते थे। साध्वी लिछमांजी ने जिस घर में चातुर्मास किया, उस घर के बेटी–जंवाई को हैजा हुआ पर देव गुरु धर्म के प्रताप से स्वस्थ हो गए। दूसरी बात तेरापंथी परिवारों में हैजे के कारण उस वर्ष क्षति नहीं हुई, जिससे संघीय आस्था सुदृढ बन गई। साध्वियों की संयम साधना, तपस्या और जप के प्रति लोग सहज भाव से आश्वस्त बन गए।

संघनिष्ठ साध्वी

उनके रोम रोम में संघ–संघपति के प्रति गहरी आस्था थी। गुरु के मुखारविंद से निकले एक–एक वचन का पालन करने की कोशिश करती थी। एक बार आचार्यवर ने उनका चातुर्मास दौलतगढ फरमाया। चोखला परसने की दृष्टि से 27 गांव दिए और साथ में यह भी फरमा दिया कि जा सको तो सभी गांवों को संभाल लेना। साथ वाली साध्वियों के स्वास्थ्य की अनुकूलता कम थी पर उन्होंने जब सारे गांव परस लिए तभी आत्म तोष की अनुभूति हुई। उनका अपना विश्वास था गुरु–वचन की अनुपालना ही सफलता एवं सिद्धि का द्वार है।

अग्रगामी अवस्था में उन्होंने लगभग ग्यारह हजार मील की पदयात्रा की। संघ की प्रभावना, श्रावक–श्राविकाओं की आस्था प्रगाढ बनाने में अच्छा योगदान दिया। समय की उपज भी अच्छी थी। साध्वी लिछमांजी पहुना गांव के आसपास विहरण कर रही थी। उस दिन उनका प्रवास जाडाणा गांव में था। वहां पटेल परिवार बहुत रहते थे पर तेरापंथी साधु–साध्वियों के सम्पर्क में कम आते थे। उस गांव की एक गली में साध्वी लिछमांजी ने देखा – एक कुत्ता छटपटा रहा है। वे वहीं खड़ी हो गई और उसे नमस्कार महामंत्र सुनाने लगी, मंगल पाठ सुनाया और गंभीर अवस्था देखकर उसे संथारा करा दिया। तभी वहां के लोगों ने बताया – महाराज! यह तीन दिन से भयंकर तकलीफ में है। इसकी वेदना देखी नहीं जा रही है। साध्वीजी द्वारा नमस्कार महामंत्र सुनाते–सुनाते ही वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। उस समय वहां पटेल लोग खड़े थे। उन्होंने जानवर के कल्याण की भावना देखी और उसी समय प्रभावित हो गए। अब वे साध्वियों के पास आए। अपनी भावना प्रस्तुत की। साध्वियों ने अणुव्रत के नियम बताए और अच्छा जीवन जीने की प्रेरणा दी। उस प्रवास में 150 भाई अणुव्रती बने।

सं. 2016 में उनका चातुर्मास मेवाड़ के आसाहोली गांव में था। उस चातुर्मास में अचानक उनके एक आंख की ज्योति चली गई और दूसरी आंख में मोतियाबिन्द आ गया। आचार्यश्री तुलसी कलकत्ता यात्रा सम्पन्नकर थली में पधार रहे थे, पर

मर्यादा महोत्सव पर साधु–साध्वियों को न बुलाकर बाद में बीदासर आने का आदेश दिया। साध्वी लिछमांजी की आंख का उपचार कराना आवश्यक था, इसलिए वे रतनगढ चली गई। आचार्य प्रवर सरदारशहर पधारे तब आसपास के साधु साध्वियों को भी दर्शन का आदेश हो गया। यद्यपि उन दिनों उनका स्वास्थ्य कम ठीक था। पर लम्बी प्रतीक्षा के बाद गुरुदर्शन का मौका मिल रहा था, इसलिए शरीर की परवाह न कर उन्होंने रतनगढ से विहार कर दिया। दूसरी मंजिल पर श्वास का प्रकोप भयंकर रूप से बढ गया। जैसे–तैसे रास्ता पार कर सरदारशहर में गुरुदर्शन कर धन्यता का अनुभव किया और साध्वियां पुस्तक पन्ने गुरु चरणों में समर्पित कर हल्की बन गई। दूसरी ओर आचार्यश्री से उन्होंने यह अनुज्ञा और व्यवस्था भी प्राप्त कर ली कि साध्वी रतनकंवरजी (राजगढ) रतनगढ में उनका ऑपरेशन कर देंगी। आचार्यवर का सरदारशहर से विहार हो गया। साध्वी लिछमांजी ने भी वहां से विहार कर दिया। विहार में रेतीले धोरों के आते ही श्वास भारी हो गया। उन्होंने रास्ते में विश्राम लेते–लेते कठिनाई से रास्ता पार किया। दूसरे दिन उदासर में शरीर की स्थिति और अधिक बिगड़ गई। लगभग नौ दिन वहीं छोटे–से गांव में रुकना पड़ा। नौवें दिन की रात्रि में पांच मिनिट के संथारे में वहीं समाधिमरण को प्राप्त हो गई। सं. 2016 फाल्गुन शुक्ला चौथ को उदासर गांव में साध्वी लिछमांजी का स्वर्गवास हुआ।

19. साध्वी इन्द्रूजी (गडबोर) (795)

साध्वी इन्द्रूजी मेवाड़ के गडबोर गांव के निवासी मेघराजजी चौरड़िया की पुत्री थी। इन्द्रूजी का जन्म सं. 1957 चैत्र कृष्णा पांचम को मजेरा में हुआ। उनका ननिहाल मजेरा गांव में था। उनका बचपन भी अधिकतर वहीं बीता। जब वे मात्र तीन साल की थी, तभी उनकी सगाई रिछेड़ निवासी चुन्नीलालजी कोठारी के साथ कर दी। जब वे सोलह वर्ष की हुई तब वे ननिहाल से अपने घर गडबोर आई। वहां उस समय साध्वी लाडांजी (लाडनूं) प्रवास कर रही थी। बालिका इन्द्रू को साध्वियों की सेवा/दर्शन का अवसर मिला तथा व्याख्यान श्रवण के साथ–साथ वे तत्त्वबोध देने वाले थोकड़े कंठस्थ करने लगी। साध्वियों की त्याग वैराग्यमयी जीवन शैली ने उनको प्रभावित किया। उनके मन में वैराग्य भाव अंकुरित होने लगा। साध्वियों के उपपात में बैठकर साधुचर्या की जानकारी की, स्वयं को साधुत्व की कसौटी पर जांचा, परखा। उन्हें यह आत्मविश्वास हो गया कि मैं साधु जीवन के परीषहों को झेलने में सक्षम हूँ। तब उन्होंने अपने माता–पिता के सामने दीक्षा लेने की भावना रखी।

कड़ी कसौटी के क्षण

दीक्षा की भावना सुनते ही उनके पिताजी के तेवर तीखे हो गए। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया – "अब मुझे तो शादी करनी है। उसके बाद तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसे करना। पर अभी कुछ नहीं हो सकता।" परिवार के अन्य लोग भी दीक्षा के विरोध में खड़े हो गए। चारों ओर वातावरण की प्रतिकूलता देख बालिका इन्द्रू के मन में सोया साहस जाग गया। उसने अपने पिता के सामने अपना संकल्प प्रस्तुत करते हुए कहा – मेरे मन में वैराग्य भाव है, मैं संसार छोड़ साध्वी बनना चाहती हूँ। आप मुझे गुरुदेव आचार्यश्री कालूगणी के दर्शन करा दीजिए। बालिका ने अनुभव किया कि मेरी बात को माता पिता से लेकर परिवार के सभी सदस्य गंभीरता से नहीं ले रहे हैं, तब संकल्प व्यक्त करते हुए कहा – जब तक आप दर्शन नहीं कराएंगे मैं तीन द्रव्य – मक्की की रोटी, छाछ और पानी के सिवाय कुछ नहीं खाऊंगी। फिर भी पिताजी का दिल नहीं पिघला बल्कि वे अधिक कड़ी भाषा में बोले – यदि तू मर जाएगी तो जला दूंगा पर दर्शन नहीं कराऊंगा।

बालिका इन्द्रू मौन हो गई और अपने संकल्प का पूर्ण जागरूकता के साथ पालन करने लगी। घर में जितना अवकाश मिलता अपना समय धर्मध्यान में व्यतीत करती। आखिर पुत्री की दृढता के सामने पिता को झुकना पड़ा और सहर्ष दीक्षा की स्वीकृति दे दी।

बालिका इन्द्रूजी ने अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के दर्शन कर अपनी भावना रखी। आचार्यवर ने अच्छी तरह से जांच परखकर वि. सं. 1975 श्रावण शुक्ला द्वादशी को राजलदेसर में बालिका इन्द्रू को जैन भागवती दीक्षा प्रदान की। उस समय उनकी अवस्था सतरह वर्ष से कुछ अधिक थी। आचार्य तुलसी ने कालूयशोविलास में साध्वी इन्द्रूजी की दीक्षा का वर्णन करते हुए लिखा है –

सावण सुद बारस दीक्षा इन्द्रूजी की।
गढबोर निवासी वेरागण अति तीखी।।

कला का विकास

दीक्षित होते ही साध्वी इन्द्रूजी को साध्वीप्रमुखा जेठांजी की सन्निधि में रहने का सौभाग्य मिला। वे सात वर्ष तक साध्वीप्रमुखा की सेवा में रहीं और साध्वी हुलासांजी (सरदारशहर) के संरक्षण में रही। दीक्षा से पहले उन्हें अक्षर ज्ञान तक नहीं था, पर साध्वी हुलासांजी ने उन पर परिश्रम किया। बार–बार पढाने का क्रम जारी रखा। धीरे–धीरे वे पुस्तक पढने लगी और कंठस्थ ज्ञान की दिशा में निरन्तर पुरुषार्थ करती रही। साध्वीप्रमुखाजी के स्वर्गस्थ होने के पश्चात पूज्य आचार्यवर ने उन्हें साध्वी हुलासांजी के ग्रुप में रखा। वे 43 साल तक उनके साथ रही और ज्ञान–दर्शन–चारित्र की आराधना करती हुई निरन्तर आगे बढी। उन्होंने अपने जीवन में ज्ञान के साथ–साथ कला का अच्छा विकास किया। उन्होंने लगभग 14 थोकड़े रामचरित्र आदि बारह व्याख्यान तथा चौबीसी आराधना, औपदेशिक गीत आदि कंठस्थ किए। एक मात्र जीवाभिगम को छोड़कर 31 आगम का वाचन किया। रजोहरण प्रमार्जन के निर्माण में, सिलाई और रंग–रोगन करने में उन्होंने कुशलता प्राप्त की।

सं. 1983 में आचार्यश्री कालूगणी का चातुर्मास गंगाशहर में हुआ। उस समय साध्वी हुलासांजी का चौमासा बीकानेर में था। उस चार मास की अवधि में अकेली साध्वी इन्द्रूजी ने गुरुचरणों में भेंट करने के लिए विशेष श्रम किया। उन्होंने 31 टोपसी, 25 हरे रंग की पाटी, 13 कामी, 15 पुट्ठे तथा 7 लेखनघर बनाकर गुरुचरणों में उपहृत किए।

उनकी जीवनशैली सुव्यवस्थित थी। उनका स्वभाव सरल और व्यवहार सामंजस्यपूर्ण था। इसलिए जहां भी रही समाधिमय जीवन जिया। साध्वी हुलासांजी के दिवंगत होने के बाद सं. 2024 में आचार्य श्री तुलसी ने उनकी सहगामी साध्वी

कमलूजी को अग्रगामी बनाया। तब से सं. 2042 तक यानि 18 वर्ष साध्वी इन्द्रूंजी उनके साथ रहीं। जब वे वृद्धावस्था के कारण विहार करने में अक्षम हो गई तब वे लाड़नूं सेवा केन्द्र में स्थिरवासी बन गई।

ऐतिहासिक वर्ष में ऐतिहासिक अनशन

उन्होंने लम्बी तपस्या कभी नहीं की पर उपवास, बेला, तेला आदि वे प्रायः करती रहती। उन्होंने अपने जीवन में 5228 दिन की तपःसाधना की। उन्होंने अपने जीवन में जो तपस्या की, उसकी तालिका निम्न है –

उपवास	–	4351	पांच	–	1
बेला	–	211	छह	–	1
तेला	–	22	सात	–	1
चोला	–	47	आठ	–	1

सं. 2045 माघ शुक्ला दसमी को आचार्य तुलसी अपने जीवन के 75वें वर्ष को योगक्षेम वर्ष के रूप में मनाने के लिए लाडनूं पधारे। उस वर्ष जैन विश्व भारती, लाडनूं में सैकड़ों साधु–साध्वियां एक वर्षीय प्रवास करने के लिए पहुंच चुके थे। एक आध्यात्मिक–वैज्ञानिक प्रशिक्षण महायज्ञ के शुभारंभ काल में साध्वी इन्द्रूजी ने संलेखन तप प्रारंभ किया। उस समय उन्हें शारीरिक दृष्टि से कमजोरी महसूस हो रही थी। इसलिए उन्होंने गंभीरता से चिन्तन कर संलेखना का मानस बनाया। उन्होंने सं. 2045 फाल्गुन शुक्ला दशमी से संलेखना तप प्रारंभ किया। उत्तरोत्तर उनकी तपस्या में रुचि बढती गई। सं. 2045 चैत्र कृष्णा 11 तप के अठारहवें दिन उन्होंने आचार्यवर के मुखारविंद से आजीवन तिविहार संथारा स्वीकार कर लिया।

उस समय धर्मसंघ में वे दीक्षापर्याय और उम्र दोनों दृष्टियों से साध्वी समाज में सबसे बड़ी थी। संथारे में ध्यान, कायोत्सर्ग और जप आदि व्यवस्थित क्रम चलता। संथारे से पहले उन्होंने अपने जीवन में 31 (इकतीस) आगमों का वाचन किया था। अनशन में साध्वियों ने एक अविशिष्ट आगम जीवाभिगम का स्वाध्याय करवाकर आगम बत्तीसी का स्वाध्याय करा दिया। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी प्रायः प्रतिदिन जैनविश्वभारती से लाडनूं सेवाकेन्द्र में जाकर उन्हें दर्शन देती। आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री का भी समय–समय पर सेवाकेन्द्र में पदार्पण होता रहा।

उनकी समर्पण भावना और आस्था भाव इतना सघन था कि उन्हें अप्रत्यक्ष भी प्रत्यक्ष जैसा बनने लगा। जब भी उन्हें आचार्यवर के दर्शनों के लिए कहा जाता,

वे कहती–मेरे भीतरी तार गुरुचरणों के साथ जुडे हैं अतः दिन–रात बराबर दर्शन होते रहते हैं।

साध्वी इन्द्रूजी बड़ी भाग्यशाली थी। जीवन की अंतिम घड़ियों में उन्हें जैसा योग मिला, वह उनके सौभाग्य में चारचांद लगाने जैसा था। योगक्षेम वर्ष, आचार्यश्री, युवाचार्यश्री एवं महाश्रमणी का सान्निध्य, सैकडों साधु–साध्वियों का प्रत्यक्ष सहयोग और हजारों–हजारों श्रावक–श्राविकाओं की उपस्थिति – ये सब किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त हो सकते हैं।

स्वर्गस्थ होने के बाद तो आचार्यवर ने अनेक साधु–साध्वियों के लिए दोहे, छन्द और गीत आदि बनाए, किन्तु पूर्ण जागरूकता और सचेतन अवस्था में व्यक्ति की उपस्थिति में अनेक बार दोहे, गीत आदि बनाकर सुनाने का संयोग साध्वी इन्द्रूजी को मिला। आचार्यवर के मुखारविन्द से समुच्चारित पद्य, गीत और आप श्री द्वारा अनशन काल में प्रदत्त सन्देश पढकर अतिरिक्त आह्लाद की अनुभूति होती है।

प्रथम सन्देश

जब से उनके मन में संथारा करने की भावना पैदा हुई, उन्होंने साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी से अनशन के लिए निवेदन करने को कहा। उस समय आचार्यप्रवर ने साध्वी इन्द्रूजी की भावना का समादर करते हुए लिखित सन्देश दिया। साध्वीप्रमुखाजी दूसरे दिन जब सेवाकेन्द्र में पधारी, उन्हें पढकर सुनाया –

साध्वी इन्द्रूजी (गड़बोर) इस समय हमारे साध्वी संघ में प्रथम नम्बर की साध्वी है। वर्तमान में उनके संलेखना चल रही है। योगक्षेम वर्ष में तुम्हारी संलेखना बहुत शुभ है। अंतिम संलेखना वही कर सकता है जिसे आहार के प्रति अरुचि हो गई हो और जो मौत के प्रति अभय बन गया हो। तुम इस स्थिति में चल रही हो तो यह बहुत ऊंची बात है।

समाधिमरण या पंडितमरण – यह आज के संसार में एक उदाहरण है। इस क्रम में तुम आगे बढती रहो। तुम्हारी भावना ऐसी ही बनी रही तो, हम तुम्हें अनशन के बिना नहीं जाने देंगे। बस समता, सहनशीलता और निर्मलता से प्रतिक्षण अपने आपको भावित रखो। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा हमारे ये विचार संबल रूप में प्राप्तकर तुम्हारे पास पहुंच रही है, इससे तुम्हें शान्ति और समाधि प्राप्त होगी।

लाडनूं जैन विश्व भारती

सं. 2045 चैत्र बदि 8

आचार्य तुलसी

साध्वी इन्द्रूजी ने संलेखन तप के 18 वें दिन अर्थात चैत्र कृष्णा ग्यारस तदनुसार 2 अप्रेल 1989 को आचार्यवर के मुखारविंद से आजीवन अनशन स्वीकार किया। संथारे के 11वें दिन आचार्यश्री ने उनको पुनः एक लिखित सन्देश दिया –

साधक के जीवन की परम कसौटी है – अनशन। यह जीवन की आकांक्षा और मृत्यु के भय से उपरति की स्थिति है। जैन शासन में समाधि मृत्यु को मूल्य प्राप्त है। ऐसी मृत्यु का मूल्यांकन करते हुए कहा गया है –

तपस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च।
पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्यु समाधिना।।

किस व्यक्ति ने कितना तप तपा है, कितने व्रतों का पालन किया है और कितने शास्त्रों का अध्ययन किया है? इस सम्पूर्ण समीक्षा के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि तपस्या, व्रतपालन और शास्त्राध्ययन का फल है – समाधिपूर्वक मृत्यु।

साध्वी इन्द्रूजी (गडबोर) संलेखनापूर्वक अनशन की प्रक्रिया से गुजर रही है। वर्तमान साध्वियों में अवस्था और दीक्षा – दोनों दृष्टियों से प्रथम स्थान पर है। इसका मनोबल कितना मजबूत है कल्पना करना कठिन है। पूर्ण सावचेत अवस्था और प्रवर्धमान उत्साह के साथ अनशन स्वीकार कर इसने योगक्षेम वर्ष को अधिक विशिष्ट बना दिया है। मेरे जीवन का यह प्रथम प्रसंग है जब मैं स्वयं अपनी ओर से चलाकर किसी को अनशन कराने गया।

साध्वी इन्द्रूजी के समर्पण भाव और देहाभ्यास की मुक्ति ने ही मुझे इसके लिए प्रेरित किया। साध्वीजी का अनशन अन्य लोगों को भी अध्यात्म के पथ पर आगे बढने की प्रेरणा दे रहा है, ऐसी प्रतीति हो रही है।

लाडनूं जैनविश्वभारती

वि. स. 2046, चैत्र सुदि 7

आचार्य तुलसी

संलेखना –

साध्वी इन्द्रूजी के संथारे के 31 वें दिन आचार्यवर ने उनके लिए दो दोहे

बनाकर उनको सुनाए। वे इस प्रकार हैं –

1. आज दिन इकतीसवों, संलेखन संथार।
   इन्द्रूजी आछी करी, पहुंच रही भव पार।।
2. अनशन मन एकाग्रता, नित–नित नियमित ध्यान।
   ज्योति–केन्द्र रो जागरण, तुलसी है इकतान।।

आचार्यप्रवर ने उनकी उपस्थिति में ही उनके विषय में एकादश गाथाओं का एक गीत बनाकर उनको सुनाया, ऐसा सौभाग्य विरल व्यक्तियों को ही मिलता है।

गण गौरव अक्षय है।

1. तारिख सोलह तीन नय्यासी तप विशिष्ट प्रारंभ्यो,
   दो अप्रेल नयासी आजीवन संथारो संभ्यो।
   'महाप्रज्ञ' 'महाश्रमणी' संघ चतुष्टय रो समुदय है।।
2. कायोत्सर्ग ध्यान अनुप्रेक्षा सतियां सदा करावै,
   जागरूकता राख सतत समता–सरिता में न्हावै।
   तार जुड़्योड़ो गुरु चरणां म्हारो तन मन तन्मय है।।
3. सम्प्रति सब सतियां में वय संयम पर्याय प्रथम है,
   वर्धमान परिणाम और सक्षम सम दम उपशम है।
   अस्सी आठ उम्र में देखो अद्‌भुत आत्म उदय है।।
4. इक्कावनमें दिवस तीसरी बार आज आया हां,
   इन्द्रूंजी थारै संथारै ल्यो संबल ल्याया हां।
   वैशाखी मावस ओ प्रथम प्रहर रो सुखद समय है।
5. अखय तृतीया रो आयोजन अविघन हुयो अचक्का,
   लगभग दो सौ वर्षी तप छवि छाजै छक्कम छक्का।

अणसण में तपसण रा दरसण जन जन पाप प्रलय है।

6. वैशाखी पांचम छप्पनवे दिन संथारो सीझयो,

आखिर चौविहार भी कनकप्रभा द्वारा पचखीज्यो।

योगक्षेम वर्ष री 'तुलसी' एक विशिष्ट विजय है।।

सं. 2046 वैशाख शुक्ला 5 को साध्वीप्रमुखाजी से उन्होंने पूर्ण सचेतन अवस्था में चौविहार संथारा स्वीकार किया और उसी दिन उनका स्वर्गवास हो गया। 17 दिन (सतरह) दिन की संलेखना एवं 39 दिन अनशन के कुल 56 दिन हुए। इन दिनों में हजारों–हजारों लोगों ने उनके दर्शनकर प्रेरणा प्राप्त की और इससे अच्छी संघ की प्रभावना हुई। उनके संसार पक्षीय ज्ञातिजनों ने भी उपासना का अच्छा लाभ उठाया।

20. साध्वी किस्तुरांजी, साध्वी आशांजी (राजलदेसर) (802,803)

साध्वी किस्तुरांजी का जन्म सं. 1942 में श्रीडूंगरगढ के मालू परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम लाभूराजी मालू था। उनके दो पुत्रियां थी – मैना बाई और कस्तुरांजी। मालू परिवार में धर्म के गहरे संस्कार थे। उस परिवार से संबंधित तेरापंथ धर्मसंघ में कई दीक्षाएं हो चुकी थी, इसलिए बच्चे–बच्चे में धर्म के प्रति अनुराग के भाव थे। उस युग में अच्छे सम्पन्न प्रतिष्ठित परिवारों में बेटे–बेटियों के सगाई–संस्कार अल्पावस्था में ही कर देते थे। कभी कभी गर्भावस्था में पलने वाले बच्चों के विषय में भी बात पक्की कर ली जाती थी। यदि एक परिवार में लड़का और दूसरे परिवार में लड़की होगी तो हम अपने बच्चों की शादी कर लेंगे ऐसे वचनबद्ध हो जाते थे।

वैराग्य के विविध उतार चढाव

लाभूरामजी ने अपनी दोनों पुत्रियों की सं. 1954 में सगाई कर दी पर मैनाबाई की मानसिकता दीक्षा लेने की हो गई। वे बात–बात में अपनी बहिन को दीक्षा लेने की बात बताई तो वे भी उसी बहाव में आ गई। वे बोली मैं भी घर में नहीं रहूँगी। दीक्षा लेकर अपना कल्याण करूंगी। उनके पिता लाभूरामजी ने सप्तमाचार्यश्री डालगणी से दीक्षा की प्रार्थना की। उन्होंने दोनों बहिनों को साधु–प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे दिया। भाग्य–सौभाग्य की दिशा कब बदल जाती है और कैसे बदल जाती है? इस प्रश्न पर चिन्तन करते–करते कभी नियति का योग मानने के लिए मजबूर होना पड़ता है। दोनों बहिनों के वैराग्य का रंग चढने पर भी भौतिक प्रलोभनों ने उनकी विचार धारा मोड़ दी। पहले मैंना बाई ने अपनी कमजोर होती मानसिकता को माता पिता के सामने प्रस्तुत की, उस समय किस्तुरी बाई अपने संकल्प में दृढ़ थी। बार–बार निवेदन करने पर आचार्यश्री ने उनको दीक्षा की अनुमति प्रदान की। दीक्षा की तैयारियां होने लगी। बरनोले निकलने लगे। लेकिन उनकी सगाई जहां हुई थी, उन ससुरजी ने उन पर इतना अधिक दबाव बनाया कि न चाहते हुए भी उन्हें विवाह बन्धन में बन्धना पड़ा। सैद्धान्तिक भाषा में कहें तो सब कुछ होने के बावजूद चारित्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम न होने से साधुत्व नहीं आ सका।

किस्तुरांजी सांसारिक जीवन के साथ अपनी सहज धार्मिक रुचि के अनुसार त्याग पच्चक्खाण, सामायिक तथा साधु–साध्वियों की उपासना कर संतोष का अनुभव करने लगी। उनके एक पुत्री हुई। सब कुछ ठीक ठाक चल रहा था, पर अचानक उन पर पति वियोग का पहाड़ टूट पड़ा। सं. 1974 में उनके पति का देहान्त हो गया।

पति वियोग की व्यथा में दीक्षा की भावना ने पुनः बल पकड़ा। अपनी पुत्री की भी समय–समय पर भावना परखने लगी। उनके मन में भी त्याग वैराग्य और दीक्षा की भावना जागृत हुई। तब किस्तुरांजी ने अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के चरणों में अपनी भावना रखी। सं. 1976 कार्तिक कृष्णा नवमी के दिन बीदासर की वीर भूमि में मां बेटी दोनों ने कालूगणी से संयम स्वीकार किया। उनकी पहचान साध्वी किस्तुरांजी एवं साध्वी आशांजी के रूप में हुई।

तपः साधना

उनके सगे भाई मुनि जीवराजजी, मुनि सम्पतमलजी तथा साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी आदि कई तेजस्वी साध्वियों की दीक्षा इनके परिवार से हुई। जिस समय दीक्षा ली साध्वी आशांजी मात्र दसवर्ष की थी।

साध्वी किस्तुरांजी ने तपस्याकर शरीर से अच्छा लाभ उठाया। वे तपस्विनी थी। उन्होंने अपने जीवन में 4414 दिन की तपस्या की। जिसमें –

उपवास	–	3000	आठ	–	3
बेला	–	595	नौ	–	1
तेला	–	41	दस	–	1
चौला	–	25	ग्यारह	–	1
पंचोला	–	16	तेरह	–	1
छह	–	2	पन्द्रह	–	1
सात	–	1			

ज्ञान साधना और स्वाध्याय

साध्वी किस्तुरांजी और साध्वी आशांजी दीक्षित होने के पश्चात पन्द्रह वर्ष तक पूज्य गुरुदेवश्री कालूगणी की पावन सन्निधि में साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी के पास रहीं। फिर जब साध्वीप्रमुखा ने राजलदेसर में स्थिरवास किया तब दोनों मां बेटी साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी की सेवा में तीन वर्ष रहीं, इस प्रकार यह अठारह वर्ष का समय साध्वी आशांजी के लिए शिक्षण, प्रशिक्षण का रहा। उन्होंने अक्षर बोध से लेकर अपनी क्षमतानुसार आगमों का वाचन किया। तेरापंथ दर्शन को समझने का प्रयास किया। कंठस्थ ज्ञान भी बहुत किया। उन्होंने पांच आगम – दशवैकालिक, उत्तराध्ययन नन्दी, सूत्रकृतांग, वृहत्कल्प – कंठस्थ किए। आगम बत्तीसी का समग्रता से दो बार

वाचन किया। कुछ आगम तथा अन्य कई ग्रन्थों को लिपिबद्ध भी किया। सं. 1993 में साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी के दिवंगत होने के बाद आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी आशांजी को अग्रगण्या बनाया। राजस्थान, हरियाणा तथा मध्यप्रदेश प्रान्त के विभिन्न गांव–नगरों में विहरणकर धर्म का प्रचार–प्रसार किया और धर्मोपदेश देकर जनकल्याण में अपनी क्षमता का उपयोग किया।

आस्था का चमत्कार

साध्वी आशांजी सं. 2000 का चातुर्मास आसींद में कर रही थी। उस वर्ष मेवाड़ में भारी वर्षा हुई जिससे नदी–नालों का पानी गांवों/शहरों में आने लगा। आसींद में भी पानी का प्रवाह फैल गया। जो नीचे घर थे वहां जान–माल का खतरा हो गया। साध्वी आशांजी जहां चातुर्मास कर रही थी वह घर बहुत ऊंचा नहीं था पर श्रद्धाभाव से लगभग 500 आदमी वहां आ गए। साध्वीजी ने सभी साध्वियों एवं भाई बहिनों को जप में तल्लीन बना दिया। श्रद्धा का चमत्कार हुआ कि साध्वियों के आवास स्थान से लगभग 20 हाथ की दूरी पर पानी रुक गया। जिससे सैकड़ों व्यक्तियों का सहज बचाव हो गया। साध्वी आशांजी के साथ सभी ने अनुभव किया – गुरु के नाम में कितना चमत्कार है।

वे मेवाड़ में ही विचरण कर रही थी। उस समय वे लुहारिया गांव में प्रवास कर रही थी। एक दिन वे साध्वी किस्तुरांजी (अपनी संसारपक्षीया मां) के साथ शौचार्थ जंगल में गईं। वहां अचानक उन्हें आंखों से दिखाई देना बंद हो गया। उन्हें सामने खड़ा व्यक्ति भी बिलकुल दिखाई नहीं दिया। वे घबरा गई। तभी उनके दिमाग में आया – साध्वियां जब तक यहां नहीं आएगी हम जा नहीं सकते। तब तक 'ऊँ तुलसीः जय तुलसी' जप करने लगी। जप में ऐसी तल्लीनता जमी कि लगभग पन्द्रह मिनिट बीत गए, उन्हें पता नहीं चला। वे जप करती रही। थोड़ी देर बाद अपने आप आंखों से खूब सारा पानी गिरा और आंखों से सब कुछ दिखाई देने लगा।

अपनी मां की वृद्धावस्था के कारण वे कई वर्षों तक मारवाड़ में स्थिर वासी रहीं। उनका सं. 2020 का चातुर्मास रामसिंहजी के गुडा में था। वहां श्रावण कृष्णा दशमी को तीन घंटे के तिविहार एवं 32 मिनिट के चौविहार संथारे में साध्वी किस्तुरांजी का स्वर्गवास हो गया। आचार्यश्री तुलसी ने उनके विषय में एक दोहा कहा –

राजलदेसर वासिनी, किस्तुरां शुभ भाव।
सुखे सुखे संयम वह्यो शासन तरणी नाव।।

अन्तिम समय

साध्वी आशांजी 78 वर्ष की अवस्था तक ग्रामानुग्राम विचरण करती रही। उसके बाद चलने में वे अक्षमता महसूस करने लगी। इसलिए उन्होंने गुरु आदेश से कालू गांव में स्थिरवास किया। वहां अपनी सहवर्तिनी साध्वियों के साथ तीन वर्ष रही। सं. 2046 फाल्गुन शुक्ला 1 तदनुसार दिनांक 26 फरवरी 1990 में परम समाधि पूर्वक डेढ घंटे के अनशन में स्वर्ग की ओर प्रयाण किया। उस समय उनकी अवस्था 81 वर्ष की थी। अष्टमाचार्यश्री कालूगणी द्वारा दीक्षित थी। उनका साधना काल लगभग इकहत्तर वर्ष का रहा। कालू गांव में उनका अच्छा प्रभाव रहा और यही कारण था कि अन्तिम शोभा यात्रा में सभी वर्गों के लोगों की उल्लेखनीय उपस्थिति रही। साध्वी आशांजी सरल और आत्मार्थी साध्वी थी। आचार्यश्री तुलसी ने उनकी स्मृति में एक पद्य कहा –

दस वर्षां री वय में दीक्षा, इक्यासी में स्वर्ग सिधाई।
कालू क्षेत्र सदा इकरंगो, आशा अन्तिम बस्ती पाई।।

21. साध्वीश्री सुन्दरजी (लाडनूं) (807)

साध्वी सुन्दरजी का जन्म नागौर जिले के लाडनूं ग्राम में विक्रम संवत 1964 श्रावण कृष्णा तीज को हुआ। उनके पिता का नाम वृद्धिचंदजी फूलफगर तथा माता का नाम केशरदेवी था। उनके दादाजी ताराचंदजी फूलफगर वहां के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और दादीजी संघनिष्ठ तत्त्वज्ञा श्राविका थी। साध्वी सुन्दरजी आकृति से सुन्दर थी। वे चार भाई और चार बहिनें थीं। जब बालिका सुन्दर सात वर्ष की थी, तब उनकी बड़ी बहिन मनोहरी की शादी हुई। उन्होंने जहां शादी का राग रंग देखा, वहां परिवार से बिछुड़ती बहिन की आंखों में आंसू देख वे विह्वल हो गई और सोचने लगी एक दिन मुझे भी घर छोड़कर जाना पड़ेगा। मैं तो साध्वी बन जाऊंगी। यहीं से उनके मन में वैराग्य की एक क्षीण–सी किरण प्रगट हुई। उन्हें बचपन से नए–नए शहर देखने का बहुत शौक था अतः बालमन में यह भावना बैठ गई कि मैं साध्वी बनकर देश में बहुत घुमूंगी। लाडनूं में वृद्ध साध्वियों का सतत सान्निध्य मिलने से तथा दादाजी से धर्म की प्रेरणा से वैराग्य भाव पुष्ट होता रहा। एक बार उन्होंने अपने पूज्य जनों के सामने स्पष्ट रूप से दीक्षा की भावना रखी, पर उन्होंने उसे गंभीरता से नहीं लिया।

तत्त्वज्ञान की प्रेरणा

एक बार फूलफगर परिवार जयपुर गया और कुछ समय वहीं रहा। वहां वयोवृद्ध मुनिश्री पूनमचंदजी स्वामी स्थिरवासी थे। ताराचन्दजी फूलफगर की बहू प्रायः मुनिश्री की सेवा करने जाती और तत्त्वचर्चा करती। एक दिन बालिका सुन्दर भी दादीजी के साथ गई। मुनिश्री ने बालिका से पूछा – तुम्हें भी कुछ तत्त्वज्ञान आता है क्या?

बालिका से नकारात्मक उत्तर सुन मुनिश्री ने कहा – तत्त्वज्ञा दादी की पोती को कुछ नहीं आता? सुनते ही बालिका सुन्दर को शर्म के साथ आत्म ग्लानि का अनुभव हुआ। उसी दिन संकल्प कर लिया कि मुझे तत्त्वज्ञान सीखना है। दूसरे दिन दादीजी ने कहा – आज तू मुझे बुलाने नहीं आई? बालिका बोली – पहले मुझे तत्त्वज्ञान सिखाओ, तब मुनिश्री के दर्शन करुंगी। मुनिश्री की प्रेरणा, दादीजी का सहयोग और स्वयं के पुरुषार्थ से बालिका सुन्दर ने पंचपद वन्दना, पच्चीस बोल, चर्चा और प्रतिक्रमण बहुत थोड़े समय में सीख लिया। यद्यपि बोल–चाल में, व्यवहार में और ज्ञान ध्यान में रुचि देखकर सबको लगता था कि बचपन होने पर भी वैराग्य पुष्ट है, पर मां के मन में विश्वास नहीं हो पाया। एक दिन मां ने समझाते हुए कहा –

देख, तुम्हें सुबह सूर्योदय से पहले ही भूख लग जाती है, साधु जीवन में कैसे चलेगा? दूसरी बात इन वर्षों में छोटी–छोटी साध्वियां जितनी बनी है, उन सबके साथ प्रायः बड़ी बहिन/मां/मौसी/बूआ/नानी/आदि की दीक्षाएं हुई है पर तुम्हारे साथ तो कोई दीक्षा लेने वाला नहीं है अतः तू अकेली ही रहेगी, इसलिए अच्छी तरह सोच ले।

बालिका सुन्दर ने दो टूक उत्तर देते हुए कहा – आप इन बातों की चिन्ता न करें, मैं सब कुछ कर लूंगी ऐसा विश्वास है। आचार्यश्री कालूगणी को जब इस सन्दर्भ में निवेदन किया, उन्होंने प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे दिया।

अचानक मिली गुरु–कृपा

वि. सं. 1977 का वैशाख महीना। महामना कालूगणी हरियाणा पधार रहे थे। मार्गवर्ती क्षेत्र राजगढ में उनका प्रवास था। ताराचंदजी फूलफगर सपरिवार रास्ते की सेवा करने राजगढ गए। बालिका सुन्दर भी साथ में थी। वैशाख कृष्णा दशमी को वे राजगढ पहुंचे और वहां हाजरी का कार्यक्रम चल रहा था। वहां के श्रद्धालु श्रावकों ने निवेदन किया – अन्नदाता! आजतक हमारे गांव में दीक्षा महोत्सव नहीं हुआ। कृपाकर हमारे यहां दीक्षा महोत्सव कराओ।

पूज्य कालूगणी ने श्रावक समाज के सामने प्रश्न उपस्थित करते हुए कहा – बोलो, दीक्षार्थी कौन है? सभी एक दूसरे को देखने लगे, तभी एक भाई ने निवेदन किया – हमारे गांव में तो दीक्षा लेने वाला कोई भाई–बहिन नहीं है। लाडनूं वाले ताराचंदजी फूलफगर आए हुए हैं, उनकी पौत्री वैरागण है।

आचार्यवर ने पूछा – कहां है ताराचंदजी? वे सन्तों की उपासना कर रहे थे। लोग दौडे आए और कहा – चलो, पोती की दीक्षा की अर्ज करो। उन्होंने सहजता से कहा – देखो अभी हमारा दीक्षा देने का विचार नहीं है। हम तो सेवा के लिए आए हैं। भाइयों ने पुनः प्रेरित करते हुए कहा – एक बार प्रार्थना करते ही दीक्षा नहीं होती, आप चलो तो सही।

ताराचन्दजी ने ज्योहीं आचार्यवर के दर्शन किए, वात्सल्यपूर्ण दृष्टि देखी तो सहजता/सरलता के कारण कुछ भी बोल नहीं पाए केवल इतना–सा कहा – गुरुदेव आपकी मरजी हो तो दीक्षा फरमावो। पूज्य कालूगणी ने तत्काल वैशाख शुक्ला एकम की दीक्षा फरमा दी। जय–जय के नारों से वातावरण गूंज उठा। सुन्दरजी तथा उनकी दादीजी साध्वियों के स्थान पर सामायिक कर रही थी। अचानक सतियों ने उनको बताया – "ताराचंदजी की बहू थांरी पोती की दीख्या

फरमा दी।'' वे बोली – नहीं महाराज म्है तो अबार दीख्या कोनी देवां और किसी बाई री फरमाई हुसी।'' इतने में ताराचंदजी स्वयं वहां पहुंच गए, उन्होंने कहा – ''सुन्दर की दीख्या फरमा दी। एकम की दीख्या है।'' मात्र पांच दिन का समय है, सभी परिवारजन वहीं पहुंच गए और ठाट बाट से दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ। पूज्य कालूगणी की करुणा से बालिका सुन्दर साध्वी सुन्दर बन गई।

अध्ययन और साधना के बढ़ते कदम

साध्वी सुन्दरजी दीक्षित होते ही साध्वीश्री झमकूजी की देखरेख में साधुचर्या का विधिवत प्रशिक्षण जागरुक बनकर लेने लगी। दीक्षा लेते ही वहां से विहार कर दिया। गर्मी का मौसम यात्रागत कठिनाइयां और साधुचर्या – तीनों ही बाल साध्वी की परीक्षा लेने वाले थे पर वैराग्य का मजीठी रंग चढा हुआ था। यद्यपि मार्ग में स्थान की दुविधा बहुत हुई पर बाल साध्वी का मन उससे प्रभावित नहीं हुआ।

साध्वी सुन्दरजी के ज्येष्ठ भ्राता चम्पालालजी फूलफगर उस घोर अशिक्षा के युग में स्त्रीशिक्षा के पक्ष में थे। इस प्रगतिशील चिन्तन के कारण लोग उन्हें क्रांतिकारी कहते थे। उन्होंने अपनी बहिनों को अक्षर ज्ञान कराया तथा स्वयं स्कूल में जो पढकर आते बहिनों को सिखाने का प्रयत्न करते। वे सबको पढने की प्रेरणा देते रहते अतः साध्वी सुन्दरजी पर दीक्षित होने के बाद वह असर साफ दिखाई दिया। साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी से सुघड़ लिपि का अभ्यास किया। पहले रेत में और बाद में खड़िया मिट्टी से लकड़ी की पट्टी पर अक्षर जमाने का लम्बे समय तक श्रम किया। एक बार पूज्य कालूगणी ने इस दिशा में साधु–साध्वियों को विशेष प्रेरणा के साथ प्रशिक्षण भी दिया। स्वयं कालूगणीराज आहार के पश्चात् सभी छोटे–छोटे साधु–साध्वियों को अपनी सन्निधि में बिठाते और रेत पर अक्षर लिखकर उन्हें लिपिकला का सौष्ठव सिखाते। साध्वी सुन्दरजी को भी बीकानेर चातुर्मास में प्रशिक्षण लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने सर्वप्रथम 'सारस्वत व्याकरण' की प्रतिलिपि की। जिसे देखकर पूज्य कालूगणी ने सफलता का प्रमाण–पत्र तो नहीं दिया पर आशीर्वाद देते हुए कहा – प्रयत्न करने से सुन्दर के अक्षर सुन्दर बन जाएगे। सिद्ध–पुरुष की सिद्धवाणी का ऐसा चमत्कार हुआ कि साध्वी सुन्दरजी ख्यातानामा लिपिकार बनी और अनेक–अनेक साध्वियों को इस दिशा में निष्णात बना दिया। शासन गौरव साध्वीश्री कमलूजी जयपुर, सूरजकुमारीजी, रायकुमारीजी, मानकुमारीजी (सरदारशहर), यशोमतीजी आदि के नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने संघीय पुस्तक भंडार को समृद्ध बनाया। साध्वी सुन्दरजी और उनकी सहयोगिनी साध्वियों द्वारा लिखित सौ से

अधिक प्रतियां आज भी सुरक्षित है। सभी प्रतियां लिपि कौशल उदाहरण है।

छोटी बहिन की दीक्षा

साध्वी सुन्दरजी की दीक्षा के पश्चात् उनकी छोटी बहिन का मन उचट गया। अपनी बड़ी बहिन के बिना उनको अकेलापन कचोटने लगा। वे बार बार अपने माता–पिता को कहती – मैं भी दीक्षा लूंगी।

वि. सं. 1978 माघ शुक्ला अष्टमी को अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के कर–कमलों से साध्वी सुन्दरजी की छोटी बहिन की लाडनूं में भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। उनका नाम रखा गया साध्वी धनकंवरजी!

गुरुकुलवास के दुर्लभ क्षण

साध्वी सुन्दरजी को लगभग आठ वर्ष तक गुरुकुल वास में रहने का सौभाग्य मिला। गुरु की अनुपम कृपा और साध्वीप्रमुखा के अतुल वात्सल्य का साध्वी सुन्दरजी ने अपनी क्षमतानुसार अत्यधिक लाभ उठाया। गुरु चरणों की छांव में बैठकर असाधारण योग्यता अर्जित की। यद्यपि साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी ने उनकी मानसिकता बहिर्विहार के लिए तैयार की, पर साध्वीप्रमुखा झमकूजी का वात्सल्य, प्रेरणा और प्रोत्साहन ने उनको गुरुकुलवास से बांध लिया। वे जब कभी बाहर जाने की कल्पना करती तो मन ही मन सिहर उठती। पर उनकी योग्यता ने आचार्यश्री के मन में यह विश्वास जमा दिया था कि – साध्वी सुन्दरजी को प्रचार–प्रसार करने के लिए बहिर्विहारी बनाया जा सकता है।

पूज्य कालूगणी का 1986 का चातुर्मास लाडनूं के लिए घोषित था। साध्वी सुन्दरजी भी गुरुदेव की सन्निधि में साध्वीप्रमुखा के साथ लाडनूं चातुर्मास के लिए वहां पहुंच गई थी। अचानक राजलदेसर चातुर्मास करने वाली साध्वी सुवटांजी का स्वर्गवास हो गया। उस वर्ष वहां चातुर्मास इसलिए आवश्यक था कि वहां स्थानकवासी साधु आए हुए थे, अतः श्रावक समाज की सार संभाल करना जरूरी था। सं. 1986 आसाढ़ शुक्ला पंचमी को आचार्यवर ने अग्रगामी की वंदना करवाई और राजलदेसर चातुर्मास करने का निर्देश दिया और उसी दिन विहार करा दिया। सचमुच यह प्रसंग साध्वी सुन्दरजी के लिए कसौटी का था। मात्र इक्कीस वर्ष की अवस्था और राजलदेसर जैसे बड़े गांव को संभालना एक चुनौती थी। सबसे बड़ी परीक्षा थी – स्वयं को संभालना। अकल्पित गुरुकुल को छोड़ना उनके लिए असह्य हो गया, पर गुरुकृपा और विश्वास का फल मधुर मिला। प्रथम चातुर्मास में उनको आशातीत

सफलता उपलब्ध हुई तथा राजलदेसर के तत्त्वज्ञ श्रावक उनके व्याख्यान से संतुष्ट हो गए।

एक साथ तेरह हस्तलिखित प्रतियां बक्साई

साध्वी सुन्दरजी को अग्रगामी बने मात्र दो वर्ष हुए थे। आचार्यश्री कालूगणी ने एक दिन पूछा – सुन्दर! तुम्हारे पास कितने सूत्र की प्रतियां है? वे मौन खड़ी रहीं तभी आचार्यवर ने कहा – ये प्रतियां हैं, इनमें से तुम्हें जितनी चाहिए ले लो। एक साथ तेरह प्रतियां प्रदान करते हुए आचार्यश्री ने कहा – देखो सभी प्रतियां शुद्ध स्पष्ट और साफ लिखी हुई हैं। जीवाभिगम सूत्र की प्रतिलिपि करने के बाद यह प्रति पुनः दे देना। गुरु की अनन्य कृपा प्राप्तकर साध्वी सुन्दरजी धन्य बन गई।

एक घंटे की गुरुसेवा के लिए सैकड़ों माइल चलना स्वीकार है

वि. सं. 1992 का आचार्यवर का चौमासा उदयपुर था और साध्वी सुन्दरजी उस वर्ष बीकानेर थीं। एक बार ईशरचन्दजी चौपडा उदयपुर गुरु दर्शन कर आए। सुखसाता के संवाद सुनाते–सुनाते उन्होंने कहा – इस वर्ष गुरुदेव का मालवा–यात्रा करने का विचार है। मैंने तो आचार्यवर से निवेदन किया है कि – इस वर्ष बीकानेर चोखले के साधु साध्वियों को वहीं रखाने की कृपा करें। यदि दर्शन के लिए वे मेवाड़ आएंगे तो भी विशेष सेवा नहीं होगी, मात्र दर्शन ही होंगे। चौपड़ाजी के मुंह से बीकानेर चौखले में साधु साध्वियों को रखने की बात उनको अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा – आप हमारे धर्मसंघ के वरिष्ट श्रावक हैं। आपको गुरुदर्शन और गुरु–उपासना की दलाली करनी चाहिए। एक बात, जिन साधु साध्वियों का स्वास्थ्य ठीक नहीं अथवा वृद्धावस्था के कारण जो अक्षम हैं, उनके लिए आप भले अर्ज करें। हमारे जैसे सक्षम युवा साध्वियों के भले एक घंटा ही सेवा हो, गुरुदर्शन की प्रार्थना करनी चाहिए।

चौपड़ाजी को लगा साध्वियां तीव्र भावना दर्शन करने की है, इस लिए यहां रहने की बात अप्रियकर लगी है। उन्होंने तत्काल विनम्र शब्दों में कहा – महाराज! मैं पांच सात दिन बाद पुनः गुरुदेव के दर्शन करूंगा और आपके गुरु दर्शन हो, वैसी दलाली भी करने का भाव है। योग की बात, चौपड़ाजी के निवेदन पर साध्वी सुन्दरजी को दर्शनों का आदेश हो गया। बीकानेर से चलकर मात्र तेरह दिनों में साध्वी सुन्दरजी मेवाड़ पहुंच गईं। यदि उस वर्ष दर्शन नहीं होते तो उनके मन में धोखा रह जाता। पर गुरुकृपा से उन्हें मालवा–यात्रा में साथ जाने का सौभाग्य भी मिल गया।

मर्यादा महोत्सव उस वर्ष का बड़नगर में था। जब चौपड़ाजी ने मर्यादा महोत्सव पर दर्शन किए, उन्होंने आचार्यवर से निवेदन किया – एक घंटे की गुरु सेवा के लिए सैकड़ों माइल चलने का उत्साह मैंने साध्वी सुन्दरजी लाडनूं में देखा। सचमुच, जिनके मन में अपूर्व भक्ति भावना होगी वही कर सकेगा। ये बीकानेर से चली तब इन्होंने यही कहा था। यह तेरापंथी साधु साध्वियों की विशेषता है।

निर्भीकता

सं. 1994 में साध्वी सुन्दरजी बाव चातुर्मास करने के लिए जा रही थी। रास्ते में एक छोटा–सा गांव आया कुडालिया। उस गांव के ठाकुर कुछ दिन पूर्व ही स्वर्गधाम सिधारे थे। उस समय राजस्थान और गुजरात में डाकुओं का आंतक बहुत था। वह गांव भी डाकुओं की गिरफ्त में था। डाकुओं की बात सुनते ही जो–जो श्रावक सेवा में थे, घबराकर उन्होंने अपना रास्ता बदल लिया। साध्वी सुन्दरजी ने निर्भीकता से कहा – हमें क्या डर है। हमारे पास से लेंगे क्या?

इधर गांव की ठकुरानी वीरांगना थी। उसको ज्योहीं गांव के बाहर बैठे डाकुओं के आगमन की खबर मिली उसने उनके नाम एक खत लिखा – आप जैसलमेर के भाटी हो, ऐसी मुझे जानकारी मिली है। मैं आपको बताना चाहती हूँ कि मैं भी भाटियों की बेटी हूँ। मेरे गांव में पैर मत रखना, अन्यथा आपकी खैर नहीं रहेगी। वीरता भरे शब्दों का जादू का सा असर हुआ और वे वहां से भाग छूटे।

उस समय ठकुरानी साध्वियों के पास आई और बोली – महाराज! आप तो घबबराए नहीं? साध्वियों ने स्पष्ट शब्दों में कहा – हम क्यों घबराते? हमारे पास धन पैसा आदि है, नही। ठकुरानी बोली – महाराज! हौसला और हिम्मत ही जीवन है। डरपोक आदमी अपने जीवन में कर ही क्या सकता है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ, आपकी निर्भीकता देखकर। इससे मुझे भी बल मिला है।

यात्रा और कसौटी के क्षण

भारत स्वतंत्र हुआ। उसके बाद हिन्दुस्तान पाकिस्तान के विभाजन का समय आम आदमी के लिए बहुत बहुत कष्टकर रहा। उसमें भी पादविहारी जैन साधु साध्वियों के लिए तो बड़ा कसौटी का था। साध्वी सुन्दरजी को सं. 2004 का चातुर्मास करने के लिए नवाब के गांव मलेरकोटला जाना था। चूरु से साध्वियों के तीन सिघाड़े (ग्रुप) एक साथ चले। उनके साथ कुछ बहिनें सेवा/उपासना का लाभ ले रही थी। उस समय मारवाड़ी, मेवाड़ी और थली की बहिनें विशेष रूप स्वर्ण आभूषण पहनती

थी। उनके गहनों को देख कुछ लोग उनके पीछे हो गए। उन लोगों को बहिनों के पीछे मंडराते देख साध्वियों ने उनको मंगल पाठ सुना दिया, वे अपने गांव रवाना हो गई।

बहिनों को न देखकर उनको एक बार तो निराशा हुई, पर उन्होंने सोचा – ये गईं है, और कोई आ जाएगी। यही चिन्तनकर साध्वियों के पीछे हो गए। साध्वियां पंचमी समिति के लिए गई तब वे सब मिलकर परस्पर बातें करने लगे। वहीं थोड़ी दूरी पर एक साध्वी बैठी थी, उसने सारी बाते सुन ली। उससे स्पष्ट हो गया कि काशीद सहित इन भाइयों की नीति ठीक नही है। साध्वियां रास्ता बदलकर हिसार पहुंच गई और वहां से काशीद को भी मंगल पाठ सुना दिया। यद्यपि साध्वियों को हिसार में यह सूचना मिल गई थी कि पंजाब की स्थिति ठीक नहीं है। हिन्दू–मुसलमान दंगा कभी तेज कभी मंद गति से चल रहा है। साध्वी सुन्दरजी का पिछला चौमासा पंजाब में ही था, इसलिए क्षेत्र और लोग उनसे परिचित थे। श्रावक समाज द्वारा मना करने पर भी उन्होंने हरियाणा से पंजाब की ओर विहार कर दिया। जब वे मानसामंडी पहुंची, उन्हें स्थान मुश्किल से उपलब्ध हुआ। जब गोचरी और पंचमी के लिए बाहर निकली तो जिन लोगों ने साध्वियों को देखा, यहां तक पुलिस जनों ने भी यही कहा – अभी आप यहां क्यों आए हैं? क्या तुम लोगों को मरना है? वहां वे पांच दिन ठहरीं क्योंकि विहार में एक भी भाई साथ जाने के लिए तैयार नहीं था। यद्यपि आचार्यवर का आदेश आ गया था कि पंजाब में विहरण करने वाले साधु साध्वियां तत्काल हरियाणा में आ जाए, लेकिन हरियाणा में पहुंचना ही अपने आप में एक बड़ी समस्या बन गई।

आखिर भिवानी के श्रावक मनोहरलाल ने साध्वियों के दर्शन कर काशीद की व्यवस्था की और सिरसा की ओर विहार करवाया। वैशाख का महीना, कड़ी धूप और 14 माइल के विहार का लक्ष्य लेकर साध्वियां चली। कुछ ही दूर चले होंगे, मुस्लिम भाइयों के झुण्ड के झुण्ड मिलने लगे। सभी के हाथों में भाला, बरछी, कटार आदि शस्त्र थे। लम्बा कद, सुगठित शरीर, काला रंग, क्रोधातुर आंखे, फड़कती भुजाएं, उग्र आक्रोश भरे चेहरों को देख भयभीत होना स्वाभाविक था, पर साध्वियां "ऊँ भिक्षु" जप का सहारा लेकर चलती रही। साध्वी सुन्दरजी ने कहा – सब मौन, एकाग्र तथा संयत दृष्टि से चलती रहो, उनकी ओर आंख उठाकर मत देखना। साध्वियां झंडे नामक गांव में पहुंची उन्हें देखते ही बहुत सारे मुसलमान उनको घेर कर खड़े हो गए। साध्वियां कुछ कहती उससे पहले ही वे बोल पड़े – तुम कौन हो? कहां से आई हो? साध्वी सुन्दरजी बोली – क्या इस बस्ती में हिन्दुओं के घर है? तभी कई व्यक्ति

एक साथ बोले – हां इस गली में है, उस गली में है। तभी काशीद ने इशारा किया – जल्दी से जल्दी चल पड़ो। इतने में काशीद ने उन लोगों को उलझाया – चलो बताओ घर किधर है? ध्यान हटते ही साध्वियां आगे बढ़ गई। जितनी तेज चल सकती थी, चलने का प्रयास किया। साध्वियां थोड़ी ही दूर चली थी कि उन्हें एक वृद्ध व्यक्ति दिखाई दिया। सफेद दाढ़ी, चमचमाती आंखें और उजले सफेद वस्त्र पहने हुए था। साध्वियों को देखते ही बोला – क्या तुम्हारी अक्ल मारी गई है? कहां है यहां हिन्दुओं के घर? यहां सब मुसलमान ही मुसलमान हैं, ये तुम्हारी बोटी बोटी बिखेर देंगे।

साध्वीजी ने हिम्मतकर कहा – जो हुआ सो हुआ, हमें तो अब यह बताओ क्या करें और किधर जाएं? वह बोला – यहां से आधा मील की दूरी पर एक नीम का पेड़ आएगा। वहीं से एक पगडंडी निकलती है वह पकड़कर तेज गति से चली जाना, पीछे मुड़कर बिल्कुल मत देखना। छह माइल चलने पर एक गांव हिन्दुओं का आएगा। संकट के क्षणों में साध्वियों को लगा –

वह इन्सान नहीं था कोई फरिश्ता था,

जपते थे सांस सांस में जिसको, निभाया उसी ने रिश्ता था।

आधा माइल पर नीम की छाया मिलते ही साध्वियों को थोड़ी राहत मिली। पगडंडी से आगे बढ़ी। सोलह माइल रास्ता पार करने पर एक गांव आया। भूख प्यास थकान और भय से परेशान साध्वियों को काशीद की चिन्ता अधिक व्यथित करने लगी। साध्वियां एक वृक्ष की छांव में विश्राम करने बैठ गई। दो साध्वियां भोजन पानी की एषणा करने गई। जिस दरवाजे पर साध्वियां पहुंचती, सभी उनका संशय के साथ गालियों से स्वागत करते और अपना दरवाजा बंद कर लेते। साध्वियां खाली हाथ लौट आई। आधा पौन घंटे के बाद, पेड़ के पास एक तालाब था उसमें पानी भरने के लिए कुछ बहिनें आई, उनमें से एक बहिन बोली – रांडो! कौन जानता है तुमको? यहां क्यों बैठी हो?

साध्वियों ने मुस्कान के साथ कहा – हमारे में रांड/विधवा एक भी नहीं है हम तो सभी कुंवारी कन्याएं है। यह खुशी की बात है कि तुम साध्वियों को पहचानती हो। वह बोली – महाराज! आप जैसी मुंह बांधने वाली मेरे पीहर के गांव में कई बार आती हैं, इसलिए मुझे पता है। वह चली गई, फिर मुड़कर आई और पूछा – तुम लोगों को रोटी पानी मिली या नहीं?

साध्वीजी उत्तर में कहा – जब तुम्हारे सिवाय यहां हमें कोई जानता ही नहीं तो रोटी पानी कौन देगा? बहिन बोली – चलो–चलो, घर में बनी होगी तो मैं दे दूंगी। साध्वियां उसके साथ गई एक रोटी और थोड़ा पानी लेकर आ गई। स्थान के लिए पूछा तो घर के सदस्य इन्कार हो गए। इतने में काशीद आ पहुंचा, उसने जो आप बीती बताई, सुनकर सबके रोंगटे खड़े हो गए। काशीद ने बताया –

आप सभी साध्वियों के वहां से चले जाने पर वे मुसलमान भाई मेरे पर इतने अधिक गुस्सा होगए कि उनकी आंखों से खून बरसने लगा। वे बोले–तुमने हमें बातों में उलझाकर हमें मूर्ख बना दिया, हम उनको जीवित नहीं जाने देते। गालियां देते देते उन्होंने मुझे एक मकान में बन्द कर दिया और स्वयं सब बाहर चले गए। वह मकान दो मंजिला था। मुझे उस समय मेरी नहीं आप लोगों की चिन्ता थी, इसलिए मकान से छलांग लगाई, धर्म के प्रताप से मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ा और भागता भागता मैं अब यहां पहुंचा।

काशीद और साध्वियों ने पुनः स्थान की एषणा का प्रयत्न किया, पर सफलता नहीं मिली। आखिर वहां से विहार कर छह माइल स्थित एक गांव में गए जहां हिन्दुओं की अच्छी बस्ती थी। वहां साध्वियों का विश्राम और आहार पानी ही नहीं मिला बल्कि सुरक्षा का समुचित आश्वासन मिला। वहां के वरिष्ट सदस्यों ने दूसरे दिन साध्वियों के साथ पांच आदमी भेजे और सकुशल सिरसा पहुंचाया। ज्योहीं सिरसा में प्रवेश किया – पुलिस ने सबको रोक दिया और कहा – आगे कर्फ्यू है, आप आगे नहीं जा सकते। साध्वियां एक वृक्ष की छाया में बैठ गई और अपना जप स्वाध्याय करने लगी। तभी एक पुलिस का जवान आया और बोला – 'मत्थएण वंदामि'। सुनते ही साध्वियां चौंकी और पूछा – भैया! तुम कौन हो?

पुलिस के जवान ने बताया – महाराज! मैं बीदासर के पास बेनाथा गांव के ठाकुर किशनजी का बड़ा पुत्र हूँ। आप लोग हमारे घर पर ठहरते रहते हैं, इसलिए मैं आपसे परिचित हूँ!.....। साध्वियों ने कहा – भाई! कर्फ्यू के कारण हम शहर में प्रवेश नहीं कर पा रहे हैं। तुम कोई उपाय कर सको तो.....। वह तत्काल अपने अधिकारी के पास पहुंचा और जैन साध्वियों के विषय में जानकारी दी और साध्वियां शहर में प्रवेश कर सके इसकी आज्ञा प्राप्त की। वह पांच पुलिस के जवानों के साथ आया और साध्वियों को यथा स्थान पहुंचा दिया। उस समय सिरसा में पहले से ही कई साधु–साध्वियों के सिंघाडे थे। अपनों से मिलकर आत्मिक सुख की अनुभूति की।

चर्चा न करके भी चर्चा में विजय

इससे पूर्व सं. 2006 का चातुर्मास साध्वी सुन्दरजी ने जगरावां में किया। तेरापंथी साधु साध्वियों के लिए पंजाब नया–नया क्षेत्र था और पंजाबी भाई बहिन के लिए तेरापंथी साधु साध्वियों का आचार–विचार नया था। अथवा यह कहा जा सकता है, दोनों एक दूसरे से अपरिचित थे। इसलिए कठिनाइयों का आना स्वाभाविक था। साध्वी सुन्दरजी ने भी आहार, पानी और स्थान की कठिनाई का सामना किया। समुचित स्थान की उपलब्धता न होने से उन्होंने चातुर्मास की स्थापना श्रावक झंडुलालजी जैन के घर में की। साध्वियों का चातुर्मासिक प्रवास एक श्रावक के घर में देख, वहां प्रवासी स्थानकवासी संत सुशीलकुमारजी को विरोध करने का एक माध्यम मिल गया। उन्होंने अपने श्रावकों के बीच चर्चा की और वे पहुंच गए साध्वियों के पास चर्चा करने के लिए। श्रावकों ने पहला प्रश्न किया – गृहस्थ के घर में चातुर्मास करना कल्पता नहीं, फिर आपने यहां चातुर्मास कैसे किया?

साध्वी सुन्दरजी ने कहा – आप आचारांग और वृहत्कल्प का पाठ देख लीजिए। यहां साध्वियां ही क्यों, साधु भी चातुर्मास कर सकते हैं। क्योंकि यहां आने जाने का रास्ता अलग है, कल्प में कहीं बाधा नहीं है। श्रावक साध्वीजी के उत्तर से संतुष्ट हो चले गए। दूसरे दिन पुनः वे आए और बोले – हमारे महाराज आपके साथ चर्चा करना चाहते हैं। साध्वियों ने निडरता के साथ कहा – हम तैयार हैं। तभी श्रावकों ने कहा – वे यहां नहीं आएंगे, बाजार में चर्चा करेंगे। साध्वी सुन्दरजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा – आपके मुनिजी जब चाहे, जहां चाहे, हम उन्हें सूत्र पाठ दिखाने को तैयार हैं।

साधुओं को जब ज्ञात हुआ कि साध्वियां हर दृष्टि से चर्चा करने को तत्पर है, और उनके मन में घबराहट का नाम नहीं है, तब इस बात पर आ डटे कि साध्वियां है, इसलिए उनको वन्दना करना अनिवार्य है और उनको धरती पर नीचे बैठना होगा। साध्वी सुन्दरजी ने सिंहनी का रूप धारण कर लिया। उन्होंने कहा – आप मुनिजी से कह दीजिए – ऐसा कभी नहीं होगा। आपका प्रश्न सैद्धान्तिक था, उसका समाधान हम बाजार में स्थानक में अथवा कहीं भी दे सकते हैं। लेकिन वन्दना करना न करना, हमारी जैसी संघीय विधि है वैसा ही करेंगे। इसके लिए हम स्वतंत्र हैं।

साध्वीजी का दो टूक उत्तर सुन स्थानकवासी सम्प्रदाय के चिन्तनशील श्रावकों ने कहा – साध्वीजी के कथन में सच्चाई है, हम इसका समर्थन करते हैं। क्योंकि झूठ सच का निर्णय आगम के पाठ से होगा न कि वन्दना से। यह बात

जगरावां शहर में इतनी फैल गई कि चर्चा न करके भी साध्वियां चर्चा में विजयी बन गई।

यात्राओं का प्रारंभ

एक समय था तेरापंथ धर्मसंघ राजस्थान की धरती पर ही फलता फूलता रहा। उससे बाहर हरियाणा और मालवा में प्रवेश हुआ, पर अष्टमाचार्य कालूगणी के युग में यात्राओं के लिए नई दिशाए खुली और साधु गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश आदि क्षेत्रों में विचरण करने लगे। आचार्य तुलसी के युग में साध्वियों ने सुदूर देशों की यात्राओं का शुभारंभ किया। उसमें एक नाम साध्वी सुन्दरजी लाडनूं का है। उन्होंने सर्वप्रथम पंजाब यात्रा की और उसके बाद उन्होंने खानदेश, महाराष्ट्र यात्रा के लिए प्रस्थान किया। वह युग साम्प्रदायिक कट्टरता का था इसलिए स्थान आहार पानी की कठिनाई तो प्रतिदिन की बात थी। कहीं–कहीं तत्त्वचर्चा का वातावरण बनता और कहीं कहीं पारस्परिक विद्वेष से अन्य अनेक प्रकार की परिस्थितियों का निर्माण हो जाता। साध्वी सुन्दरजी दाठीक और हिम्मत वाली साध्वी थी। देव, गुरु, धर्म और साधना के साथ–साथ उनके पास ज्ञान का बल था। वे तत्त्वचर्चा और तेरापंथ के मंतव्य को समझाने में दक्ष थी। उनकी सूझबूझ और समझ विलक्षण थी। सबसे महत्त्वपूर्ण उन्हें देशाटन का शौक था। उन्होंने अपने जीवन में लम्बी यात्राएं की, लम्बे विहार किए और रूकने का नाम नहीं लिया।

वि. संवत 2004 मर्यादा महोत्सव का अवसर। आचार्यश्री तुलसी ने एक दिन अग्रगामी साध्वियों को सलक्ष्य सम्बोधित कर पूछा – इस वर्ष मैं चाहता हूँ साध्वियों को दूर देश की यात्रा पर भेजूं, बोलो, कौन–कौन तैयार हो? साध्वी मोहनांजी राजगढ़ आदि कई युवा साध्वियों ने खड़े होकर निवेदन किया – गुरुदेव! हम तैयार हैं आपकी जहां मर्जी हो कृपा कराएं। उस समय साध्वी सुन्दरजी वहां उपस्थित थीं, उनकी बहिन साध्वी धनकंवरजी ने आचार्यश्री से प्रार्थना की – गुरुदेव! साध्वी सुन्दरजी पर कृपा कराएं, हम सभी साध्वियां यात्रा के लिए तैयार हैं। महोत्सव के दिन आचार्यप्रवर ने साध्वी सुन्दरजी एवं मोहनांजी राजगढ़ को खानदेश जाने का निर्देश दिया। जयपुर, भगवतगढ़, सवाई माधोपुर कोटा होते हुए वे आगे बढ़ रही थी। यात्रा पथ में एक गांव आया – जगतपुर। साध्वियां गांव के बाहर एक धर्मशाला में ठहरी, उसके पीछे एक कुआं था। साध्वियों के साथ काशीद और सेवार्थी भाई–बहिन भी थे। शाम के समय उस गांव का एक सज्जन व्यक्ति उधर से निकला। उसने यात्रियों को देखकर कहा – लगता है आप इस प्रदेश से अनभिज्ञ हैं। आपके पास

घोड़े भी हैं। आप रात्रि के समय ध्यान और सावधानी रखना। यहां कुएं पर कभी–कभी शेर–शेरनी पानी पीने आते हैं। यह स्थान खतरे से खाली नहीं है।

यह बात साध्वियों ने सुनी उनके मन में शेर देखने की उत्कण्ठा जागी और वहीं खडे एक भाई के मन में शेर की बात सुनते ही भय व्याप गया। उसने सोचा आज तो मौत सामने है। वह बहुत ही कायर एवं बुजदिल व्यक्ति था। साध्वियां प्रतिक्रमण कर रही थी। श्रावक श्राविकाएं उपासना कर रहे थे। रसोईदारिन आवश्यक काम के लिए धर्मशाला के पिछवाड़े में गई और दौड़ी–दौड़ी हाँफती सी आई। उसने कहा – सेठानीजी! पीछे कुएं के पास चिराग ही चिराग जल रहे हैं, लगता है, वहां तो भूतों का वास है। साध्वियां झरोखे के पास बैठी थी, उन्होंने उधर झांका, रसोईदारिन का भय दूर करते हुए कहा – यह तो आगिया (जुगनू) है। आगिया शब्द सुनते ही वह कमजोर दिल भाई ने मन में सोचा शेर आ गया, उसने आगिया का अर्थ "आ गया" लगा लिया। वह जोर–जोर से चिल्लाने लगा – आ गया रे, आ गया। उसके भय से घिग्घी बंध गई, होश हवाश गुम हो गए, हृदय की धड़कन तेज हो गई। उसे लगा अब तो मौत के सिवाय कोई चारा नहीं है। थोड़ी देर बाद जब लोगों ने उसे शान्ति से समझाया, तब उसके सारी बात समझ में आई, फिर भी वह रातभर कांपता रहा, नींद नहीं ले पाया।

आग्रह : अभिनिवेश और विरोध

यात्रा के मध्य गुजरात में विहरण हुआ, वहां के लोग अपने सिद्धान्तों के कट्टर होने के साथ तेरापंथ के बारे में गहरी भ्रान्ति पाले हुए थे। साध्वीश्री सुन्दरजी आने वाले हर भाई के प्रश्न का उत्तर बड़ी गंभीरता के साथ सटीक शब्दों में देने में कुशल थी। एक भाई 73 प्रश्नों की लम्बी लिस्ट लेकर आया, साध्वीजी एक–एक प्रश्न को उत्तरित कर रही थी। उस भाई को आठ दस उत्तर सुनकर ही बात समझ में आ गई और वह चलता बना।

उसी गांव में रात्रि के समय एक भाई विरोधी स्वर में व्याख्यान के बीच में खड़ा हो गया और बोला – आप मूर्ति को क्या मानते हो? साध्वीजी ने शान्त भाव से कहा – मूर्ति को मूर्ति मानते हैं और क्या मानेंगे?

वह और तेज आवाज में बोला – तुम्हारे कालूरामजी की फोटो को क्या मानोगे? भाई की बदनीयत साध्वियों की समझ में आ चुकी थी, इसलिए पूर्ववत लहजे में कहा – फोटो को फोटो मानेंगे।

भाई ने कहा – अगर कोई उसे गटर या गन्दे नाले में गिरा दे तो क्या करोगे? साध्वियां शान्त भाव से सुनती रही और वह भाई अंटसंट बकता रहा। अंत में साध्वी सुन्दरजी ने कहा – भाई! कीमत चैतन्य की है, जड़ की नहीं। बात करते–करते उस भाई को चर्चा से नहीं धैर्य और विवेक के जल से शान्त किया। वहां के भाइयों ने बताया – यह हमारे यहां का ऐसा भाई है, जो आने वाली सभी साध्वियों से झगड़ा करता है।

गुजरात की ही दूसरी घटना है। एक दिन विहार करके गंतव्य स्थान पर पहुंची ही थी कि एक गुजराती बहिन आई। साध्वीजी ने पूछा – बहन! तुमारा नाम शुं छै। वह तत्काल बोली – मारूं नाम राधाबेन छै। उसने बताया – मैं यहां जैन शाला चलाती हूँ। बच्चों को सद्ज्ञान से भूषित करना मेरा लक्ष्य है। उसने तेरापंथ धर्मसंघ की आचार व्यवस्था की जानकारी की, संघीय विधिविधान तथा तेरापंथ–मान्यता के विषय में संक्षिप्त में जानना चाहा। साध्वीजी की सहज सुबोध उत्तर की शैली ने उसको प्रभावित किया। तभी उसकी सखी सहेलियां पहुंची, उन सबने एतराज किया कि ये लोग मंदिर नहीं जाते, मूर्ति की पूजा नहीं करते, हम इनके पास नहीं जाएंगे।

राधा बहिन साध्वीजी से बात कर यह समझ चुकी थी कि इनमें आग्रह जैसा कोई भाव है ही नहीं। उसने निवेदन किया – महाराज! आपको बाधा न हो तो मंदिर में पधारिए। साध्वीजी ने कहा – अभी चलती हूँ। मंदिर में जाकर साध्वीजी ने शांतिनाथ की स्तवना की। इतना स्पष्ट कर दिया कि तुम लोग द्रव्यपूजा करती हो, हम भाव स्तवना करते हैं। इस घटना का वहां के मंदिरमार्गी समाज पर इतना अच्छा प्रभाव पड़ा कि व्याख्यान सुनने के लिए हमेशा आने लगे और धर्म–चर्चा कर निर्भ्रान्त बन गए।

महाराष्ट्र की धरती पर

वि. सं. 2008 तक तेरापंथी साधु साध्वियां मुम्बई से आगे नहीं गए थे। पूना, जयसिंहपुर जाने का पहला अवसर साध्वी सुन्दरजी को मिला। पूज्य आचार्यवर ने सं. 2008 का उनका चौमासा जयसिंहपुर के लिए घोषित किया। महाराष्ट्र में विचरण करते–करते साध्वी सुन्दरजी तासगांव पहुंची। वहां उनकी प्रेरणा से कई परिवारों ने तेरापंथ की गुरुधारणा की। उनमें एक नाम था – दगडूलालजी। उन्होंने सपत्नीक सम्यक्त्व ग्रहण की। दगडूलालजी तेरापंथी बन गए, यह संवाद ज्योहीं उनके दामाद को मिला, उसने द्वेषवश ससुराल आना–जाना छोड़ दिया और दगडूलालजी की लड़की को पीहर से सम्बन्ध तोड़ने के लिए विवश कर दिया। आखिर बातचीत

करते–करते समाधान इस बिन्दु पर निकला कि – यदि दगडूमलजी और उनकी पत्नी – दोनों तेरापंथी साध्वियों को सम्यक्त्व वापिस जाकर दे दें, तो हम आना जाना शुरु कर देंगे।

सलक्ष्य योजनापूर्वक मध्यान्ह में पूरे परिवार के साथ दगडूलालजी एवं उनकी पत्नी तीर्थंकरों की स्तुति का संगान करते हुए आए। दगडूलालजी और उनकी पत्नी आगे–आगे चल रहे थे। उन्हें देखकर साध्वीजी ने सोचा – ये सब क्यों आए हैं?

सपरिवार दलबल के साथ दगडूलालजी दर्शनकर आगे आए और बोले – महाराज! हम आपकी श्रद्धा वापिस देने आए हैं। सुनते ही साध्वी सुन्दरजी को सारा राज समझ में आ गया। उन्होंने धीर गंभीर आवाज़ में कहा – मैंने आपको सम्यक्त्व की कोई पोटली नहीं दी, जिसे आप वापिस देने आए हैं। मैंने आपको जो भी आत्मकल्याण की बातें बताई हैं, वे यदि आप देना चाहें, तो लेना मुझे स्वीकार है। इतना सुनते ही वहां उपस्थित सारे लोग एक साथ बोल पड़े – ओह, हमने तो कल्पना ही नहीं की, कि आप खुशी–खुशी सम्यक्त्व वापिस ले लोगी। साध्वीजी को लोगों की अज्ञता पर हंसी आ रही थी। फिर भी उन्होंने दगडूलालजी एवं उनकी पत्नी को सम्बोधित कर कहा – आप दोनों ने जो त्याग लिए हैं, वे निभाएंगे या तोड़ेंगें?

तभी उन दोनों ने विनम्रता और सरलता के साथ निवेदन किया – महाराज! हमने जो प्रत्याख्यान किए हैं, उन्हें आजीवन ज्यों के त्यों निभाएंगे, उसमें किंचित भी ढ़ील नहीं करेंगे। हमें तो निर्णय पारिवारिक जीवन की सुख–शांति को बरकरार रखने के लिए विवश होकर लेना पड़ रहा है। आप निश्चिंत रहें। आपने हमारे मन में जो विवेक चेतना जागृत की है, वह हमारा मार्ग सदा प्रकाशित करती रहेगी।

साधना का प्रभाव

इसी यात्रा के दौरान साध्वी सुन्दरजी माधोनगर पहुंची। वहां जैन मूर्तिपूजक श्रावक–श्राविकाएं अच्छी संख्या में थी। उन्हें जिन मंदिर में ठहराया गया। साध्वियां अपना सामान जमाकर धर्माराधना में लीन हो गई। कुछ देर पश्चात कुछ भाई पूजा करने के उद्देश्य से आए और बोले – महासतीजी! यहां मत बैठो। साध्वियों ने पूछा – क्यों? उत्तर मिला मूर्ति की आशातना होती है, यह कहकर साध्वियों का समान उठाने की कोशिश करने लगे, तभी साध्वियों ने उनके द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर अपने उपकरण रख दिए।

थोड़े समय के अन्तराल में दूसरा ग्रुप आया। उन्होंने कहा – महासतीजी

यहां हम स्थापना जी रखेंगे, आप दूसरे कोने में बैठ जाइए। साध्वियों ने वैसा ही किया। तभी तीसरा समूह आ पहुंचा। उन्होंने नाराजगी व्यक्त करते हुए कहा – यह हमारे स्तवन करने का स्थान है। इस प्रकार साध्वियों ने पूरे मंदिर की परिक्रमा कर ली, पर स्थान निश्चित नहीं हो पाया, जहां साध्वियां निश्चिंतता से बैठकर अपनी धार्मिक चर्या संचालित कर सके।

माधोनगर में एक मारवाड़ी भाई रहता था, उसका नाम था चन्दनमलजी। उसे मात्र इतना ज्ञान था कि हम तेरापंथी हैं। वे तीन भाई–भतीजे वहां नौकरी करते थे। उनका मालिक खाटू के देवकरणजी माहेश्वरी थे। वे तेरापंथ के कट्टर विरोधी थे। चन्दनमलजी ने स्थान की व्यवस्था की। व्याख्यान सुनने के लिए देवकरणजी को कहा, तब वे अन्यमनस्क से आकर बैठ गए। उस दिन व्याख्यान में साध्वीजी ने गीता महाभारत के सूक्तों को उद्घृत करते हुए जैन दर्शन की अभिव्यक्ति दी, जिससे देवकरणजी को हल्का–सा रूझान हुआ। इस प्रकार तीन चार दिन व्याख्यान श्रवण कर वे साध्वीजी के पास पहुंचे और बोले – महासतीजी! आप जिस तरीके से अपने सिद्धान्तों की व्याख्या कर रही हैं, सुनकर भ्रान्तियां दूर हो गई। इससे पहले मेरे साथ एक घटना घटी, उसने मेरे मन में तेरापंथ धर्म के प्रति नफरत पैदा कर दी। हुआ यूं कि खाटू में तालाब बनाने का प्रसंग उपस्थित हुआ। पानी के अभाव में मनुष्य तो जैसे तैसे अपना काम चला लेते हैं, पर बेचारे पशुओं की पीड़ा का समाधान नहीं हो रहा था। इसलिए मैंने तेरापंथी भाइयों से कहा, एक तालाब बनाया जाए, उसका आधा खर्चा मैं अकेला दे दूंगा, आधा खर्चा आप पूरे गांव के लोग मिलकर बांट लेना। आपके श्रावक बोले – हमारे महाराज तालाब बनाने में पाप बताते हैं। मुझे आज पता चला है कि वे आपकी ओट में खोट चला रहे थे, पर उस समय तो मैं इसे सच मान बैठा. .....।

जैनधर्म और तेरापंथ के सिद्धान्तों के सन्दर्भ समुचित जानकारी कर देवकरणजी धर्मप्रिय व्यक्ति बन गए। साधुचर्या की कठोरता और संयममय जीवनशैली ने उनको बहुत प्रभावित किया। उन्होंने अत्यन्त विनय अनुनय कर साध्वियों को अपने मकान में पधारने का आग्रह किया। अठारह दिन साध्वियां देवकरणजी के मकान के क्वार्टर में रही। सैकड़ों लोगों को उन्होंने धर्मानुरागी बनाया। जब वे वहां से विहार करने लगी, तब देवकरणजी ने आकर निवेदन किया – महाराज! आप सच्चे संत, आपके गुरु सच्चे और आपका धर्म सच्चा है, तभी तो आपके प्रभाव से भूत भी भाग गया।

साध्वियां इस रहस्य भरी बात को समझ नहीं सकी, तब देवकरणजी ने स्पष्ट करते हुए कहा – मैं आपको अपने बंगले में रख सकता था, पर क्वार्टर में रखा इसके पीछे एक उद्देश्य था। कुछ वर्ष पहले इस क्वार्टर में एक मुस्लिम भाई की मृत्यु हो गई थी, उसके बाद इसमें जो कोई भी रहा, डरकर भाग गया। आपने उठारह रात में क्या कभी कुछ देखा?

साध्वियों ने कहा – हम तो देव गुरु और धर्म के प्रताप से सुखपूर्वक रहे और तप जप स्वाध्याय ध्यान में मस्त रहे। हमें तो यहां भय का स्वप्न तक नहीं आया। देवकरणजी बोले – आपके सत्य, शील, संयम तप अनुत्तर है, मैं उसे प्रणाम करता हूँ।

जयसिंहपुर में

साध्वी सुन्दरजी चातुर्मास करने जयसिंहपुर पहुंची, उससे पहले जैन मतावलम्बी साधु–साध्वियों ने तेरापंथ के बारे में विरोध का वातावरण बनाने में अच्छी भूमिका अदा की। पर साध्वी सुन्दरजी का उत्साह भी कम नहीं था। वे तूफान बनकर भ्रांतियों के बादल उड़ाना चाहती थी। उन्होंने अच्छा श्रम किया और जयसिंहपुर के लोग उनसे अच्छे प्रभावित हुए। साध्वियों की बढ़ती लोकप्रियता ने विद्वेषी जनों के दिल में ईर्ष्या की जलन पैदा कर दी। वे इस टोह में रहने लगे कि जरा सी भूल या कोई अवसर दिखाई दे तो विरोध का वातावरण बनाएं। वैसे वे अपने काम में इतने सजग थे कि तेरापंथ के पैर जम न जाए, जो भी व्यक्ति सम्पर्क में आए उन्हें वे बरगलाने का प्रयत्न करते। श्रावण कृष्णा त्रयोदशी तक थोड़ी–थोड़ी वर्षा होती रही और साध्वियां अपने उपदेश की झड़ी लगाती रही, जिससे तेरापंथ की सुवास में कोई अन्तर नहीं आया। उसके बाद बारिस बन्द हो गई और उसका सारा श्रेय तेरापंथ के सिर पर मढ़ दिया गया।

विरोधियों ने वर्षा न होने का एक मात्र कारण तेरापन्थी साध्वियों का जयसिंहपुर में प्रवास माना। शहर में, आस–पास गांवों में और विशेष रूप से मराठी लोगों ने यह अंधाधुंध प्रचार किया। सबको यह भी कह दिया ये जब तक रहेगी, वर्षा नहीं होगी, आपके बाल बच्चे भूखों मर जाएगे, इसलिए इनको जल्दी यहां से निकालो. .....। पेम्पलेट, भाषण और चर्चा से सब भड़क उठे। साध्वियों को इधर–उधर जाते देखते तो पत्थर फेंकते, गालियां देते। कभी जलाने की योजना बनाते तो कभी मारपीटकर गांव से निकालने की।

साध्वियां जहां प्रवास कर रही थी, वह दुकान हीरालालजी नाम के व्यक्ति की थी। बहुत सारे लोग मिलकर उनके पास गए। इनको निकालो, नहीं तो आपकी दुकान जला देंगे, आपका अनिष्ट कर देंगे.....। हीरालालजी ने शांति से समझाया – मैं तेरापंथी नहीं हूँ, पर इनकी नीति स्पष्ट है, शुद्ध है। वर्षा होनी, न होनी इनके हाथ में कैसे होगी? समझ लो, आपकी दृष्टि में भगवान इनकी मुट्ठी में है, फिर इनको निकालने की ताकत किस में होगी। फिर भी विरोध शान्त नहीं हुआ। नए–नए रूप लेकर सामने आ रहा था।

चामत्कारिक प्रभाव

ज्यों–ज्यों वातावरण उग्र रूप ले रहा था, त्यों त्यों साध्वियां अपनी जप–तप की साधना अधिक करने लगी। वहां का श्रावक समाज संख्या की दृष्टि से कम था। आर्थिक दृष्टि से अधिक सक्षम नहीं था। पहली बार साध्वियों का चौमासा मिला था, इसलिए वे अपनी कमजोरी केन्द्र तक पहुंचाना नहीं चाहते थे। कुल मिलाकर साध्वियों की स्थिति अत्यन्त चिन्तनीय बन गई, पर साध्वी सुन्दरजी का मनोबल दृढ़ था और सहगामी साध्वियों का मनोबल थामे हुए थीं। एक दिन सभी साध्वियां जप स्वाध्याय कर रही थी, तभी एक भाई ने आकर सूचना दी – मैं सांगली से आ रहा था, कुछ लोग आपको घसीटकर, ठोक पीटकर निकालने की योजना बना रहे थे। आप अपनी सुरक्षा कर लें, इसलिए सूचित करने आया हूँ। साध्वियों के मन में अनिष्ट की आशंका और भय व्याप गया। लगभग एक घंटे का समय बीता होगा, एक जीप आकर दुकान के सामने रूकी। एक सुशिक्षित एवं शालीन व्यक्ति ने दर्शन कर कहा – साध्वीजी! मैं प्रिंसिपल धावतिया हूँ। मैं सांगली से चला, एक होटल पर अच्छी खासी भीड़ जमा थी और सबका उग्र रूप देखकर पूछा – आप सब कहां जा रहे हैं। वे बोले – "जयसिंहपुर में पांच मुंह बंधी साध्वियां आई है, उन्होंने वर्षा बन्द कर रखी है। हमने उनसे बहुत बार कह दिया, यहां से चले जाओ, पर वह मानती नहीं है। आज हम उनका काम तमाम करके आएंगे।"

मैंने उन सबको एकत्रित किया और अखबार दिखाते हुए समाचार सुनाया – गुजरात, सौराष्ट्र, राजस्थान और पंजाब में कहीं भी वर्षा नहीं है। बोलो! वहां वर्षा किसने बांधी? जैसे तैसे समझाकर वापिस गांव में भेजा है। साध्वीजी! मैं आपसे दो महीने पहले एक गांव में मिला था, इसलिए परिचित था।

जब आचार्यप्रवर को विरोधी वातावरण की जानकारी मिली – मुम्बई, मद्रास, बैंगलोर, खानदेश के श्रावक तथा महासभा के अधिकारी व्यक्ति जयसिंहपुर पहुंच

गए। लगभग पांच सौ की संख्या में श्रावक–श्राविकाओं की उपस्थिति में उन्होंने अधिवेशन किया और वातावरण को शान्त करने के प्रयत्न किए, पर सब बेकार गए। उन्होंने साध्वियों को कला का प्रशिक्षण देने के शिविरों का समायोजन किया तथा साध्वियों को चित्रकला, लिपिकला, सिलाईकला, रजोहरण निर्माण कला तथा पात्र निर्माण कला का विधिवत प्रशिक्षण दिया।

कलाकार साध्वी

साध्वी सुन्दरजी की पहचान कुशल कलाकार साध्वी के रूप में होती थी। वे संघीय हर कला में दक्ष थी, उनकी जीवन शैली भी कलात्मक थी। स्वयं कलाकार होने के साथ–साथ पास रहने वाली साध्वियों को भी कलाकार बनाया। वे लिपिकला में कुशल थी। उन्होंने लगभग सौ प्रतियां लिखी। उन्होंने अपनी भुवा की लड़की साध्वी कमलूजी को साध्वी–समाज में सर्वश्रेष्ठ लिपिकार बनाया। साध्वी कमलूजी की बहिन बहिन साध्वी सूरजकुमारीजी ने साध्वी पानकुमारीजी तथा साध्वी मानकुमारीजी एवं साध्वी यशोमतीजी को लिपिकला में निष्णात किया। इसके अलावा सिलाई रंगाई, रजोहरण एवं चित्रकला में विशेष दक्ष थी। जब उनकी अवस्था छोटी थी कलात्मक कृति तैयार की, तब पूज्य कालूगणी ने उनको 51 कल्याणक देकर प्रोत्साहित किया।

स्वाध्याय तप एवं तत्त्वज्ञान की गहराई

साध्वी सुन्दरजी की ज्ञानार्जन में बचपन से रूचि थी। उन्होंने दीक्षित होने के पश्चात आगम और तत्त्वज्ञान को अपने अध्ययन का विषय बनाया। तेरापंथ दर्शन की भी सूक्ष्म व्याख्याता थी। जब कभी जैन समाज के लोगों, साधु–साध्वियों के साथ तात्त्विक चर्चा करने का अवसर मिलता वे निर्भयता के साथ आगे रहती। उनका तत्त्वज्ञान आगमिक आधार पर था और जिनको भी तत्त्वज्ञान सिखाती, आगम का प्रमाण भी बताती। भ्रमविध्वंसन, सद्धर्भमंडन और सन्देहविषौषधि का गंभीरता से अध्ययन किया।

उन्होंने अपने जीवन में दो बार बत्तीसी का सांगोपांग मनन पूर्वक वाचन किया। वे प्रतिदिन के व्याख्यान भगवती, पन्नवणा, जीवाभिगम सूत्रकृतांग आदि आगमों के आधार पर करती। उनकी तत्वज्ञान मय सरल सुबोध व्याख्यान शैली का श्रोताओं पर अच्छा असर होता।

वे नियमित स्वाध्याय करती थी। स्वाध्याय ध्यान के प्रति वे सदा अप्रमत रहती। यही कारण है कि सं. 1975 से सं. 2036 तक उन्होंने प्रतिवर्ष दो से साढ़े तीन

लाख गाथाओं का स्वाध्याय किया। सं. 2005 से 2036 तक प्रतिदिन एक घंटा ध्यान करतीं।

उन्होंने तपस्या बड़ी नहीं की। पर उपवास वे प्रायः करती रहती थीं। वे स्वामीजी की तेरस और कालूगणी की छठ का यथासंभव उपवास करतीं। दस प्रत्याख्यान प्रतिवर्ष करने का लक्ष्य रखतीं, महीने में कई दिन छह विगय का त्याग रखती। उन्होंने अपने जीवन में 1531 उपवास, 28 बेले, 5 तेले और 1 चोला किया।

मुंह मांग्या पासा ढल्या

साध्वी सुन्दरजी का मन गुरुकुलवास में रहने के लिए सदा लालायित रहता था। आचार्यश्री तुलसी ने जब से दूर–दूर की यात्राओं पर साधु–साध्वियों को भेजना प्रारंभ किया, तब से वे प्रायः यात्रा पर ही रहीं। सं. 2030 का आचार्यवर का चातुर्मास हिसार था और साध्वी सुन्दर का चौमासा उस वर्ष आपने सिरसा के लिए घोषित किया। चातुर्मास सम्पन्न होने के बाद उस वर्ष का मर्यादा महोत्सव और आचार्यवर का चातुर्मास दिल्ली के लिए घोषित था। साध्वी सुन्दरजी के मन में मर्यादा महोत्सव के अवसर पर दिल्ली जाने की गहरी तमन्ना थी। उन्होंने आचार्यवर से निवेदन किया – भंते! आपने बम्बई, पूना, जयसिंहपुर, कच्छ, सौराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, मालवा, मेवाड़ आदि क्षेत्रों में देशाटन करने का भरपूर मौका दिराया। मुम्बई तीन बार जाकर आ गई। भारत में जन्म लेकर भारत की राजधानी नहीं देखी, अब आप दिल्ली दिखाने की कृपा कराएं।

साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने उनकी आन्तरिक भावना देखकर आचार्यवर को प्रार्थना की और दिल्ली देखने की तमन्ना साकार हो गई। भगवान महावीर की पच्चीसौवीं निर्वाण शताब्दी वर्ष की पृष्ठभूमि में होने वाला लाल किले के प्रांगण में आयोजित मर्यादा महोत्सव उनके जीवन की ऐतिहासिक धरोहर बन गई।

अन्तिम चातुर्मास

सं. 2036 का चातुर्मास करने साध्वी सुन्दरजी पीपाड़ पहुंची। श्रावण मास में उनको उदर व्याधि हुई। जिससे पेट में पीड़ा और भारीपन दोनों बढ़ गए। साथ ही साथ में सीने में भयंकर दर्द रहने लगा। इन दोनो बीमारियों ने उनके शरीर में जो स्थिति पैदा की, वे कहती, लगता है यह बीमारी लेकर जाएगी। पूरे चातुर्मास काल में बीमारी कभी मंद कभी तेज असर दिखाती रही पर वे सहज शान्त भाव से वेदना सहन करती रही।

शरीर तर–तर क्षीण हो रहा था, इसलिए उन्होंने संलेखना प्रारंभ कर दी। जब साध्वियां अथवा श्रावक पूछते कि आप संथारा करेंगे? वे शान्त भाव से कहती संथारा करने का भाव है, पर अभी नहीं। स्वर्गवास होने से ठीक बाइस मिनिट पहले उन्होंने कहा – मुझे संथारा करा दो। पूर्ण सचेतन अवस्था में दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने अनशन स्वीकार किया और 22 मिनिट पश्चात इस संसार से विदा हो गए। वह दिन था – मिगसर शुक्ला तीज।

साध्वी सुन्दरजी के विषय में उद्‌गार व्यक्त करते हुए आचार्यश्री तुलसी ने कहा – साध्वी सुन्दरजी हमारे धर्मसंघ की उदीयमान अग्रगण्या साध्वियों में एक थीं। उन्होंने पूज्य कालूगणी के हाथों दीक्षा स्वीकार की और उन्हीं के द्वारा अग्रगण्या बनाई गई। उन्होंने धर्मसंघ की अच्छी सेवा की। यात्राएं भी काफी की। इधर में कुछ समय से उनका स्वास्थ्य अनुकूल नहीं था। इस वर्ष पीपाड़ चातुर्मास में उदर रोग से उनका स्वर्गवास हो गया। अस्वस्थता में भी उन्होंने जिस मनोबल का परिचय दिया, वह साध्वी समाज के लिए सर्वथा अनुकरणीय है। पीपाड़ के लोगों ने भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार अच्छी सेवा की। सहयोगिनी साध्वियों ने भी उनका अच्छा साथ दिया। आचार्यवर ने उनके विषय में पद्यात्मक प्रस्तुति देते हुए कहा –

द्रव्य भाव सुन्दर, मृदुवाणी सुन्दर सती सुहाणी,
श्री कालूगणिवर – कर दीक्षित तत्त्वज्ञान की खाणी।
उदर रोग की असह्य वेदना सही मनोबल ठाणी,
छत्तीसै पीपाड़ शहर में, स्वर्गां गई सयाणी।।

22. साध्वी संतोकांजी (लाडनूं) (818)

साध्वी संतोकांजी का जन्म सं. 1958 कार्तिक शुक्ला 11 को राजस्थान के चूरु शहर में हुआ। उनके पिता का नाम जंवरीमलजी बैद था। चूरु का बैद परिवार सम्पन्न शालीन और सुप्रतिष्ठित परिवार था। संतोकांजी पांच बहिनें और चार भाई – नौ भाई बहिन थे। सभी भाई बहिनों का लम्बा कद और गौर वर्ण था। सभी की कदकाठी और आकार–प्राकार सौन्दर्य युक्त था। संतोकांजी का शारीरिक व्यक्तित्व प्रभावशाली और तेजस्वी था। ग्यारह वर्ष की अल्पायु में उनका विवाह लाडनूं के सुप्रसिद्ध भूतोड़िया परिवार में गुलाबचन्दजी भूतोड़िया के साथ हुआ। संतोकांजी को पितृपक्ष एवं श्वसुर पक्ष – दोनों में मान–सम्मान, स्नेह वात्सल्य, सुख सुविधा आदि सभी अनुकूलताएं उपलब्ध थीं। उनके पास सांसारिक भोग सामग्री की प्रचुरता और आर्थिक सम्पन्नता थी। फिर भी उनके मन पर धीरे–धीरे वैराग्य का रंग चढने लगा। पूर्वजन्म के शुभ संस्कारों का प्रभाव कहा जाए या उनके शुभ कर्मों का उदय वे संसार के रंग राग से सदा उपरत रही। विषय भोग उनको लुभा नहीं सके। शादी के पांच वर्षों के बाद संतोकांजी के मन में दीक्षा की उत्कट भावना जागी और उन्होंने अपने परिजनों के सामने अपनी भावना रखी।

राग पर विराग की विजय

संतोकांजी की वैराग्य भावना को विफल करने के लिए परिवार जनों ने अनुकूल और प्रतिकूल दोनों परिस्थितियों पर कसने का प्रयत्न किया। भौतिक प्रलोभन एवं मनोरंजन करने वाली विविध आयामी सुविधाएं देने के लिए उनके पिताश्री उन्हें कलकत्ता ले गए। वहां रुचिकर मनोज्ञ पदार्थों से रीझाने का प्रयास किया और सिनेमा, नाटक आदि से मोहित करने की कोशिश की पर सब बेकार गए। उन्होंने साधुचर्या के कष्टों से डराया तथा कड़ी कसौटी पर उन्हें कसा उन पर भी वे खरी उतरी। दूसरी ओर ससुराल पक्ष के लोगों ने भी अच्छा परिश्रम किया, वे भी असफल हो गए। आखिर पितृपक्ष और श्वसुरपक्ष के लोगों ने पूज्य कालूगणी को दीक्षा प्रदान करने के लिए निवेदन किया। आचार्यवर ने सम्यक् जानकारी के साथ वैराग्य भावना की परीक्षा की, उसके पश्चात् साधु प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दिया। युवावस्था में पति तथा समृद्ध घर–परिवार को छोड़कर तीव्र विराग के साथ साध्वी संतोकांजी की दीक्षा सं. 1977 चैत्र शुक्ला नवमी के दिन हुई, जिसे जनभाषा में रामनवमी कहते हैं। पूज्य कालूगणी ने वीरभूमि बीदासर में उस दिन आठ भाई–बहिनों को दीक्षित किया, उनमें एक साध्वी संतोकांजी थी।

प्रभावशाली व्यक्तित्व

दीक्षा लेने के पश्चात आठ वर्ष तक निरन्तर उन्हें गुरुकुलवास में रहने का सौभाग्य मिला। साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी के कुशल संरक्षण एवं वात्सल्यमय छत्रछांह में साध्वी संतोकांजी ने विविध आयामी विकास किया। वे प्रतिभासम्पन्न थीं, उनकी ग्रहणशीलता तेज थीं। वे कुशलकलाकार थी। वे प्रत्येक कार्य करने में अपनी बुद्धि एवं कला का अवश्य उपयोग करतीं। इसका साक्षी उनका सम्पूर्ण जीवन बना रहा।

साधु जीवन के प्रति उनका समर्पण भाव उन्नत था। गुरु–आज्ञा का पालन करना महाव्रत–पालन जैसा ही था। उन्होंने एक विशुद्ध आचारवान साध्वी के रूप में स्वयं को प्रतिष्ठित किया। साध्वाचार और मर्यादा के प्रति वे सतत जागरूक थीं। उनका बाह्य व्यक्तित्व प्रभावशाली था। गौर वर्ण, लम्बाकद, अंतस तक झांकती आंखे सबको आकर्षित करने वाली थी। उनकी वाणी और रहन सहन में अनुशासन गजब का था, इसलिए उनके पास बैठना भी एक कसौटी थी।

उनकी ज्ञान चेतना भी निर्मल थी। दशवैकालिक एवं उत्तराध्ययन उन्हें कंठस्थ था। भक्तामर, सिन्दूरप्रकर, नाममाला, सारस्वत व्याकरण की पंच संधि तथा रामचरित्र मुनिपत जैसे बड़े कई व्याख्यान उन्होंने याद किए। उनकी स्वाध्याय में अच्छी रुचि थी। वे समय–समय पर छोटी साध्वियों को स्वाध्याय के संस्कार देतीं और जब कभी किसी साध्वी को बातें करते देखती तत्काल उन्हें टोकती और स्वाध्याय की प्रेरणा भर देती। यही कारण था कि वे अपने तथा माजी महाराज की सन्निधि में जो भी साध्वियां रहीं उन्हें वे आगम कंठस्थ कराती तथा अच्छी स्वाध्यायी साध्वी बनातीं। वे प्रतिवर्ष लगभग सात लाख गाथाओं का स्वाध्याय करतीं। वे रोजाना तीन चार घंटे का समय स्वाध्याय में लगाती। उन्होंने दो बार आगम बत्तीसी का वाचन किया। वे हमेशा हजारों–हजारों गाथाओं का स्वाध्याय मातुश्री वदनांजी को कराती।

सेवा और श्रम का सामंजस्य

वे श्रमशील साध्वी थीं। उन्होंने दीक्षा लेते ही साधु जीवन के आवश्यक कार्यों में तथा सेवा में अपनी शक्ति का नियोजन किया। उनमें साहस था, कार्य करने की क्षमता थी इसलिए कठिन से कठिन काम हाथ में ले लेती। एक बार वे सुजानगढ में गर्मी के समय गोचरी गईं। लगभग सत्तर पचहत्तर घर फरसकर आईं। वे बहुत थक गईं और शरीर पानी–पानी हो गया। पूज्य कालूगणी ने उन्हें देखा और ग्रास देकर

वात्सल्य बरसाते हुए कहा – संतोकांजी! थक गई क्या? गुरु – कृपा का अमृतपान कर साध्वी संतोकांजी की थकावट दूर हो गई और बोली – गुरुदेव! मैं एक बार थक तो गई थी पर अब आपसे नई ऊर्जा मिल गई। उस दिन के बाद वे सदा हर कार्य में नई ताजगी के साथ संलग्न रहती, यह उनका जीवन व्रत बन गया।

संघ संघपति के प्रति अटल आस्था के साथ कर्म निर्जरा के कार्यों में अपना योगदान दूं यह उनकी प्रारंभ से ही भावना थी। एक दिन बाल साध्वी सन्तोकांजी को साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी ने पूछा – तुम 99 रूपए लोगी या एक रुपया? साध्वी संतोकांजी की बुद्धि तीक्ष्ण थी, तत्काल बोली – मैं 99 रुपए लूंगी? साध्वीप्रमुखा ने स्पष्ट करते हुए कहा – साधु जीवन में सेवाधर्म को 99 रूपया माना गया है और अध्ययन को एक रुपया बताया है। साध्वी संतोकांजी ने निन्यानवे रूपए की मांग ही नहीं की प्रत्युत सेवा के महान कार्य में अपने आपको सदा–सदा के लिए समर्पित कर दिया। गुरुकुलवास में अध्ययन के साथ साथ साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी की सेवा के दुर्लभ अवसर का लाभ उन्होंने खूब लिया। सब प्रकार की सक्षमता, गंभीरता, संघनिष्ठा और गुरुनिष्ठा देखकर पूज्य कालूगणी ने सं. 1985 में साध्वी संतोकांजी को अग्रगण्य बना दिया। उन्होंने अग्रगण्य बनकर आठ साल विभिन्न क्षेत्रों में विहरण कर प्रचार प्रसार किया। जन–जन में धर्म के प्रति आस्था जागृत की। अनेक व्यक्तियों को सम्यक्त्वी बनाया। अनेक व्यक्तियों को बारहव्रती श्रावक बनाया।

साध्वी संतोकांजी जीवन के ग्यारहवें वर्ष में विवाह बन्धन में बंधी और आठ वर्ष ससुराल में रहकर दीक्षित हुई। आठ वर्ष उन्हें गुरु सान्निध्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आठ वर्ष अगवाणी के रूप में उन्होंने विहरण किया।

जब अयाचित कृपा मिली

सं. 1993 के मर्यादा महोत्सव पर आचार्य तुलसी ने उनको पुनः गुरुकुलवास में रखा। सं. 1994 बीकानेर चातुर्मास में आचार्यप्रवर ने अपनी संसारपक्षीय मातुश्री को दीक्षा दी। तब आचार्यवर ने मातुश्री वदनांजी की सेवा में साध्वी सन्तोकांजी को नियुक्त किया। सं. 1994 से 2033 तक लगभग 40 वर्ष अनवरत छाया की तरह मातुश्री वदनांजी की सेवाकर साध्वी सन्तोकांजी ने संघ में सुयश कमाया और जागरूक सेवाभावी साध्वी के रूप में अपनी छाप जमाई। मातुश्री वदनांजी और साध्वी संतोकांजी देह से दो थी, अन्तरात्मा में ऐसी इकलासी विरल मिलती है। आचार्यश्री तुलसी के शब्दों में तन के कपड़े की तरह साध्वी संतोकांजी मातुश्री की सेवा में प्रथम दिन से अन्तिम दिन तक लगी रही। 'मां वदना' व्याख्यान में साध्वी संतोकांजी के

लिए जिन वजनदार शब्दों का प्रयोग किया है, उनमें यथार्थता की गुलाबी महक है –

संतोकां दिन रात मात सेवा साझी,
रख्यो हाथ में हाथ जीतगी बा बाजी,
बा बाजी, मन राजी – राजी,
सब सतियां री भगती साझी,
आपस रो इकलास रह्यो नित अविभाजी।।

सेवा–शिखर की ऊंचाई पर चढने में साध्वी सन्तोकांजी समर्पण भाव, तादाम्य भाव, सेवा के प्रति अदम्य उत्साह, कार्य कौशल और सूझबूझ के पंचामृत का वे सदा उपयोग करती रहीं। वे छोटे से छोटे काम को अंजाम देने में भी अपनी अप्रतिम सूझबूझ का परिचय देतीं। मातुश्री वदनांजी को ठंडा पानी पीने की रुचि रहती। विहार में चलते समय ठंडा पानी कैसे रह सकता है? वे तुम्बे में पानी डालकर उसे अपने सिर पर रखती। एक हाथ से माजी महाराज को सहारा देती और दूसरे हाथ में पानी भरा प्याला उल्टाकर स्थिरता से चलती। वह पानी जब ठंडा हो जाता माजी महाराज को पिलाती। उनकी सूझबूझ और कलापूर्ण तरीका देख सब दांतों तले अंगुली दबा लेते।

असंभव को संभव बना देती

उन्होंने माजी महाराज को हर दृष्टि से साता पहुंचाई। उनके साथ–साथ सदा वे छाया की तरह बनी रही। स्वाध्याय, ध्यान, जप और चितारना भी उनके साथ करतीं। मातुश्री को आसन–व्यायाम करना स्वयं सीखाती। जब भी मालिश आदि का काम पड़ता, स्वयं खड़ी रहकर करती तथा करवातीं। धूप में विहार के समय मोरपंख का छत्र हाथ में रखती, जिससे धूप से बचाव हो सके। उनकी उपज इतनी विलक्षण थी कि जो काम असंभव–सा लगता वे सहजता से कर लेतीं। सं. 2010 में आचार्यश्री तुलसी सिरियारी पधारे। आचार्यवर आचार्यभिक्षु के स्वर्गवास स्थल कच्ची हाट पर बैठकर प्रवचन दे रहे थे। आचार्यप्रवर धूप में विराज रहे थे। कई मुनियों ने वहां पर्दा लगाकर धूप से बचाव करना चाहा, किन्तु सफलता नहीं मिली। तभी साध्वीप्रमुखा लाडांजी ने कहा – साध्वीश्री संतोकांजी अभी नहीं पहुंचीं, यदि वे यहां उपस्थित होती तो अपनी सूझबूझ से पर्दा बांध देतीं। साध्वीप्रमुखा का कहना था कि मातुश्री के साथ साध्वी संतोकांजी पहुंच गईं। तत्काल कमर में बन्धे नांगले (डोरी) खोले और पर्दा लगाकर धूप मिटा दी। आचार्यवर ने स्मित मुस्कान बिखेरते हुए कहा – साध्वी

संतोकांजी की कला के सामने सब आश्चर्य चकित रह जाते है। जहां ये मुनि (अपने को मुच्छालेमर्द मानते हैं) हार गए, इन्होंने काम कर दिखा दिया।

पदत्राण का आविष्कार

समय के साथ परिस्थितियां भी बदलती रहती है। पहले तेरापंथ के साधु साध्वियों का अधिकतर विहार राजस्थान की रेतीली धरती पर ही प्रायः होता था। ज्यों ज्यों विहार क्षेत्रों का विस्तार हुआ। सड़क मार्ग पर चलने का काम पड़ा, पैर छिलने लगे, खून बहने लगा। प्रश्न उपस्थित हुआ पैरों की सुरक्षा कैसे की जाए? चारों ओर चिन्तन चलने लगा। साध्वी संतोकांजी ने अपनी सूझबूझ से एक उपाय ढूढ निकाला। उन्होंने मोटे कपडे की चप्पलनुमा मोचड़ी बनाई और उसके नीचे टायर लगाकर पदत्राण बनाया। जब आचार्यप्रवर को वह दिखाया तो साध्वोचित उपकरण देखकर प्रसन्नता व्यक्त की और वह पदत्राण वयोवृद्धा मातुश्री को पहनाने की अनुज्ञा प्रदान की। उसके बाद आवश्यकतानुसार टायर उपलब्ध होने पर पैरों की सड़कों से सुरक्षा करने के लिए पदत्राण सभी साधु साध्वियां पहनने लगे। पदत्राण के सन्दर्भ में आज तक जितना विकास हुआ है, उस दिन के बाद हुआ है।

कला के शिखर पर

सिलाई, रंगाई, रजोहरण, पन्ने रखने का पुट्ठा, सफेद हरे रंग की पाटियां, लकड़ी की कामी आदि बनाने में वे अत्यधिक दक्ष थी। उनके द्वारा की गई पछेवडी चोलपट्टे की सिलाई साफ सुथरी और अत्यधिक बारीक होती थी। उसकी अपनी पहचान थी। एक बार उन्होंने पूज्य कालूगणी की पछेवड़ी की सिलाई की। उसे देखकर कई साधुओं ने साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी से पूछा – इसकी सिलाई किसने की? साध्वीप्रमुखा ने बताया – साध्वी संतोकांजी ने की है। वहां उपस्थित मुनि डायमलजी ने कहा – साध्वीप्रमुखाजी! एक पछेवड़ी मेरे नेश्राय की साध्वी संतोकांजी से सिलवा दें। मैं जहां–जहां जिस–जिस गांव में जाऊंगा लोगों को दिखाऊंगा। आचार्यश्री तुलसी कई बार उनकी सिलाई को देखते और कहते साध्वी संतोकांजी की सुन्दर और महीन सिलाई के सामने मशीनें फेल है। उन्होंने लिपिकला और चित्रकला में भी महारत हासिल की। यद्यपि लेखन कार्य बहुत अधिक तो नहीं किया पर लगभग 500 पत्र लिखे तथा लगभग 30–35 चित्र भी बनाएं।

कुशल चिकित्सक

यद्यपि साध्वी संतोकांजी ने कभी स्कूल का दरवाजा नही देखा, पर शल्य

चिकित्सा में उनकी महारत किसी डाक्टर से कम नहीं थी। एक बार आचार्यश्री तुलसी लाडनूं में प्रवास कर रहे थे। उस समय वहां साधु–साध्वियां भी अच्छी संख्या में थे। साध्वी भीखांजी (1030) सरदारशहर को गाय ने भयंकर चोट लगा दी, जिससे उनके सिर का मांस फटकर बाहर निकल आया और खून बहने लगा। साध्वी संतोकांजी स्थानीय डॉक्टर कन्हैयालाल टंडन के वहां जाकर सामग्री तथा उपकरण लाई और डॉक्टर की देखरेख में शीघ्रता से 13 टांके लगाए। उपचार का सारा कार्य उन्होंने जिस कुशलता और तत्परता से किया, देखने वालों को लगा जैसे उन्हें लम्बे समय का डाक्टरी अनुभव हो।

साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी के आंख में मोतियाबिन्द आ गया। साध्वी सन्तोकांजी ने उनकी आंख का सफल ऑपरेशन राजलदेसर में किया। ऑपरेशन शत प्रतिशत सफल रहा और आंखों में पूर्णतया रोशनी आ गई।

साध्वी हुलासांजी 'राजलदेसर' के कमर के ऊपर एक तरफ मेद हो गई। उसमें पहले दर्द नहीं था, अतः उस ओर ध्यान नहीं दिया। फिर वह आकार में काफी बड़ी हो गई और उसमें दर्द भी बढ गया। डाक्टरों की राय में उसका ऑपरेशन जरूरी था। साध्वी सन्तोकांजी ने हिम्मत के साथ वह मेद निकाल दी और साध्वी हुलासांजी स्वस्थ हो गई। वैसे वे छोटे–मोटे ऑपरेशन जैसे फोड़े होने पर या छोटी–सी गांठ आदि के होने पर अपने–आप कर देती थी। वे औजार गर्म पानी में साफ किए हुए ही काम में लेना चाहती तथा स्वच्छता का विशेष ध्यान रखती थी।

जीवन की सफलता

आचार्यों की कृपा पाना अपने आप में महत्त्वपूर्ण है, पर आचार्यों का विश्वास पात्र बनना जीवन की उत्कृष्ट सफलता का प्रतीक है। इस सन्दर्भ में साध्वी संतोकांजी परम सौभाग्यशाली थी। आचार्यप्रवर मातुश्री की सेवा के विषय में पूर्ण निश्चिंत थे। दूसरी ओर माजी महाराज को इतना गहरा आत्मीय विश्वास था कि साध्वी संतोकांजी जो कहे वही सही है। उनके लिए एक ओर सारा संसार था, दूसरी ओर साध्वी संतोकांजी थी। भले सब कहकर थक जाते कि नवकारसी आ गई अब आप पारणा कर लो वे नहीं करती, उनकी नवकारसी/पौरसी (प्रहर) उसी समय आती, जब साध्वी संतोकांजी कहती। यही कारण था कि साध्वी संतोकांजी की सेवाएं शत प्रतिशत सफल रही और स्वयं आचार्यश्री उनकी सेवाओं से प्रसन्न हुए। आचार्यवर की प्रसन्नता कभी शब्दों का लिबास पहनकर सामने आती तो कभी पुरस्कार की महनीयता के साथ। आचार्यवर ने समय–समय पर उन्हें जो बक्सीसें

प्रदान की वे इस प्रकार हैं –

सं. 2006 जयपुर चातुर्मास में आचार्यप्रवर ने समुच्चय के कार्य करने तथा वजन उठाने की बक्सीस की।

सं.2021 मर्यादा महोत्सव शताब्दी समारोह के अवसर पर बालोतरा में लाडनूं चाकरी करने की बक्सीस की।

सं. 2023 बीदासर चातुर्मास में दवा/औषध लेने पर विगय की बक्सीस की।

सं 2032 बीदासर में पौष मास में आचार्यवर ने छह साध्वियों की बक्सीस की।

मातुश्री वदनांजी के दिवंगत होने के पश्चात जब सं. 2033 पडिहारा मर्यादा–महोत्सव के समय साध्वी संतोकांजी आदि सभी साध्वियों ने आचार्यवर के दर्शन किए तब उन्हें पुनः अग्रगामी बनाया और अगवाणी के टैक्स से (जैसे रजोहरण प्रमार्जनी व अन्य उपकरण लाने) मुक्त किया।

जीवन के आखिरी समय में उन्होंने लगभग ग्यारह वर्ष तक मोमासर में स्थिरवास किया। एक ओर स्वाध्याय, ध्यान, मौन और जप से वे अपनी नियमित साधना क्रम को जागरुकता से आगे बढाती रही और दूसरी ओर मोमासर श्रावक समाज में आध्यात्मिक एवं संघीय प्रेरणा भरती रही। यद्यपि एक अवधि में उनका स्वास्थ्य अवस्था एवं बीमारियों से कमजोर ही रहता, पर मनोबल मजबूत था। सहयोगी साध्वियों का योग अच्छा था उन्होंने तन मन से सेवाकर समाधि पहुंचाई और क्षेत्र की सार संभाल में अच्छी भूमिका निभाई।

उन्होंने अपने जीवन में बहुत बड़ी तपस्या नहीं कि फिर भी वे उपवास बेले आदि करती रहती थी। उन्होंने अपने जीवन में उपवास से लेकर दस की तपस्या तक लड़ी की तथा अन्य तप इस प्रकार किया

उपवास	–	2328	सात	–	1
बेला	–	119	आठ	–	3
तेला	–	2	नौ	–	2
चोला	–	10	दस	–	1
पंचोला	–	11	सोलह	–	1
छह	–	2			

सं. 2045 में आचार्यश्री तुलसी ने अक्षय तृतीया का विराट आयोजन मोमासर में किया और कुछ समय वहां विराजना हुआ। उस समय साध्वी संतोकांजी को सहज दर्शन और सेवा का लाभ मिल गया। उसी वर्ष ज्येष्ठ शुक्ला 10 को उनका स्वर्गवास हो गया। उनकी स्मृति सभा में उनके विषय में अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए आचार्यश्री तुलसी ने कहा – साध्वी संतोकांजी हमारे धर्मसंघ की वयोवृद्धा साध्वी थी। उनका सांसारिक सम्बन्ध चूरु और लाडनूं दोनों से था। वे चुरु के बैद परिवार की बेटी थी और लाडनूं के भूतोड़िया परिवार की बहू थी। वे धर्मसंघ की आचारनिष्ठ, सेवाभावी, कलाकुशल साध्वियों में एक थीं। मातुश्री वदनांजी की उन्होंने चालीस वर्षों तक बड़ी लगन एवं निष्ठा से सेवा की। इधर ग्यारह वर्षों से वे मोमासर में स्थिरवासी थी। मोमासर के लोगों ने भी उनकी सेवा का अच्छा लाभ लिया और उनके साथ रहने वाली साध्वियों ने मनोयोग पूर्वक उनकी सेवा की। इस बार अक्षय तृतीया के अवसर पर हमने उनको दर्शन दे दिए। आखिरी समय में शासन गौरव साध्वी श्री कमलूजी 'जयपुर' का उन्हे योग मिला, इससे भी उन्हें बड़ी समाधि मिली। स्वीकृत संयम साधना को निर्विघ्न रूप से सम्पन्नकर देना साधु जीवन की उत्कृष्ट सफलता है।

23. साध्वी चूनांजी बीदासर (819)

साध्वी चूनांजी चन्देरी/लाडनूं के सुप्रसिद्ध खटेड़ परिवार की पुत्री थी। उनके दादा तखतमलजी खटेड़ दृढधर्मी और गहरी आस्था वाले श्रावक थे। उनके पिता का नाम जीवनमलजी था। जिन्होंने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं में प्रथम आठ प्रतिमाओं की अनेक बार साधना कर श्रावक जीवन की गरिमा बढाई। उनके घर में सं. 1957 में बालिका ने जन्म लिया, जिसका नाम भंवरी रखा गया। भंवरी को बचपन से घर में धार्मिक वातावरण मिला और वृद्ध साध्वियों के सतत प्रवास से सहज धार्मिक संस्कार मिले। शिक्षा की दृष्टि से वह युग वैसे ही पिछड़ा हुआ था और लड़कियों को तो बिलकुल पढाया ही नहीं जाता था। बालिका भंवरी को घर पर ही अक्षर ज्ञान कराया गया। वे जब पांच या छह साल की थी तब उनकी सगाई बीदासर के थानमलजी मुणोत के सुपुत्र सोहनलालजी से कर दी गई। तेरह साल की किशोरावस्था में उनका बड़े ठाटबाट एवं धूमधाम से विवाह हो गया। दोनों परिवार आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित थे। नववधु के रुप में भंवरी देवी ने ससुराल में अच्छा सुयश प्राप्त किया। वे सहज विनम्र थीं, इसलिए परिवार के छोटे–बड़े सभी सदस्य उनसे प्रभावित थे। सेवाभावना और गृहकार्य में दक्षता प्राप्त कर उन्होंने सबके मन को जीत लिया। तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह थी उनके विवाह के बाद मुणोत परिवार में वैभव और सुख–सुविधाजनक सामग्री बढती ही गई।

वैधव्य और वैराग्य

भंवरीदेवी का गार्हस्थ्य जीवन सुखपूर्वक प्रारंभ हुआ, चारों ओर शांति एवं आनन्द का वातावरण बना हुआ था, अचानक दुःख की काली घटा घिर आई। शादी हुए मात्र पांच वर्ष का समय बीता था कि वे वैधव्य के अभिशाप से ग्रसित हो गई। विधि का अचानक ऐसा कुचक्र चला कि उनके पति काल कवलित हो गए। इस असामयिक घटना ने उनको ही नहीं समूचे परिवार को प्रभावित किया। सब इस वज्राघात से हताश, निराश और व्यथित हो गए। मुणोत परिवार ने वियोग के इस गहरे जख्म को भरने के लिए धर्म की शरण ली तथा वे अपने कृत कर्मों का योग मान स्वयं को धीरे–धीरे आश्वस्त करने का प्रयत्न करने लगे।

इसी बीच श्रद्धास्पद कालूगणीराज का बीदासर चातुर्मास हुआ। मुणोत परिवार के लिए यह चातुर्मास वरदान बन गया। बहिन भंवरी के शोक संतप्त मन को वैराग्य का अमृत उपलब्ध हुआ। मातुश्री साध्वी छोगांजी एवं साध्वी कानकंवरजी ने ज्ञान–ध्यान के साथ जीवन निर्माण का उपदेश दिया, जिससे भी भंवरी देवी कुछ

शान्त आश्वस्त हुई। दो वर्ष बाद कालूगणी का पावस लाडनूं की पुण्य धरा पर हुआ। वहां भी साध्वियों का सतत सान्निध्य, त्याग वैराग्यमय प्रेरणा मिलती रही। दूसरी ओर आचार्यवर के दर्शन, व्याख्यान, सेवा और शिक्षा का लाभ उठाते हुए भंवरी देवी ने अपने–आपको त्याग प्रव्याख्यान से भावित किया।

आचार्यवर का पावन सान्निध्य और साधु साध्वियों से प्रेरणा का सिंचन पाकर भंवरीदेवी में वैराग्य–अंकुर प्रस्फुटित हो गया। साधु जीवन के लिए आवश्यक तत्त्वज्ञान प्रतिक्रमण आदि सीखे। उनकी प्रकृति संकोचशील थी, वे अपने मन की बात खुलकर कहने के लिए महीनों तक अवसर देखती रही पर कह नहीं सकी। आखिर एक दिन हिम्मतकर उन्होंने अपने अभिभावक जनों के पास अपनी भावना रखी और दीक्षा की अनुमति मांगी। पिता और श्वसुर ने सर्वप्रथम साधु जीवन की कठोरता, परीषह की दुरूहता की जानकारी दी और अपने आपको तोलने की बात कही। थानमलजी ने सांसारिक सम्बन्धों एवं सुविधाओं की ओर आकर्षित करते हुए कहा – देखो हमारे घर में किसी प्रकार का अभाव नहीं है। मैं आज ही तुम्हारे नाम से एक लाख रूपए जमा कर देता हूँ और तुम्हारे देवर कानमल को तुम्हारी गोद में रख देता हूँ। तुम सुख सुविधापूर्वक श्रावक धर्म का पालन करो, धर्मध्यान करो और साधना–पथ पर आगे बढती रहो। पितृपक्ष के लोगों ने भी उनकी कसौटी करने में कमी नहीं रखी। लेकिन बहिन भंवरी का वैराग्य रंग गहरा था, संकल्प दृढ था और साधना के कठोर पथ पर चलने की पूरी तैयारी थी। इसलिए वे संकल्प से एक इंच भी इधर उधर नहीं हुई, प्रत्युत सबको मन, वाणी और कर्म से यह विश्वास दिला दिया कि वे स्वीकृत संकल्प के प्रति आत्मना समर्पित है।

भव्य दीक्षा समारोह

दोनों पक्षों के परिजनों को जब सम्पूर्ण विश्वास हो गया, उन्होंने अष्टमाचार्यश्री के चरणों में सारी स्थिति निवेदित की और दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। पूज्य कालूगणी ने साधु प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे दिया। उनके ससुरजी थानमलजी की इच्छा थी कि उनकी दीक्षा बीदासर में हो। श्रावक सेठ थानमलजी की भावना रखते हुए आचार्यवर ने दीक्षा बीदासर में होगी, यह घोषणा कर दी। दोनों ओर सम्पन्न घराने थे तथा सेठ थानमलजी ने बड़े उत्साह के साथ दीक्षा महोत्सव पर उदारता का परिचय दिया। कहते है उस समय उन्होंने खुले हाथों हजारों–हजारों रुपए खर्च किए तथा बड़े ठाट–बाट से दीक्षोत्सव मनाया। सं. 1977 चैत्र शुक्ला नवमी को भंवरीदेवी ने पूज्य कालूगणी के कर–कमलों से संयम–श्री स्वीकार की। दीक्षित

होने के पश्चात उनका नाम साध्वी चूनांजी रखा गया।

विकास यात्रा

साध्वी जीवन के प्रारंभ में कुछ महीने उन्हें गुरुकुलवास में रहने का सौभाग्य मिला। वहां साधु जीवन के लिए आवश्यक आचार–विचार का प्रशिक्षण प्राप्त किया। फिर आचार्यवर ने उनको साध्वी सुवटांजी (584) राजलदेसर के साथ भेज दिया। उन्होंने छह चातुर्मास साध्वी सुवटांजी के साथ किए तथा चार वर्ष वे साध्वी चांदकंवरजी के पास रही। इन दस वर्षों की अवधि में साधुचर्या, मर्यादा तथा विनय व्यवहार में दक्ष बनकर ज्ञान के क्षेत्र में विकास किया। दशवैकालिक सूत्र, 20 थोकड़े तथा 40 छोटे बड़े व्याख्यान आदि कंठस्थ किए। स्वाध्याय में उनकी अच्छी रुचि होने से उनका कंठस्थ ज्ञान सदा सुरक्षित रहा। सिलाई, रंगाई एवं व्याख्यान आदि कला में भी उन्होंने अच्छी प्रगति की। उनके विकास को और योग्यता को देखकर आचार्यश्री कालूगणी ने सं. 1988 में उनका सिंघाड़ा बनाया तथा पहला चातुर्मास समदड़ी (मारवाड़) में कराया। लम्बे समय तक अग्रगण्या के रूप में विहरणकर उन्होंने धर्मसंघ की प्रभावना की तथा जन कल्याण में अपनी क्षमता का नियोजन कर संघ सेवा की।

आत्म साधना के पथ पर वे अनवरत ज्ञान, ध्यान, जप एवं स्वाध्याय से आगे बढती रही उनकी आस्था बहुत गहरी थी और भयभीत मनोवृत्ति की नहीं थी। समय आने पर वे अभय और साहस का परिचय देती।

श्रद्धा एवं साहस की प्रतीक

सं. 1991 में उनका चातुर्मास भगवतगढ था। कार्तिक पूर्णिमा की रात्रि में साध्वी चूनांजी व्याख्यान दे रही थी। अचानक आसपास के पहाड़ो से लड़ते–लड़ते दो शेर गांव में आ गए। सभा में भय के मारे भयंकर हलचल मच गई। लोग अपनी जान बचाने के लिए इधर–उधर भाग गए। पूरा प्रवचन स्थल खाली हो गया, पर साध्वी चूनांजी जप में तल्लीन बनी वहीं शांत भाव से बैठी रहीं। उन्होंने न हो हल्ला किया और न हलचल मचाई, शांत भाव से 'ऊँ भिक्षु' का जप करती रही। थोड़ी देर इधर–उधर घूमता हुआ एक शेर तो जिधर से आया था उधर ही भाग गया। दूसरा ग्राम से होकर दूसरे जंगल में भाग गया। धर्म का प्रभाव, ऊँ भिक्षु का चमत्कार और साध्वी चूनांजी की निडरता, स्थिरता, एकाग्रता देख गांव के लोग बहुत प्रभावित हुए।

उनका साहस भी अद्‌भुत था। सं. 1997 में उनका चातुर्मास उज्जैन में था।

एक दिन शौचार्थ जंगल गईं। वहां एक बदनीयत युवक आ गया। उसने साध्वीजी का हाथ पकड़ना चाहा, तभी साध्वी चूनांजी ने अदम्य साहस के साथ सिंहनी की तरह जो ललकार लगाई, वह व्यक्ति उसे सुनते ही भाग गया। एक मिनिट भी वहां नहीं टिक पाया। स्थानीय लोगों को जब इस घटना की जानकारी मिली, उन्होंने व्यक्ति की पहचान कर ली और जघन्य कार्य के लिए कानूनी कार्यवाही की सोची। साध्वी चूनांजी ने श्रावक समाज को मनाही कर दी, क्योंकि उनके कारण से किसी को कष्ट झेलना पड़े, ऐसा साध्वीजी नहीं चाहती थी।

जप में गहरी आस्था

उनका मन सहज सरल एवं पवित्र था। वे जप की साधना भी अच्छी करती थी। कभी उनको जप करते–करते आभास भी होता था। कभी आवाज भी सुनाई देती थी, वह सत्य भी निकलती। सं. 2000 में उनका चातुर्मास टॉडगढ था। साध्वी चूनांजी जप में तल्लीन थीं। अचानक उनको एक आवाज सुनाई दी – तेरह तालाब एक साथ टूटेंगे, पर नुकसान नहीं होगा, घबराना मत। वे आवाज सुनकर स्तब्ध–सी हो गई। साथ वाली साध्वियों को उन्होंने सारी बात बता दी और सबको जप करने की हिदायत दी। तीन–चार दिन तक साध्वियों ने जप किया, श्रावक श्राविकाओं को भी प्रेरणा दी। साफ मौसम की अनुकूलता देख साध्वियों ने अन्दाज लगाया कि संभव है, तप त्याग से विपत्ति टल गई। पांचवे दिन अचानक चारों ओर भारी वर्षा हुई। आसपास के गांवों में उस भयंकर वर्षा से एक–एक कर तेरह तालाब टूट गए, पर टॉडगढ में बिलकुल भी नुकसान नहीं हुआ। आस पास के गांवों में बहुत नुकसान हुआ। साध्वी चूनांजी को हुआ आभास, तथा भजन व तप–जप के प्रभाव ने टॉडगढ के लोगों को एक प्राकृतिक आपदा से सहज सुरक्षा उपलब्ध हो गई।

साधना की सही कसौटी प्रतिकूल परिस्थिति में होती है। व्यक्ति प्रतिकूलता न आने पर शांत, स्थिर और अविचलित रहे, कोई बड़ी बात नहीं। लेकिन परिस्थिति आने पर शांत रहकर विवेक का परिचय देना सचमुच महत्त्वपूर्ण बात होती है। साध्वी चूनांजी उन दिनों पंजाब में थी। आचार्यश्री तुलसी ने सं. 2015 का उनका चातुर्मास पंजाब के जगराओं गांव के लिए घोषित किया। वहां अमरसरिया अग्रवाल भाई था। उसके मकान में प्रेतात्मा का उपद्रव रहता था और वह प्रेतात्मा उसकी धर्मपत्नी को काफी कष्ट पहुंचाती थी। उसने किसी से सुन रखा था कि तेरापंथी साधु यदि उस मकान में रह जाए तो उनकी साधना से प्रेतात्मा का कष्ट समाप्त हो सकता है। वह अनेक प्रयत्न करके थक चुका था। उसके दिमाग में यह बात इसलिए जंच गई कि

तेरापंथी साधु–साध्वियों का आचार–विचार ऊंचा है। संभव है, प्रेतात्मा का वहां जोर न चले। वह अग्रवाल भाई तेरापंथी श्रावकों के पास गया और कहा – इस बार आपके साध्वीजी का चातुर्मास हमारे मकान में करा लीजिए, मैं आपको अपना मकान दे दूंगा। उस समय तेरापंथ समाज के पास अपना मकान था नहीं, उन्होंने हां कर दी।

साध्वी चूनांजी चातुर्मास करने जगराओं आ गईं। उसी मकान में ठहरी। कुछ दिनों बाद उन्हें ज्ञात हुआ कि अमरसरिया अग्रवाल भाई ने प्रेतात्मा द्वारा दिए जाने वाले कष्टों से छुटकारा पाने के लिए साध्वियों को यहां ठहराया है। कुछ भय का वातावरण बना और उस उपद्रव से उनके साथवाली साध्वियां डरने लगी और वे साध्वी चूनांजी को स्थान परिवर्तन के लिए कहने लगी। इधर वह अग्रवाल भाई बार–बार साध्वीजी को निवेदन करता – आपको चातुर्मास यहीं करना है, बीच में आपको कहीं नहीं जाना है। साध्वी चूनांजी के सामने दुविधा उत्पन्न हो गई। उन्होंने सोचा – जब इस मकान में रहना स्वीकार कर लिया तो अब चौमासे के बीच में यहां से जाना उचित कैसे रहेगा? मकान मालिक और उनसे संबंधित लोगों में तेरापंथी साधु साध्वियों के प्रति अविश्वास और अश्रद्धा के भाव पैदा होंगे। इसलिए स्वीकृत निर्णय के प्रति दृढ रहना चाहिए। उन्होंने अपनी सहगामी साध्वियों को समझाया और धैर्य बनाए रखने के लिए कहा। साथ ही साथ अपनी जप–तप साधना के लिए सबको प्रेरणा दी। संयोग की बात थी, कि कुछ दिनों के पश्चात उपद्रव अपने आप शांत हो गया और शय्यातर की पत्नी भी अपने आपको उपद्रव मुक्त अनुभव करने लगी। इसके साथ शय्यातर परिवार की आस्था दृढ बन गई और उन्होंने तेरापंथ की गुरुधारणा कर धन्यता का अनुभव किया।

विवेकपूर्ण मृदुव्यवहार

साध्वी चूनांजी समझदार विवेक सम्पन्न होने के साथ मृदु व्यवहारी थीं। उनमें कठोर प्रकृति वाले व्यक्तियों को परोटने की अद्‌भुत क्षमता थी। अपनी सहगामी साध्वियों से उन्हें सहज संतुष्टि थी। उन्हें अपनी संयम साधना तथा आत्मसमाधि से संतोष था। उन्होंने अपने जीवन में अधिक तपस्या नहीं की पर उपवास बेला करती रहती थी। सं. 2020 में उनका चौमासा आमेट था। वहां वे अस्वस्थ हो गई। शूगर ब्लडप्रेशर आदि व्याधियों ने उनके शरीर को आक्रांत कर लिया। उसके पश्चात उनका स्वास्थ्य कम सहयोगी रहा। पर मनोबल मजबूत होने के कारण धीरे धीरे विहरण करतीं रहीं।

वे मेवाड़ से विहार कर थली में आ गई। वृद्धावस्था और अस्वस्थता के कारण

तीन वर्ष सुजानगढ में प्रवास किया। उसके पश्चात वे चार वर्ष सांडवा गांव में रहीं और अन्तिम चार वर्ष बीदासर में माजी महाराज के उपपात में रहीं। उनकी विशेषता यह थी कि सांडवा जैसे छोटे गांव में रही, तब जो आनन्द और आत्मसमाधि थी वही बीदासर में रही। उन्हें कहीं अभाव और असंतोष नहीं होता था।

सं. 2027 में दक्षिण यात्राकर आचार्यश्री तुलसी बीदासर पधारे। उस समय उनके मन में गुरु दर्शन की उदग्र भावना जाग गई। बीदासर और सांडवा के बीच मात्र पांच कोश की दूरी है। वे दश दिन लगाकर वह रास्ता पार कर पाई। मर्यादा महोत्सव का भव्य दृश्य देखकर और लम्बे समय तक गुरु सेवा कर धन्य बन गई। आचार्यप्रवर ने उस वर्ष उन्हें बीदासर में ही रखा। दूसरे वर्ष मर्यादा महोत्सव के लिए गंगाशहर पधारते समय आचार्यवर ने उनको वात्सल्य के साथ पूछा – चूनांजी! यहीं रहना है या विहार करना है?

साध्वी चूनांजी ने अत्यन्त सरलता के साथ कहा – गुरुदेव! मैं सांडवा से बीदासर मात्र दर्शन करने के लिए आई थी, यहां रहने के लिए नहीं आई थी। आप जैसा भी आदेश दें मुझे वही शिरोधार्य है। विहार की बात सुनकर बीदासर के श्रावक नेमीचंदजी दूगड़ जो गवैया के नाम से प्रसिद्ध थे। फक्कड़ मनोवृत्ति के आदमी थे। वे आचार्यश्री के पास आए और बोले – आचार्यश्री! क्या आप साध्वी चूनांजी को विहार कराने की बात सोच रहे हैं। आचार्यवर ने कहा – हां विचार कर रहे हैं। यह सुनकर नेमीचंदजी से रहा नहीं गया और कहा – गुरुदेव! साध्वी चूनांजी लखपति बाप की बेटी और करोड़पति घर की बहू है। मुनोत परिवार में तीसरी पांति की हकदार है। फिर यह नोहरा जिसमें साध्वियां विराज रही है, इन्हीं के श्वसुर का है। बीदासर में किसी के लिए कमी नहीं है, फिर साध्वी चूनांजी के लिए किस बात की कमी है, जो आप उन्हें विहार करा रहे हैं।

श्रावक नेमीचंदजी की समयोचित बात ने एक नए वातावरण का निर्माण कर दिया और आचार्यप्रवर ने उसी समय साध्वी चूनांजी को बीदासर में रहने का आदेश दे दिया। उसके बाद वे अंत तक मातुश्री वदनांजी की पावन सन्निधि और श्वान सुथान (मुनोत नोहरे) में सुख–समाधि पूर्वक रही। सं. 2031 मृगसर शुक्ला 6 को चौवन वर्ष का संयम जीवन पालनकर समाधिस्थ भावों में अचानक स्वर्गवासी हो गई। एक ज्योतिषी ने उनको बताया था कि आपकी 74 वर्ष की आयु है, वह अक्षरशः सत्य साबित हो गई। जिस दिन उनका स्वर्गवास हुआ चौहत्तरवे (74) वर्ष की सम्पन्नता में मात्र दो दिन अवशेष थे।

24. साध्वी निजरकंवरजी लाडनूं (820)

साध्वी निजरकंवरजी लाडनूं के सुप्रसिद्ध बम्बू वाले वैद परिवार की सुपुत्री थी। उनके पिता का नाम धनराजजी वैद था। उनके परदादाश्री बुधमलजी वैद शासन भक्त श्रावक थे। उनके लिए तेरापंथ धर्मसंघ सर्वोत्कृष्ट था। उसके सामने पारिवारिक दायित्व अथवा खुशी के सारे अवसर गौण थे। वे पूरी जिम्मेदारी के साथ संघ सेवा में समर्पित थे। उनके जीवन की एक बड़ी साध थी – आचार्यों के चरणों में अपनी संतान को साधु साध्वी के रूप में समर्पित करने की। इस परिवार ने संघ को छह संतान समर्पित की पर वे अपने हाथ से एक भी पोती प्रपोत्री को दीक्षा नहीं दे पाए। उन्होंने अपनी पौत्री निजरकंवर को आंखों से देख तो लिया था पर साध्वी के रूप में नहीं देख पाए। निजरकंवर का जन्म सं. 1964 पौष कृष्णा 8 को लाडनूं में हुआ। उनकी माता का नाम सूरजदेवी वैद था। उनके दादा सदासुखजी संघनिष्ठ और सामाजिक दृष्टि से लब्धप्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनके आठ पुत्र थे उनमें ज्येष्ठ पुत्र थे धनराजजी।

धनराजजी बिना पढ़े लिखे वैज्ञानिक थे। आचार्यश्री तुलसी उनको अनपढ़ वैज्ञानिक कहते थे। उस युग में उनकी सोच वैज्ञानिक थी, वे अपनी घर की प्रयोगशाला में सतत अनुसंधान करते रहते थे। उनका ज्योतिषज्ञान बहुत गंभीर था। आयुर्वेदिक औषधियों के जानकार थे। वे विविध विषयों का गंभीर अध्ययन करते रहते थे। उस युग में उनका पुस्तकालय विशाल था। कुल मिलाकर कहा जा सकता है वे बौद्धिक, वैज्ञानिक और चिन्तनशील व्यक्तित्व के धनी थे। तेरापंथ के आचार्यों की उन पर महती कृपा रही। आचार्यश्री डालगणी, कालूगणी और तुलसीगणी के वे विश्वास पात्र और कृपा पात्र श्रावक रहे। आचार्यश्री महाप्रज्ञ (उस समय के मुनि नथमलजी) और मंत्री मुनि मगनलालजी के पास बैठकर घंटों चिन्तन मंथन करते।

निजरकंवरजी को श्रद्धा भक्तिमय वातावरण के साथ घर में बौद्धिक वातावरण उपलब्ध हुआ। लाडनूं में वृद्ध साध्वियों का सान्निध्य प्राप्त था ही, घर में सहज धार्मिक संस्कार मिलने से बालिका निजर की धर्म के प्रति सहज रूचि बन गई। उनकी माता श्रीमती सूरजदेवी एक कुशल गृहिणी होने के साथ संस्कार निर्मातृ मां थी। सरलता, धीरता गंभीरता और समझदारी उनको नैसर्गिक रूप से प्राप्त थी। एक बार वे वृद्ध साध्वियों के उपपात में सामायिक कर रही थी, स्वाध्याय करते–करते उनके शरीर पर पक्षाघात का आक्रमण हो गया। वे घबराई नहीं, समता भाव के साथ सामायिक पूरी की और जब तक सामायिक नहीं आई जप करती रही। बालिका निजरकंवर का जीवन मां के गुणों से प्रभावित था।

वैराग्य और दीक्षा

जीवन में वैराग्य आना बहुत कठिन है पर वैराग्य की निमित्त कब कौन–सी घटना बन जाए, कहा नहीं जा सकता। बालिका नजरकंवर की सहेली थी कुमारी सुन्दर। वे गुरु–दर्शन करने गई हुई थी और वहीं उनकी दीक्षा हो गई। उनकी दीक्षा और उस उपलक्ष्य में होने वाले आयोजनों ने उनको प्रभावित किया। विशेष रूप से सहेली का साथ न रहना ही वैराग्य का निमित्त बन गया। वैराग्यभाव होने पर भी वे अपने पिता धनराजजी को कहने की हिम्मत नहीं जुटा सकी। धनराजजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व की पूरे परिवार में धाक थी। उनके सामने अपनी बात रखने में भी हिम्मत आवश्यक थी। निजरकंवर ने बहुत दिनों की तैयारी के बाद एक दिन बात–बात में अपनी दीक्षा की भावना बता दी। लेकिन परिवार वालों ने उस पर ध्यान केन्द्रित ही नहीं किया, उन्होंने मात्र बचकानी हरकत समझकर उपेक्षा कर दी। अब निजरकंवर के सामने कठिनाई उपस्थित हो गई क्या करें?

उस समय पूज्य कालूगणी सुजानगढ़ में प्रवास कर रहे थे। एक दिन अपने अभिभावकों को पूछे बिना वे अपनी मौसी के साथ सुजानगढ़ चली गई और वहां मौका देखकर उन्होंने अपनी वैराग्य भावना श्री चरणों में रख दी। कालूगणी ने धनराजजी की पुत्री का परिचय प्राप्त कर दृढ संकल्प और वैराग्य भाव देखकर उसी समय महती कृपा की और श्रमण प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे दिया। ज्योहीं उसकी खबर वैद परिवार को मिली, उनके दादा सदासुखजी का मन खिन्नता और आवेश से भर गया। उन्हें पोती का बिना पूछे सुजानगढ जाना और आचार्यवर को दीक्षा की अर्ज करना गवारा नहीं लगा। सचमुच यह स्थिति उनके लिए कष्टकर हो गई। वे अपने विचारों के उतार चढ़ाव से व्यथित हो, एक दिन मंत्री मुनि मगन लालजी को उलाहना देने के लिए उनके पास पहुंचे। मंत्री मुनि ने गुरु–कृपा का प्रसाद बताते हुए कहा – यह तो तुम्हारे परिवार का सौभाग्य है कि गुरु ने तुम लोगों पर इतना विश्वास किया है। दूसरी बात आचार्यवर को आपकी पोती योग्य लगी तभी तो उसे सहज आदेश मिल गया। मुनिश्री मगनलालजी की बात उन्हें जंच गई। वे आचार्यश्री के पास दीक्षा की प्रार्थना करने गए। उसी समय कालूगणीराज ने दीक्षा प्रदान करने की घोषणा कर दी। तीसरे दिन ही दीक्षा महोत्सव था – ऐसा लगा कि दीक्षा के लिए मुहुर्त हाथ पसारे ही खड़ा था।

निजरकंवर ने सं. 1978 ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को जन्मभूमि के प्रांगण में अष्टमाचार्य श्री कालूगणी द्वारा विशाल जन–मेदिनी के बीच भागवती दीक्षा स्वीकार की। अब उनकी पहचान साध्वी निजरकंवरजी के रूप में होने लगी। दीक्षित होने के बाद उन्हें गुरुकुलवास का मौका कुछ महीनों का ही मिला। जितने दिन वे साध

वीप्रमुखा कानकुमारीजी के सान्निध्य में रहे उन्हें साध्वाचार की नींव को मजबूती देने वाला प्रशिक्षण मिला तथा ज्ञानार्जन के क्षेत्र में प्रवेश करने का मौका मिला। सबसे महत्त्वपूर्ण बात आचार्यवर की सहज अच्छी कृपा मिली।

बहिर्विहार : जीवन निर्माण

दीक्षा के कुछ समय पश्चात आचार्यश्री कालूगणी ने उनको साध्वी गंगाजी (मांडा) के साथ रहने का आदेश दिया। साध्वी गंगाजी तेरापंथ धर्मसंघ की ख्यातनामा साध्वी थी। उनकी गणना विशिष्ट साध्वियों से होती थी। उनका आचार कौशल, व्यवहार कौशल, निर्माण कौशल और निष्ठा कौशल अनुपम था। साध्वी निजरकंवरजी की जीवन पोथी का निर्माण साध्वी गंगाजी ने किया। उन्होंने ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना के साथ व्यक्तित्व निर्माण के विरल गुणों का प्रशिक्षण प्राप्त किया। साध्वी निजरकंवरजी को साध्वी गंगाजी के सान्निध्य में सतरह वर्ष रहने का अवसर मिला। इस अवधि में उन्होंने आठ आगम – दशवेआलियं, उत्तराध्ययन, नन्दी, आचारांग सूत्रकृतांग, व्यवहार, वृहत्कल्प और आवश्यक कंठस्थ किए। साध्वी गंगाजी के सान्निध्य में बत्तीसी का चिन्तन मनन पूर्वक वाचन किया। आगम के अतिरिक्त 17 थोकड़े, व्याख्यान तथा कुछ संस्कृत ग्रन्थ कंठस्थ किए। उनको लगभग 23 हजार गाथाएं याद थी। कंठस्थ ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिए पश्चिम रात्रि में उठकर हजारों गाथाओं का नियमित स्वाध्याय करतीं। उनकी स्मरण शक्ति अच्छी थी और व्याख्यान कौशल भी अच्छा था।

उनकी जीवन शैली सुघड़ और विनम्र थी। वे बड़ों से जब भी बात करतीं, उनके दोनों हाथ जुड़े रहते, दृष्टि मे विनय झलकता, कपड़े सदा व्यवस्थित रहते। उनका बाह्य व्यक्तित्व गंभीर एवं प्रभावशाली था। बोलने का लहजा मधुर और संयत था। जहां भी जाती अपनी आत्मीयता की सुवास बिखेरती और अनुशासन निष्ठा, मर्यादा निष्ठा एवं आचारनिष्ठा की छाप छोड़ती। उनकी स्मरण शक्ति बेजोड़ थी। अध्ययन और अध्यापन दोनों उनकी रूचि के विषय थे। उस समय वे चान्द की चान्दनी को पढ़ने व कंठस्थ करने में पूरा उपयोग करते थे। वे प्रातः चार बजे उठकर कंठस्थ ज्ञान का नियमित परावर्तन करते थे।

साध्वी गंगाजी के पास किया गया अध्ययन ठोस एवं प्रामाणिक था। क्योंकि साध्वी गंगाजी का ज्ञान निर्मल था उनकी धारणा आगम आधारित थी। साध्वी निजरकंवरजी उनको आगम पाठ सुनाती और वे उनको अर्थ बोध कराती। इसके साथ–साथ वे बार–बार आगम पाठ का अर्थ भी पूछती रहती, जिससे विस्मृति को अवकाश कम मिलता। यही कारण था साध्वी निजरकंवरजी का ज्ञान बहुत पक्का था। कहते हैं कि वे जब चितारणा करती अस्खलित उच्चारण करती थी। ज्ञान प्राप्ति

के लिए सदा उत्कण्ठित रहती, उनकी यह भावना अन्तिम समय तक बनी रही। जब भी ऐसा मौका मिलता वे अवसर नहीं खोती।

सं. 1994 में साध्वी गंगाजी का स्वर्गवास हो गया। तब आचार्यश्री तुलसी ने उनको अग्रगामी बनाया। उन्होंने 25 वर्ष तक अग्रगण्या रूप में देश के विभिन्न अंचलों में विहरण किया। उन्होंने राजस्थान हरियाणा और मध्यप्रदेश में अधिक चातुर्मास किए। लम्बे लम्बे विहार करना उनकी रूचि का विषय था। कभी–कभी एक दिन में वे 40, 45 किलोमीटर तक का विहार कर लेती। एक बार उनके पेट में टयूमर (गांठ) हो गई। उन्हें लगा कि कहीं चलना बंद न हो जाए। डाक्टर को दिखाया तब डाक्टर ने कहा – आप चलना बंद कर दीजिए। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा – यह मेरे लिए पिंजरे में बन्द होने जैसा है। मुझे लगता है यदि बैठी रहूँगी तो और अधिक बीमार हो जाऊंगी। कुछ दिनों बाद दूसरे डॉक्टर से सम्पर्क किया तो उन्होंने उनकी मानसिकता समझी और जितना चल सको चलने की सलाह दी। यह बात सुनते ही वे झूम उठी और अपनी क्षमता के अनुसार सारे काम करने लगी। श्रम करके ही उन्हें संतुष्टि का अनुभव होता था।

स्वलाभ में संतुष्टि

वे सहज शान्त और स्वलाभ में संतुष्ट रहने वाली साध्वी थी। बार–बार अर्ज करना अथवा अपनी सुविधा दुविधा आचार्यों के सामने रखना उनको पसंद नहीं था। एक बार आचार्यवर ने उनका चातुर्मास पहले राजगढ़ फरमाया, फिर आडसर और उसके बाद थेलासर। उस समय उनकी सहगामी साध्वी राम कुमारीजी को पीलिया हो गया था। एक दिन थेलासर के श्रावक आए उन्होंने कहा – इस बार आचार्यवर का चातुर्मास बीदासर है, इसलिए हमारा मन वहीं सेवा करने का अधिक है। फिर भी साध्वी निजरकंवरजी की मानसिकता नहीं बदली और न उन्होंने आचार्यवर से उन्होंने प्रार्थना करवाई। उन्होंने उसी दिशा में विहार कर दिया। जब यह सारी बात साध्वीप्रमुखा लाडांजी की जानकारी में आई, उन्होंने आचार्यवर को निवेदन किया – गुरुदेव! इस बार साध्वी निजरकंवरजी को गुरु सन्निधि में रखने की कृपा कराएं। उनकी सेवा हो जाएगी और साथ वाली बीमार साध्वियां स्वस्थ हो जाएगी, यहां श्रम कम होगा, दवा आदि की सुविधा मिल जाएगी। आचार्यवर ने उनकी गंभीरता का मूल्यांकन किया और बीदासर आने का आदेश दे दिया।

श्रमशील साध्वी

सं. 2008 में वे लाडनूं सेवा केन्द्र में वृद्ध साध्वियों की सेवा नियुक्त थी। एक दिन सूर्यास्त के कुछ समय पहले अचानक ठंडे पानी का बहुत बड़ी मिट्टी की भूण फूट गई, पूरा पानी चारों ओर फेल गया। गर्मी की मौसम थी। साध्वी

निजरकंवरजी ने देखा कई साध्वियां उस पानी की सफाई में लगी है, स्वयं बड़े–बड़े तुम्बे लेकर नीचे उतरी और एक वृद्ध साध्वी को साथ लेकर आसपास के घरों से फटाफट पानी ले आई सब साध्वियों को पानी पिला दिया। भयंकर गर्मी में पानी पीने पर भी प्यास लग जाती है, यदि न पीए तो कैसी स्थिति बनती? सभी साध्वियों ने उनकी सूझबूझ से तृप्ति का अनुभव किया।

गुरु आज्ञा सर्वोपरि

साध्वी निजरकंवरजी के जीवन में सर्वाधिक महत्त्व गुरु आज्ञा का था। उन्होंने गुरु–आज्ञा के सामने कभी प्रश्न उपस्थित नहीं किया। एक बार वे रतनगढ़ की ओर विहार कर रही थी। उस दिन उन्हें रतनगढ़ पहुंचना था। एक साध्वी अस्वस्थ थी, इसलिए दो साध्वियां पीछे रह गई और वे स्वयं तीन साध्वियां रतनगढ़ पहुंच गई, तभी एक भाई ने आकर सूचना दी – सरदारशहर से अमुक सिंघाड़े की अस्वस्थ साध्वी को लाना है, अतः आपकी दो साध्वियों को सरदारशहर भेजना है। साध्वी निजरकंवरजी ने कब किसे भेजना है और कहां भेजना है? प्रश्न उपस्थित करने की आवश्यकता महसूस किए बिना तत्काल वहां से चल पड़ी। पीछे वाली दो साध्वियों की न तो प्रतीक्षा की और न विश्राम की। वे भयंकर गर्मी में बिना थके चलती रही। दूसरे दिन उदासर पहुंच गई, वहां पहुंचने पर ज्ञात हुआ जिस साध्वी को लाने के लिए गए थे, वे अभी तक सरदारशहर में ही है। वे दो दिन वहीं रूकी और तीसरे दिन उस साध्वी से मिलन हुआ। जिस मार्ग को दो दिन में पार किया, साध्वीजी के साथ पूरे पन्द्रह दिन लगे। लेकिन पन्द्रह दिन की लम्बी अवधि में भी उनके मन में वही प्रसन्नता, वही आनन्द था। क्योंकि वहां गुरु–आज्ञा की अनुपालना में आत्मानन्द की अनुभूति हो रही थी।

यद्यपि सहगामी साध्वियों के मन पर हल्का–सा असर हुआ कि आधा घंटे में हम पहुंच जाती और साध्वीजी को लाने के लिए हमारा उपयोग हो जाता। साध्वी निजरकंवरजी ने प्रेरणा देते हुए कहा – देखो, जीवन में जब कभी आचार्यों का विशेष निर्देश मिले, उसे जल्दी से जल्दी क्रियान्वित करने के लिए चल पड़ना चाहिए, उसमें ननुनच नहीं करना चाहिए। गुरु आज्ञा सदा सर्वोपरि रहे यह हमारे जीवन का लक्ष्य रहना चाहिए।

निर्माण की आन्तरिक अभीप्सा

सं. 2019 में आचार्य तुलसी ने साध्वी–समाज में शिक्षा का विकास हो, इस लक्ष्य से शिक्षा केन्द्र का शुभारंभ किया। आचार्यवर चाहते थे – बहिर्विहारी अग्रगामी अपने सहगामी साध्वियों को शिक्षा केन्द्र में अध्ययन करने का अवसर दें लेकिन इसकी एवज में आचार्यवर से साध्वी की मांग न करें। कई अग्रगामी साध्वियों ने

अपनी अनुकूलता – प्रतिकूलता की समीक्षा की और कदम आगे नहीं बढ़ा सके पर साध्वी निजरकंवरजी जैसी उत्साही अग्रगामी आगे बढ़े – साध्वियों को शिक्षा केन्द्र में अध्ययन करने का मौका दिया। उन्होंने अपने वर्ग की दोनों छोटी साध्वियों – साध्वी रामकुमारीजी एवं साध्वी जतनकंवरजी यद्यपि युवा और काम करने वाली वे ही थी पर साध्वी निजरकंवरजी चाहती थी संघ की भावी पीढ़ी शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़े और उनसे संघशक्ति सम्पन्न बनें। उन्होंने अवस्था होने पर भी श्रम की परवाह नहीं की। सारे काम पूर्ववत ही किए।

जहां साध्वी निजरकंवरजी का मन छोटी छोटी साध्वियों को पढ़ाने के लिए ललायित रहता, वहां स्वयं भी नई पुरानी विधा को अपनाने में सतत प्रयत्नशील रहती। सं. 2018 धवल समारोह के ऐतिहासिक अवसर पर आचार्यवर ने विकास के नए नए आयाम उद्घाटित किए। उनमें एक आयाम था – भाषण प्रतियोगिता। जहां–जहां छोटे स्कूल में पढ़े लिखे साधु साध्वियों ने भाग लिया, वहां स्कूल का दरवाजा न देखने वाली साध्वी निजरकंवरजी भी उसमें सम्मिलित हुए। प्रौढ़ साधु साध्वियों की श्रेणी में साध्वी निजरकंवरजी ने 83 अंक प्राप्तकर प्रथम स्थान प्राप्त किया। उस समय उनकी अवस्था 54 वर्ष की थी।

निडरता की नजीर

भिवानी मर्यादा महोत्सव से पहले वे विहार करते–करते वे रींगस पहुंचे। उस दिन वे धर्मशाला में ठहरे थे। रात्रि में सभी साध्वियां नींद में थी अचानक लगा कुछ व्यक्ति बाहर खड़े साध्वियों के कमरे के कपाट तोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। सभी साध्वियां जाग गईं और कुछ भयभीत भी बन गई और संकल्प विकल्प उठने लगे तभी साध्वी निजरकंवरजी साहस की सिंहनी बन गरज उठी और दरवाजा खोलकर उपद्रवी लोगों को ललकारने लगी। साध्वीजी की निडरता ने कायर कमजोर उपद्रवी को हिला दिया और वहां से नौ दो ग्यारह हो गया।

समर्पण का मीठा फल

सं. 2006 का मर्यादा महोत्सव राजस्थान की राजधानी जयपुर में था। मर्यादा महोत्सव सम्पन्न होते ही साध्वीप्रमुखा लाडांजी ने सभी अग्रगामी साध्वियों को सम्बोधित करते हुए कहा – गुरुदेव का इंगित है, शहरी वातावरण में अधिक साधु साध्वियां न रहे, अतः सब जितनी जल्दी हो सके विहार करने का चिन्तन रखें। साध्वी निजरकंवरजी का उस वर्ष का चातुर्मास आचार्यश्री ने ब्यावर के लिए घोषित किया, जो जयपुर से नजदीक था। साध्वी निजरकंवरजी ने कहा – जैसी मर्जी है मैं कल सुबह विहार कर दूंगी। वे प्रातः मंगल पाठ सुनने के लिए आचार्यवर के चरणों में पहुंची। उन्हें देखते ही आचार्यवर ने कहा – ये तो बाद में जा सकती है, इनका

चातुर्मास क्षेत्र पास में है। पहले उन साधु–साध्वियों को विहार कराएंगे जिन्हें दूर जाना है। गुरुवाणी पर अपने आपको समर्पित करने वाली साध्वीजी का गुरुदेव ने मूल्यांकन किया और गुरुसेवा का मौका मिल गया।

संघीय प्रचार प्रसार में योगदान

पंजाब में तेरापंथ के विस्तार की कहानी साधु साध्वियों के श्रम की कहानी है, कष्ट सहिष्णुता की कहानी है। साध्वी निजरकंवरजी ने लगातार (2009, 2010, 2011 और 2012) चार चातुर्मास पंजाब की धरती पर किए। पंजाब में तेरापंथ की पहचान बनाने और प्रभावना बढ़ाने के लिए कटिबद्ध साधु साध्वियों के सामने कितने–कितने कष्ट आए। साध्वी निजरकंवरजी ने 2012 का चौमासा करने के लिए मलेर कोटला में प्रवेश किया। मलेर कोटला में जैन समाज की अच्छी संख्या थी। उन सबके मन में पता नहीं क्यों तेरापंथ के प्रति अच्छी धारणा नहीं थी। वे तेरापंथी साधु को साधु मानने को तैयार नहीं थे और जैसे तैसे उनको बदनाम करने के लिए भी वे हर क्षण सजग रहते थे। कभी वे कहते थे नए मुसलमान हैं। जब भी साध्वियां कार्यवश अपने प्रवास–स्थान से बाहर जाती, वे लोग उनके पात्रों में साबुन तेल इत्र आदि अकल्पनीय और शृंगारिक पदार्थ रख आते और लोगों के एकत्रित कर कहते – देखो – ये वैरागी नहीं ढोंगी हैं। इनका आचरण और विचार में बड़ा अन्तर है। क्या–क्या चीजें अपने पास रखते हैं.....अनर्गल अफवाहें फैलाकर वे साध्वियों का विरोध करते रहते थे।

साधु साध्वियों के सामने सबसे बड़ी समस्या स्थान की थी इसलिए वहां चातुर्मास होते ही नहीं थे। इस वर्ष एक तेरापंथी श्रावक जिसका नाम था प्यारेलाल जैन। उसने संकल्प किया कि किराए पर दी गई दुकान यदि मिल जाए तो मैं उसमें सबसे पहले चातुर्मास कराऊंगा। नियति ने साथ दिया और सौभाग्य से चौमासा भी मिल गया। उस वर्ष यहां अन्य सम्प्रदाय के साधु साध्वी का भी चातुर्मास नहीं था। विरोधी लोगों के सामने ज्योहीं सारी स्थिति स्पष्ट हुई सबने अपने–अपने साधु साध्वियों को चातुर्मास के लिए बुला लिया। चौमासा करने के लिए दुकान तो थी पर इतनी छोटी कि पांच साध्वियां पांव–पसार कर सो नहीं सकती थी। दुकान के सामने एक बड़ी कोठी थी स्थानकवासी श्रावक जसवन्तसिंह जैन की। साध्वियां पाडिहारिय उपकरण टेबल आदि की गवेषणा करने गई तो घर के सब सदस्य विरोध के नशे में बोल पड़े, हमारे यहां कुछ नहीं है। आदर या वन्दना की बात तो बहुत दूर थी।

कुछ समय बीता एक दिन अचानक वह भाई दुकान के बाहर आकर जोर–जोर से बोला – 'मत्थएण वंदामि'। उस समय साध्वियां आहार कर रही थी। उन्होंने उठकर देखा – वही सामने वाली कोठी का मालिक था, जो थोड़ी देर पहले

अनादर युक्त शब्दों का उपयोग कर रहा था। वह भाई हाथ जोड़कर वन्दना करते हुए बोला – महाराज! अभी कुछ समय पहले आपकी साध्वियां हमारे घर आई थीं, पर हमने उनको आदर न देते हुए हर बात के लिए इन्कार कर दिया। हमारी गलती हो गई। मेरी आत्मा मुझे ही धिक्कार रही है। मुझे लगा मैंने गलती की है। आप माफ करें। गृहस्थ के घर में सब कुछ है, आप को जो सामान चाहिए लीजिए। मेरे घर में रोटी भी बनी हुई है, आप पधारिए।

उस दिन के बाद उस भाई का नजरिया विरोध का न रहकर यथार्थ को समझने का बन गया। वह स्थानक में जो तत्त्वबोध पाता, साध्वियों के पास आकर तेरापंथ मान्यता के अनुसार उसे जानने का प्रयत्न करता। यह क्रम काफी लम्बा चला। साध्वी निजरकंवरजी ने यह संकल्प कर लिया कि आहार में, नीन्द में भले देरी हो जाए लेकिन उनको समाहित करना मेरा पहला कर्त्तव्य है। कभी–कभी वे रविवार को इसलिए उपवास कर लेतीं कि आज उस परिवार को समझाने में ज्यादा समय मिल जाएगा। साध्वीजी के पुरुषार्थ ने रंग दिखाया और जसवंतसिंहजी तेरापंथ धर्मसंघ से प्रभावित हो गए। यद्यपि वे गुरुधारणा करने का साहस नहीं कर सके पर चर्चा परिचर्चा दोनों तरफ करके स्पष्ट शब्दों में कहते – तेरापंथ का मंतव्य सही लगता है।

उसी प्रवास में एक रात इतनी अधिक बरसात हुई कि उस बाजार की एक दो दुकानें गिर गई। जिस दुकान में साध्वी निजरकंवरजी ठहरी हुई थी वह भी जर्जरित थी, इसलिए गिरने का भय था। जसवंतसिंहजी को जैसे ही पता चला वे रात्रि में आए और बोले – यह दीवार गिरने जैसी है आप हमारे घर पधार जाइए। आग्रह पूर्वक रात्रि में साध्वियों को अपने घर ले गए। उसके बाद स्थिति में सुधार आ गया, तब भी उस परिवार के सदस्यों ने साध्वियों को वहीं रहने का आग्रह किया। तेरापंथ के आचार, विचार, मर्यादा अनुशासन देखकर वे विरोध को भूल गए। उन्होंने स्पष्ट रूप से बताया कि हमें तेरापंथ के विषय में भ्रमित बनाया गया था। हमने पिछले सात चातुर्मास में खूब विरोध किया पर इस वर्ष हमने यथार्थ जानकारी प्राप्त की है और उससे हमारा पूरा परिवार प्रभावित हुआ।

पानी की ही नहीं पत्थर की वर्षा भी देखेंगे

संवत 2006 में साध्वी निजरकंवरजी का चातुर्मास गुजरात के बाव गांव में था। बाव से पहले थराद गांव आता है। बास के वरिष्ट श्रावक चुन्नीभाई से पूछा – बाव का सीधा रास्ता कौन–सा है। उन्होंने कहा – थराद गांव के बीच से निकलने वाला सबसे सीधा है, पर यह गांव पक्के विरोधियों का है। यदि गालियां और पत्थर की वर्षा सहन करनी है तब तो अन्दर जाइए, नहीं तो थोड़ा चक्कर है बाहर–बाहर

होकर हम बाव पहुंच जाएंगे। साध्वी निजरकंवरजी ने साहस के साथ कहा – पानी की वर्षा तो सदा देखते ही हैं आज तो गालियों और पत्थर की वर्षा भी देखने का भाव है। उन्होंने जिस निडरता के साथ अपनी बात रखी सुनकर मन प्रसन्न हो गया। चुन्नीभाई ने यह भी बता दिया कि वहां तेरापंथी परिवार एक भी नहीं है, पर अमोलकचंद भाई मेहता एक मात्र तेरापंथी श्रावक हैं आप उनके घर में रूक सकते हैं। साध्वीजी वहीं जाकर रूक गई। सायं प्रतिक्रमण के पश्चात काफी भाई बहिन आए और बोले – महाराज! क्या व्याख्यान सुनाएंगे? साध्वीजी ने उत्तर देते हुए कहा – हम तो व्याख्यान सुनाने ही आए हैं, आप सुनेंगे तो सुनाने का भाव है। तभी एक भाई बोला – हमें तो रामायण सुनाओ। साध्वीजी बोली – इतनी विशाल रामायाण तो कैसे सुना सकती हूँ, हां यदि आप चाहो तो एक प्रसंग सुना सकती हूँ। गुजराती भाई ने परीक्षा करते हुए कहा – हम तो आपसे महासती सीताजी की शादी का प्रसंग सुनना चाहते हैं। क्या आपको याद है?

साध्वी निजरकंवरजी बिना एक सेकण्ड का विलम्ब किए, तत्काल जैन – रामायण के गीतों का संगान करते हुए सीताजी की शादी का विशद वर्णन किया। उनकी वाणी में ओज था, संगान में मधुरता थी और जैन रामायण अपने नाम की भांति याद था। ज्योहीं व्याख्यान सम्पन्न होते ही सभी श्रोताओं ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा – महाराज! आपकी स्मरण शक्ति गजब की है, आपका कण्ठस्थ ज्ञान भी इतना पक्का है कि आप एक पद भी भूले नहीं। धारा प्रवाह व्याख्यान सुनाते रहे। आज का व्याख्यान सुन हमारा विरोध भाव शान्त हो गया। आज का पहला दिन है.....। आप यहीं कुछ दिन ठहरें। साध्वियों ने संक्षिप्त–सा उत्तर देकर सारी बात समेट ली। उन्होंने कहा – कल का विहार हम घोषित कर चुके हैं, इसलिए रूकने का अवकाश नहीं है।

मैं तुमको चिड़िया बना दूंगा

साध्वी निजरकंवरजी एक बार विहारकर श्रीडूंगरगढ से बीदासर जा रही थी। उस समय वे अस्वस्थ थी, इसलिए छोटे–छोटे विहार कर रही थी। जहां कहीं ढाणी, झोंपड़ी प्याऊ आदि मिलती वहीं ठहर जाती। एक दिन वे चलते–चलते थक गई, खोजबीन करने पर एक संन्यासी की झोंपड़ी मिली, पर उस समय वह संन्यासी वहां नहीं था, उस झोंपड़ी के ताला लगाया हुआ था। जहां उस संन्यासी का परिवार रहता था, उस गांव से श्रावक चाबी लेकर आए और साध्वियों को ठहरा दिया। संयोग की बात थी कि रात्रि के समय वह संन्यासी आ गया। अपनी कुटिया में साध्वियों को देख आग बबूला हो गया। और बोला यहां से सब निकलो। जंगल में साध्वियां जाए तो कहां जाएं। संन्यासी को समझाने की कोशिश की पर सारा श्रम व्यर्थ गया।

आखिर भय दिखाते हुए उसने कहा – मैं अभी तुम लोगों को चिड़िया बना दूंगा। साध्वी निजरकंवरजी निडरता के साथ सारी बातें सुनती रहीं। उन्होंने उपासना में बैठी बहिन की ओर देखा। वह तत्काल बोल पड़ी – बाबा! चिड़िया बनाओ तो सही मैं उड़कर अपने गुरु के दर्शन कर आऊंगी.....। सुनते ही वह ठंडा हो गया। अच्छा, सुबह यहां से चले जाना.....।

कलाकारों का निर्माण और प्रोत्साहन

साध्वी निजरकंवरजी की आंतरिक रूचि ज्ञान, स्वाध्याय, व्याख्यान एवं प्रचार प्रसार में अधिक थी, पर साधु–जीवन के लिए आवश्यक उपकरणों को बनाने वालों को पूरा प्रोत्साहन देती थी और जो भी उपकरण बनवाती उसको नवीनता के साथ प्रस्तुत करने का उनमें उत्साह था। इसलिए उनके ग्रुप में कला का विकास उल्लेखनीय हुआ। अथवा यह कहा जा सकता है कि उनके द्वारा कलाकारों का निर्माण किया गया। साध्वी केसरजी लाडनूं ने रंगाई और रजोहरण के निर्माण में विशेष योग्यता अर्जित की। साध्वी हुलासकुमारीजी ने चित्रकला में अद्वितीय विकास किया तथा साध्वी रामकुमारीजी ने आचार्यों के काम में आने वाले पात्र – ताशक, प्याला गिलास आदि कलात्मक बेल बूंटे सूक्ष्माक्षरों में अंकित करने में कुशलता प्राप्त की। साध्वी रामकुमारीजी का लिपि कौशल तेरापंथ धर्मसंघ में प्रथम कोटि का बना, यह साध्वी निजरकंवरजी की ही निर्माण–कला का चमत्कार था।

आचार्यश्री तुलसी ने कलकत्ता यात्रा के लिए लाडनूं से विहार किया। उन दिनों साध्वी रामकुमारीजी ने कला प्रशिक्षण लेना प्रारंभ किया ही था। साध्वीप्रमुखा लाडांजी ने साध्वी निजरकंवरजी से कहा – हम यात्रा करके आएं तब तक आप रामकुमारीजी से कलात्मक गिलास बनवाकर तैयार रखना। यदि गिलास की जरूरत पड़े तो चूरु में मिल सकती है। सं. 2016 का उनका चातुर्मास सादुलपुर था। उनके दिमाग में साध्वीप्रमुखाजी का निर्देश सुरक्षित था। दो साध्वियों को गिलास लाने के लिए सादुलपुर से चूरु भेजा। वे गिलास लेकर आईं, उसका आकार प्रकार अजीब–सा था, अब क्या करें? लेकिन साध्वीजी ने हार नहीं मानी, खाती के औजार लेकर स्वयं बैठी, उसे कहीं से कुरेदा, कहीं से आकार पतला किया। श्रम करते–करते उस गिलास का कलात्मक नया रूप दे दिया। अब वारनिश की आवश्यकता थी, वह भी राजगढ़ सादुलपुर में उपलब्ध नहीं हुआ।

साध्वी निजरकंवरजी धुन की पक्की और कर्मठ थी। तत्काल निर्णय लिया और दो साध्वियों को वारनिश लाने के लिए हिसार भेजा। गिलास और वारनिश को लाने में साध्वियों को 300 किलोमीटर की यात्रा करवा ली। जब गिलास का निर्माण कार्य और रंगाई का पूरा हो गया तब साध्वी निजरकंवरजी ने स्वयं के निर्देशन में

उस पर सूक्ष्माक्षरों में बेल बूंटे (जाल) करवाई। यह पहला ही अवसर था गिलास पर जाल करने का। इससे पूर्व केवल श्री शब्द को कलात्मक ढंग से अंकित कर देते थे। अब तक के आचार्यों के पानी पीने के लिए वहीं श्री लिखी गिलास काम में आ रही थी।

जब आचार्यश्री तुलसी कलकत्ता यात्रा कर थली में पधारे, साध्वी निजरकंवरजी ने पड़िहारा में गुरुदेव के दर्शन किए और वह गिलास श्रीचरणों में उपहृत की। जिस किसी ने इस नई कलाकृति को देखी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और सबको वह गिलास बहुत–बहुत पसन्द आई। पर संघीय कार्यों में अत्यधिक व्यस्त हो जाने से आचार्यप्रवर की कोई प्रतिक्रिया साध्वी रामकुमारीजी ने नहीं सुनी। जिससे न जाने क्यों उनका मन सशंकित हो गया। उन्हें लगा यह गिलास आचार्यवर को पसन्द नहीं आई तो?

आचार्यप्रवर पड़िहारा से बीदासर पधारे। वहां कलात्मक चित्रों पात्र, उपकरण आदि की प्रदर्शनी लगाई गई। संघ के दिग्गज संत उस प्रदर्शनी को देख रहे थे, उनका ध्यान गिलास पर केन्द्रित हुआ। उसकी सूक्ष्म कला ने उनको अभिभूत कर दिया। मुनिश्री नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) मुनि बुद्धमलजी आदि को वह गिलास बहुत ही पसन्द आई। वे आचार्यप्रवर के पास पहुंचे और गिलास की कलात्मकता को प्रस्तुत करते हुए कहा – गुरुदेव! इसका निर्माण करने वाली साध्वी को विशेष बक्सीस कराएं।

इधर साध्वी रामकुमारीजी ने साध्वी निजरकंवरजी से कहा – यदि गुरुदेव मुझे ऐसी ही दूसरी चीज बनाने का निर्देश देंगे तो मैं समझूंगी मुझे बड़ी बख्शीस की है। आचार्यवर ने तत्काल गिलास मंगाई और बारीकी से देखा और कहा – मैं साध्वी रामकुमारीजी को बख्सीस देना चाहता हूँ कि ऐसा ही कलात्मक एक प्याला और बना दें। वहां से लाडनूं पहुंचकर मात्र दस दिनों में साध्वी रामकुमारीजी ने नया वैसा का वैसा कलात्मक प्याला तैयार कर आचार्यवर को भेंट कर दिया। उसके बाद कला यात्रा बड़ी तेज गति से चलती रही और आज तक अविराम गति से चल रही है। उसका सारा श्रेय साध्वी निजरकंवरजी को है। उनके उत्साह को है। उनके प्रोत्साहन को है। उनकी श्रमशीलता को है, उनकी सूझबूझ को है और उनकी मौन प्रेरणा को है।

अन्तिम जीवन में कड़ी कसौटी

सं. 2020 में साध्वी निजरकंवरजी को पेट में गांठ की अनुभूति हुई पर उन्होंने किसी को बताया नहीं और साध्वी रामकुमारीजी एवं जतनकुमारीजी को पुनः अध्ययनार्थ शिक्षाकेन्द्र में भेज दिया। पीलीबंगा चातुर्मास करने के लिए जाना था, बीच

में सरदारशहर कुछ दिनों के लिए विराजना हुआ। वहां वे एक दिन अचानक बेहोश हो गई। सेठ सुमेरमलजी की चिकित्सा प्रारंभ की, उन्हें लगा लम्बे विहार नहीं करने चाहिए। उन्होंने आचार्यवर से निवेदन किया और वह चातुर्मास उन्होंने आडसर किया। वहां उनकी स्थिति और बिगड़ गई। इसलिए चिकित्सा की दृष्टि से आचार्यप्रवर ने सुजानगढ़ जाने का निर्देश दिया

साध्वी निजरकंवरजी शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से अत्यधिक सहनशील थी। श्रीडूंगरगढ़ से विहार किया, उस समय उनकी स्थिति अत्यधिक नाजुक थी, फिर भी दो, तीन किलोमीटर का विहार कर आगे बढ़ती रही। कभी–कभी ऐसी स्थिति आई कि लुंकार में सुलाकर साध्वियां उठाकर आगे ले जाती। बीदासर पहुंचने पर मातुश्री बदनांजी ने वहीं रूकने का आग्रह किया लेकिन उनकी मानसिकता गुरुदेव द्वारा फरमाए गए क्षेत्र में जाने का रही। अडिग मनोबली व्यक्ति न स्थिति से हारते हैं, न रोग से हारते हैं वे हर परिस्थिति पर विजय प्राप्त करते हैं। ज्यों त्यों सुजानगढ़ पहुंचे तब तक शरीर ने उत्तर दे दिया था। एक दिन वे पंचमी समिति के लिए बाहर गई, वहां मदोन्मत्त ऊंट दौड़ता हुआ आया। उनके लिए चलना ही मुश्किल था इसलिए दौड़ने का सवाल ही नहीं था। अचानक गिर पड़ी और ऊंट उनके ऊपर से निकल गया जिससे असह्य वेदना में और अधिक असह्य वेदना हो गई। उन्हें लगा अब शरीर अधिक टिकने वाला नहीं है। इसलिए चिकित्सा के लिए इन्कार कर दिया। आत्म–साधना और संयम आराधना में लीन क्षण–क्षण को स्वाध्याय ध्यान से सार्थक बनाने लगी। उन्होंने अपने जीवन में लम्बी तपस्या कभी नहीं की। उपवास आदि प्रायः करती रहती थी।

उपवास	–	2660	छह	–	1
बेला	–	65	सात	–	1
तेला	–	30	आठ	–	1
चोला	–	15	नव	–	1
पंचोला	–	9	दस	–	1
			ग्यारह	–	1

सं. 2022 मिंगसर शुक्ला सप्रमी के दिन 30 मिनिट के अनशन में इस संसार से सदा के लिए विदा हो गई।

वह अनाशक्त चेतना सदा निर्मोह की साधना में लीन रही और सबको यही प्रेरणा देती रही।

25. साध्वी धनकंवरजी लाडनूं (823)

साध्वी सुन्दरजी की छोटी बहिन धनपत उनसे चार वर्ष छोटी थी, पर डीलडौल से दोनों बहिनें समवयस्क ही लगती थी। साध्वी सुन्दरजी की दीक्षा प्रसंग में एक दिन वैरागिन सुन्दर बरनोले में बाहर गई थी, समय पर घर पहुंच नहीं पाई। उस दिन उनकी साध्वी ड्रेस के कपडों का माप लेना था। उस समय घर के वरिष्ट व्यक्ति ने कहा – धनपत का माप ले लो, क्योंकि दोनों बहिनें शरीर से एक समान – सी लगती है। जब माप लेने लगे तो धनपत जोर जोर से रोने लगी, मैं तो दीक्षा नहीं लूंगी। मेरे कपडे क्यों माप रहा है? आखिर सबने समझाया तुमको हम दीक्षा नहीं दे रहे हैं।

जब राजगढ़ में बहिन को दीक्षा देकर धनपत लाडनूं पहुंची, उन्हें घर सूना–सूना लगा और मन नहीं लगा। अकेली बैठी–बैठी रोने लगी – मुझे तो सुन्दर बाई के पास ले चलो। भिवानी चातुर्मास में परिवार जनों के साथ जब बहिन के दर्शन किए, तभी धनपत के चेहरे पर मुस्कान आई। साध्वी सुन्दरजी ने परिजनों से बहिन की व्यथा–कथा सुनी तब उन्होंने कहा – तू बचपन में मुझे अकेली कहीं नहीं जाने देती थी, जब कभी मैं तुझे मना कर देती कि मेरे पीछे–पीछे मत आ। उस समय तुम्हारा एक ही उत्तर होता था – मैं तो तुम्हारे पीछे आऊंगी, आऊंगी। अब मेरे पीछे ही आना है, तो दीक्षा स्वीकार कर, यही एक मात्र उपाय है। उसी दिन से धनपत बाई ने दृढ़ संकल्प कर लिया और साथ–साथ में साधु जीवन के लिए आवश्यक प्राथमिक ज्ञान कंठस्थ करना शुरु कर दिया। सं. 1976 माघ शुक्ला सप्रमी के दिन पूज्य कालूगणी के कर–कमलों से बाई धनपत साध्वी धनकंवर बन गई। उनका केशलोच साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी ने किया। साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी की उनपर नैसर्गिक कृपा थी, और साध्वी धनकंवरजी का उनके प्रति गहरा समर्पण भाव था। दीक्षित होने के पश्चात स्वयं साध्वीप्रमुखा ने उनको अक्षरज्ञान सिखाया। उन्होंने साध्वोचित उपकरणों को बनना सीखा एवं आगे चलकर इस दिशा में विशेष दक्षता प्राप्त की।

यद्यपि उनकी आशुग्राही प्रतिभा नहीं थी, पर सतत पुरुषार्थ करते रहना उनकी मनोवृति थी। वे प्रतिदिन श्रम पूर्वक कंठस्थ करती रहतीं। उन्होंने सात आगम कंठस्थ किए – दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प, आचारांग, सूत्रकृतांग, नन्दी एवं आवश्यक। बत्तीस आगमों का अपनी जिन्दगी में दो बार वाचन किया तथा कई आगम तीन चार बार भी पढ़े।

रामचरित, शालिभद्र मुनिपत आदि व्याख्यान के अतिरिक्त आराधना चौबीसी, शील की नवबाड़, परीषह आदि सीखें एवं महादण्डक,गमा, भवां रो बासठियो इकतीसा, बावनबोल.....14 थोकड़े याद थे।

संस्कृत भाषा में शान्त सुधारस, भक्तामर सिन्दूरप्रकर, छोटी नाममाला आदि भी उन्हेंने सीखी। गीतिकाएं लगभग 150 से अधिक मुखस्थ थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि स्वाध्याय की लगन भोजन से अधिक थी। समय नियोजन की उनमें अद्‌भुत कला थी। सिलाई रंगाई, रजोहरण बनना उनके आवश्यक कार्यों की सूचि में थे, पर स्वाध्याय का समय होते ही उनसे निवृत्त हो जाती। उन्होंने 48 वर्षों में लगभग 3 करोड़ 45 लाख गाथाओं की स्वाध्याय की। आसपास रहने वाली साध्वियों को वे स्वाध्याय की अधिक प्रेरणा देती। वे दीक्षित होने के पश्चात साध्वी सुन्दरजी के साथ में रहीं।

उन्होंने बड़ी और लम्बी तपस्या नहीं की, पर उपवास बेले वे प्रायः करती रहती। उन्होंने

उपवास	–	2935	पंचोला	–	1
बेले	–	53	आठ	–	1
चोला	–	1			

किया दस प्रत्याख्यान उन्होंने अनेक बार किए।

सहयोग की भावना

साध्वी सुन्दरजी को पूज्य कालूगणी ने 21 वर्ष की अवस्था में अग्रगामी बनाया। उस समय साध्वी धनकंवरजी उन्नीस वर्ष की थी। साध्वी सुन्दरजी व्याख्यान, लेखन, अध्ययन–अध्यापन और जन सम्पर्क आदि कार्यों में व्यस्त रहतीं तब साध्वी धनकंवरजी शेष सारे कार्यों को संभाल लेती। सत्तर (70) साल की अवस्था तक पूरे सिंघाडे की साध्वियों की सिलाई रंगाई वे अकेली करती। वे अपने ग्रुप में आने वाली साध्वियों से एक साल तक कोई काम नहीं करवाती तथा सबको एक नया रजोहरण बनाकर देती। सिलाई करने में उनके हाथ सधे हुए थे, वे एक दिन में एक पछेवड़ी अथवा एक साड़ी की सिलाई कर लेती। रजोहरण भी बनाने में वे अतिरिक्त दक्ष थीं। उनका बनाया रजोहरण चातुर्यपूर्ण होता और आचार्यों के काम आता। वे दिल से उदार मनोवृत्ति की थी। हिम्मत से आने वाले हर काम को सफल बना लेती। सं. 1994 में उनका चातुर्मास बाव था। वहां प्रायः सभी साध्वियां ज्वर से आक्रान्त हो

गई। उस समय बुखार से कई व्यक्ति काल कवलित हो गए। इसलिए चातुर्मास सम्पन्न होते ही विहार करना जरूरी हो गया। ऐसी स्थिति विहार किया, सबकी परिचर्या के साथ गोचरी, पानी आवश्यक सारे काम साध्वी धनकंवरजी अकेली करती। लगभग एक सौ बहत्तर कोस तक रास्ता पार किया। वे अकेली अतिरिक्त मेहनत कर सबको शारीरिक सहयोग करती रही। उनका उत्साह कभी कम नहीं हुआ।

प्रत्युत उनका वात्सल्य भाव सदा वृद्धिगंत होता रहा। वे सहयोग करके प्रसन्नता का अनुभव करतीं। जब–जब विशेष निर्जरा करने का मौका आता, वे अतिरिक्त आह्लाद की अनुभूति करतीं। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि सेवा के साथ बीमार व्यक्ति को स्वयं बैठकर जप एवं स्वाध्याय करातीं।

असाधारण विशेषता

साध्वी सुन्दरजी अनुशासन के प्रति सजग थीं और समय पर अनुशासन, व्यवस्था और मर्यादा के प्रति लापरवाही करने वाले पर अच्छा अनुशासन भी कर लेती। जब–जब उनके ग्रुप में ऐसा वातावरण बनता, साध्वी धनकंवरजी अनुशासित व्यक्ति को हेज, वात्सल्य देती और उनके लिए आश्वास बन जाती। जब कभी साध्वी धनकंवरजी किसी को उपालंभ देती तो साध्वी सुन्दरजी उसको अपनत्व देकर पानी–पानी कर देती। यही कारण था, साध्वी सुन्दरजी के साथ आचार्यवर ने जिन साध्वियों को भेजा वे गहरे आत्मीयता के धागे में बंधकर उनकी अपनी बन गई। दूसरी विशेषता दोनों बहिनों में यह थी कि जो भी साध्वी उनके पास रही, वे उनको हर दृष्टि से सक्षम बनाने का प्रयत्न करतीं। साध्वाचार के साथ संघीय रीति–नीति की धारणा करातीं। अध्ययन और कला का अच्छा प्रशिक्षण देतीं। साध्वी धनकंवरजी का श्रम में अधिक विश्वास था। वे अपना काम स्वयं करना ही पसंद करती। जहां तक बन सका अस्वस्थता में भी अपना काम, अपनी निर्जरा उन्होंने नहीं छोड़ी।

अनशन और समाधि मरण

साध्वी सुन्दरजी के स्वर्गवास के बाद आचार्यप्रवर ने साध्वी यशोमतीजी का सिंघाड़ा बनाया। तब से साध्वी धनकंवरजी उनके साथ विहरण करती रही। बुढ़ापा और अस्वस्थता की कमजोर शारीरिक स्थिति में भी उनका मनोबल मजबूत था। अन्तिम तीन वर्ष वृद्धावस्था के कारण उनको छोटी खाटू में स्थिरवास करना पड़ा। आखिर वर्धमान परिणामों से चौविहार अनशन कर संवत 2049 कार्तिक शुक्ला 10 को उनका स्वर्गवास हो गया। उन्हें संथारा तीन दिन का आया।

26. साध्वी सोनांजी साजनसर (825)

साध्वी सोनांजी का जन्म सं. 1969 माघ शुक्ला आठम को बीकानेर के पास साजनसर गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम दुलीचंदजी लोढ़ा था। अल्पावस्था में बालिका सोना की मां का देहांत हो गया। उनका लालन–पालन उनकी मौसी ने किया। उनकी मौसी का ससुराल श्रीडूंगरगढ में था। मौसी धार्मिक मनोवृत्ति की महिला थी, इसलिए बचपन से ही उन्हें सहज धार्मिक संस्कार मिले। उनके पिताश्री दुलीचंदजी के मन में पत्नी वियोग के पश्चात वैराग्य भाव पैदा हुआ। वे गृहस्थ जीवन में त्याग प्रत्याख्यान, स्वाध्याय सामायिक के साथ समय बिताने लगे पर साथ–साथ में उनका वैराग्य भी पुष्ट होता रहा। जब बालिका सोना लगभग नौ साल की हुई उनके पिता दुलीचंदजी ने कहा – बेटी! मैं साधु बनना चाहता हूँ, क्या तुम भी साध्वी बनोगी?

तारो, पार उतारो

बालिका सोना संयम, दीक्षा, साधु–साध्वी शब्द का अर्थ क्या होता है? इससे उस समय वे बिलकुल अनजान थी। वे केवल नमस्कार महामंत्र जानती थी, अथवा मौसी को सामायिक करते देखती थी या कभी कभार साधु–साध्वियां भिक्षा के लिए आते तो उनको देखती थी। मात्र पिता का मोह अथवा पिता जो कर रहे हैं, वह मैं भी करूंगी इसी भावना के साथ कह दिया – पिताजी! मैं भी दीक्षा लूंगी। उस दिन से मौसी उन्हें अपने साथ लेकर साध्वियों के पास गई और प्राथमिक ज्ञान सीखने की प्रेरणा दी। साध्वियों के सम्पर्क से साधु जीवन की जानकारी मिली और नवतत्त्व का ज्ञान किया। एक दिन बातचीत के प्रसंग में बालिका सोना ने पूछा – मैं दीक्षा की प्रार्थना कैसे करूं? तब वहां विराजित एक साध्वी ने सहजता से कहा – जब तुम कालूगणी के दर्शन करो, तब निवेदन करना – "अन्नदाता! तारो पार उतारो"। बस इस एक वाक्य को उन्होंने पकड़ लिया। वे जब भी गुरुदेव के दर्शन करने जाती एक बात रटी रटाई दोहरा देती – अन्नदाता! तारो, पार उतारो। भले वे दिन में दस बार दर्शन करती तो वही बात कहती और दो बार करती तो वही बात दोहराती।

नौ वर्ष की छोटी–सी बालिका, छोटा कद, गौर वर्ण और सरलता से निकली सहज वाणी, सबको मनगमती लगती। एक बार साध्वीप्रमुखा ने निवेदन किया – गुरुदेव! यह सोनकी क्या कह रही है? पूज्य कालूगणी ने मुस्कान के साथ पूछा – किसे तारू और किसे पार उतारू? बालिका सोना ने पुनः तपाक से कहा – अन्नदाता! तारो, पार उतारो..... सुनते ही चारों और हंसी छा गई।

धीरे धीरे साध्वियों ने समझाया साधु जीवन में कितने कष्ट हैं। पैदल चलना तथा केशलोच का कष्ट सहना क्या तुम्हारे लिए संभव है। दूसरी ओर उनके पिता दुलीचंदजी ने भी वैराग्य की कसौटी की। आचार्यवर को लगा वैराग्य भावना में कमी नहीं है, तब उनके पिता दुलीचंदजी के साथ उन्हें भी दीक्षा की स्वीकृति मिल गई। सं. 1978 चैत्र कृष्णा 6 को सुजानगढ में पूज्य कालूगणी ने तीन दीक्षा दी। उसमें एक भाई और दो बहिनें थीं। आचार्यश्री तुलसी ने कालूयशोविलास में दीक्षा का वर्णन करते हुए लिखा है –

विद चेत चतुरगढ अठंतरै दीक्षा त्रय,
साजनवासी रो दुलीचंद मुनि निर्भय।
सोनांजी पुत्री, मगनां राजाणै री,
श्री कालू–चरणां अर्पित, करी न देरी।।

साध्वी सोनाजी विनम्र, सरल और सहज मनोवृत्ति की साध्वी थी। दीक्षा लेते ही वरिष्ठ साध्वियों ने उनको शिक्षा देते हुए कहा – बड़ी साध्वियां रोजमर्रा के जीवन में जो कुछ कहे हमेशा तहत् कहकर स्वीकार करना चाहिए। आचार्यवर अथवा साध्वीप्रमुखा का कथन तो हमारे लिए प्राणों से अधिक महत्त्वपूर्ण होता है, पर इंगित भी समझ में आ जाए तो वैसा ही (इंगितानुसार) काम करना चाहिए। दीक्षा लेने के बाद उन्हें साध्वीप्रमुखा जेठांजी का संरक्षण नहीं मिल पाया। साध्वीप्रमुखाश्री जेठांजी उस समय वृद्धावस्था तथा अस्वस्थता के कारण राजलदेसर में स्थिरवासी बन गई थीं। इसलिए बाल साध्वी सोनांजी के जीवन निर्माण में साध्वी कानकंवरजी साध्वी झमकूजी (दोनों ही आगे साध्वीप्रमुखा बनीं) का योग रहा।

सहज सरल साध्वी

साध्वी सोनांजी को दीक्षित हुए कुछ महीने ही बीते थे। नौ वर्ष की अवस्था में चंचलता होनी स्वाभाविक बात है। एक दिन वे इधर–उधर घूम रही थी। साध्वी–जीवन के कपड़े बड़े तथा भारी थे, अतः समा नहीं पा रही थी। कभी सिर का पल्ला नीचे आ रहा था और कभी.....। साध्वी कानकंवरजी ने मजाक में कहा – नानकी! पछेवड़ी सिर पर टिक नहीं रही है, जा खूंटी पर टांग दो। सुनते ही साध्वी सोनांजी तहत कहकर गई और पछेवड़ी खूंटी पर टांगने का प्रयत्न करने लगी। कद छोटा होने से खूंटी तक हाथ पहुंच नहीं रहा था, सहदीक्षित साध्वी पास खड़ी थी, उन्हें देकर टांग दी। बिना पछेवड़ी ओढे इधर उधर घूमती घूमती साध्वी कानकंवरजी के पास से निकली। उन्होंने पूछा – नानकी! पछेवड़ी कहां गई? उस समय तक

खूंटी पर टांगने की बात तो वे भूल गई थी क्योंकि वह तो मात्र मजाक की बात थी।

साध्वी सोनांजी ने बालसुलभ भोलेपन के साथ कहा – आपने ही फरमाया था कि पछेवड़ी खूंटी पर टांग दो, मैंने तो उसी समय टांग दी थी। बाल साध्वी की सहज सरलता पर वहां उपस्थित सभी साध्वियां मुस्कुराए बिना न रह सकी। साथ ही उनकी सरलता और विनम्रता से सभी प्रभावित भी हुई।

वे सहज संकोचशील स्वभाव की थी पर छिपाना नहीं जानती थी। जब जैसी बात मन में आती निश्छलता से कह देती। दीक्षा के पश्चात पहली बार सर्दी से आमना–सामना हुआ। सीमित कपड़ों में राजस्थानी सर्दी सहन करना सचमुच कठिन परीषह है। बाल साध्वी सोनाजी प्रातः आचार्यश्री के दर्शन करने साध्वी कानकंवरजी के साथ गईं। उस समय उनके ऊनी वस्त्र ओढा हुआ नहीं था। पूज्य कालूगणी ने साध्वी कानकंवरजी से कहा – नानकी को ऊनी वस्त्र ओढ़ने के लिए दिया करो। साध्वीजी ने निवेदन किया – यह ओढती नही है। आचार्यवर ने संतों से कहा – फूलालेण वाला शॉल लाकर दो। आचार्यश्री ने साध्वी सोनाजी को देते हुए कहा – ओढ लेना। दूसरे दिन प्रातः पुनः शॉल बिना ओढे ही आ गई तब कालूगणी ने न ओढने का कारण जानना चाहा। बाल–साध्वी ने सीधी सपाट भाषा में कह दिया – ऐसे मोटे–मोटे कपड़े मुझे नहीं सुहाते। तत्काल वात्सल्य की वर्षा करते हुए दूसरा शॉल बक्साया। बाल साध्वी ने उसे भी ओढने से इन्कार कर दिया – मैं नहीं ओढ सकती। मुझे ऐसा नहीं सुहाता। मातृवत्सल कालूगणी क्यों कैसे प्रश्न नहीं किया तत्काल अपने शरीर से एलवान उतारा और बाल साध्वी को दिया और पूछा – यह तो ओढ लोगी। साध्वी सोनांजी ने उस पर हाथ फेरते हुए कहा – हां, यह ओढ लूंगी।

संस्कारों की सौरभ

साध्वी सोनांजी को दीक्षा लिए मात्र दस दिन हुए थे। आचार्यश्री सुजानगढ से गुलेरिया पधारे। वहां साध्वियां ऊपर की मंजिल पर ठहरी थी और कालूगणी तथा सभी संत नीचे आंगन ओरा शाल आदि में रहे। पूज्य कालूगणी के पधारने से वहां मगरिया का सा माहौल था। पूज्य कालूगणी ग्रामीण लोगों के बीच में उपदेश फरमा रहे थे और बीच–बीच में उन्हें चित्र भी दिखा रहे थे। दोपहर का समय था। साध्वी कानकंवरजी ने साध्वी सोनांजी से कहा – जा, तूं भी गुरुदेव के पास चित्र देख आ। बाल साध्वी गई और गुरुदेव के सामने बैठने लगी। तब कालूगणी ने अंगुली से संकेत करते हुए कहा – बिना पूंजे नहीं बैठना है। वे केवल इतना समझी कि यहां बैठना

नहीं है, वापिस जाने लगी। आचार्यवर ने पुनः अंगुली हिलाकर जाने के लिए मना कर दिया। अब बाल साध्वी की स्थिति असमंजस की हो गई। क्या करें, क्या न करें, बैठना भी नहीं, जाना भी नहीं, कुछ भी समझ में नहीं आया। तभी आचार्यवर ने एक सन्त से कहा नानकी समझी नहीं है, इसे समझाओ, पूंजकर बैठे। पूज्य कालूगणी ने पूंजकर बैठने के संस्कार जन्म घूंटी के साथ ऐसे दिए कि उनकी जीवन भर स्मृति बनी रही।

परमपूज्य अष्टमाचार्यश्री कालूगणी का युग विकास के बीज वपन का स्वर्णिम युग था। इसमें कालूगणी की दूरदर्शिता सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक तत्त्व था। सबको आगे बढाने की उत्कट इच्छाशक्ति के साथ वे सतत प्रयत्नशील रहते थे। संघ के छोटे से छोटे और अनपढ व्यक्तियों को भी वे प्रेरणा देते रहते थे। बाल साधु–साध्वियों की बचकानी बातों से भी उकताते नहीं थे। साध्वी सोनांजी आचार्यवर की सन्निधि में बैठी थी। आचार्यश्री ने पूछा – उत्तराध्ययन के कितने अध्ययन याद किए?

साध्वी सोनांजी – चौदह अध्ययन सीखें हैं।

आचार्यप्रवर – चौदहवां अध्ययन सुनाओ?

साध्वीजी – यह तो अभी सीख रही हूँ।

अच्छा तेरहवां सुना दो।

वह अभी पक्का नहीं आता।

क्या बारहवां अध्ययन सुना सकती हो?

गुरुदेव! उसे तो मैंने इन दिनों चितारा नहीं है।

आचार्यश्री मुस्कुराने लगे। बाल साध्वी की सरलता पर, भोलेपन पर। निरन्तर इस प्रकार की प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्तकर साध्वी सोनांजी ज्ञानाराधना के प्रति जागरूक बन गईं।

यद्यपि वह युग स्त्री शिक्षा की दृष्टि से विकसित नहीं था, इसलिए साध्वियों की रुचि भी उस दिशा में कम थी। साध्वी सोनांजी ने तो अक्षर ज्ञान भी संभवतः दीक्षित होने के बाद किया होगा। एक दिन आचार्यश्री कालूगणी उनको – जहा लाहो तहा लोहो.....आगम पद्य सिखाने लगे। आचार्यवर ने शुद्ध उच्चारण करवाया और फिर स्वयं उनके साथ रटने जैसा प्रयत्न करा रहे थे, पर वे याद नहीं कर पा

रही थी। तभी पास में बैठी साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी ने कहा -- गुरुदेव! इसे याद होता ही नहीं है। आप कितनी मेहनत करा रहे हैं। आचार्यवर ने वात्सल्य के साथ प्रेरणा देते हुए कहा – अभी टाबर है, धीरे धीरे बुद्धि विकसित हो जाएगी, पर ऐसा नहीं सोचना चाहिए, याद होता ही नहीं है।

एक बार आचार्यश्री कालूगणी ने साध्वी सोनांजी को हस्तलिखित प्रति हाथ में देते हुए कहा – लो पढकर सुनाओ। उस समय तक न तो उन्हें पढना आता था और न हस्तलिखित लिपि की पहचान थी। पत्र को हाथ में लिया और बचकानी हरकत के साथ बोली – ऐसे चिड़ीखोजिए अक्षर मैं नहीं पढ सकती। न लाग लपेट न औपचारिकता, उनके पास सब कुछ स्पष्ट था। सोनांजी स्वभाव से संकोचशील मनोवृत्ति की थी। उन्होंने सदा परिमित भाषा से अपने व्यवहार पक्ष को उन्नत बनाया। आचार्यों के सामने संयम, शालीनता और अनुशासित तौर तरीके से बात करना उनकी अपनी पहचान थी। यह प्रशिक्षण उक्त संस्मरण से उन्होंने प्राप्त किया। क्योंकि साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी ने उनको आचार्यवर के समक्ष समझाया – बोलने से पहले सोचो – ये अक्षर किसके हैं? अभी आचार्यवर ने जो पत्र पढने के लिए दिया वह द्वितीयाचार्य श्री भारीमालजी द्वारा लिखित है। उस दिन के बाद ऐसी गलती कभी नहीं की।

बिना मांगे मिला वरदान

सहज सीधी सरल साध्वी सोनांजी पर पूज्य कालूगणी की असाधारण कृपा थी। नौ वर्ष की अवस्था में उन्होंने दीक्षा ली और जब उन्होंने जीवन के सतरहवें (17) वर्ष में प्रवेश किया, उनको साझ की अग्रगामी बना दिया। उसके दो वर्ष बाद एक दिन आचार्यवर बहिर्विहार के प्रसंग की चर्चा करा रहे थे। साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी ने निवेदन किया – गुरुदेव! साध्वी सोनांजी को बाहर चातुर्मास करने भेजने की कृपा करें। दो साल हो गए, उनका साझ बनाए। वे न तो साध्वियों के पास जाती है, न संभाल करती है। और इन दो वर्षों में न एक दिन उनके साथ आहार किया है। ये तो रोजाना मेरे पास ही आहार करती है।

पूज्य कालूगणी ने सारी बात सुनी और विनोद की मुद्रा में बोले – "आ तो कठेइ को जावै नीं, इनै तो अठै ही बैठी रहणद्यो।" गुरु के इस वाक्य ने साध्वी सोनांजी को बिना मांगे ऐसा वरदान दे दिया, जो विरल व्यक्तियों को मिलता है। साध्वी सोनांजी ने अपनी संयमयात्रा के कुल 58 वर्षों में 51 वर्ष गुरु सान्निध्य में बिताने का सौभाग्य प्राप्त किया।

अष्टमाचार्यश्री का सं. 1992 का चातुर्मास उदयपुर मेवाड़ में था। उस वर्ष जब आचार्यवर का राजनगर में पदार्पण हुआ। वहां मुनि उगमराजजी की दीक्षा का कार्यक्रम राजसमंद के ऐतिहासिक स्थल नौ चौकी पर था। वहां की झील बहुत प्रसिद्ध है। साध्वी सोनांजी दस पन्द्रह साध्वियों को लेकर झील देखने के लिए चली गई। कुछ बहिनें भी उनके साथ हो गईं। जिस समय बहिनें झील के पास खड़ी थीं, मछलियों को चने डालने लगी, चने के लालच में मछलियां पानी के ऊपर तैरने लगी। सभी बहिनें तथा साध्वियां उस दृश्य को देखने लगी। दीक्षा कार्यक्रम सम्पन्न होने पर आचार्यवर ससंघ उधर से पधारे। उस समय आचार्यप्रवर का ध्यान किनारे पर बैठी साध्वियों की ओर गया। ठिकाने पर पधारते ही साध्वी झमकूजी से उलाहने भरे शब्दों में कहा – आज झील के किनारे कौन साध्वियां बैठी थी?

साध्वी झमकूजी की जानकारी में कुछ था नहीं, अतः उन्होंने निवेदन किया – गुरुदेव! मुझे तो बिलकुल पता नहीं।

आचार्यश्री ने आदेश की भाषा में कहा – जाओ, जांच करो और जाने वाली साध्वियों को नौ कल्याणक का दण्ड दे देना। साध्वी झमकूजी ने स्थान पर जाकर सारी तहकीकात की और झील देखने जाने वाली सभी साध्वियों को आचार्यवर द्वारा प्रदत्त नौ कल्याणक का दण्ड दे दिया। सायंकालीन प्रतिलेखन के लिए साध्वी झमकूजी, साध्वी सोनांजी आदि आचार्यवर के स्थान पर गए। साध्वी झमकूजी ने गुरुदेव को निवेदन करते हुए कहा – यह सोनांजी ही सबसे आगे होकर गई थी।

आचार्यश्री ने पूछा – क्या देखने गई थी? साध्वी सोनांजी ने भोलेपन के साथ कहा – पानी और मछलियां देखने गई थी। आचार्यवर ने शिक्षा फरमाते हुए कहा – भोली! समझती ही नहीं है। पानी के किनारे कभी नहीं बैठना चाहिए। गिर जाए, चक्कर आ जाए तो कितना बड़ा नुकसान हो सकता है। धर्मसंघ की कितनी अवहेलना भी हो सकती है।

साध्वी सोनांजी बोली – हमें तो पानी और मछलियां देखनी थी और कई साध्वियों की भी इच्छा थी। इतना नुकसान हो सकता है, यह तो हम जानती ही नहीं हैं। आचार्यवर ने अज्ञता में की गई गलती को पुनः न दोहराने की हिदायत दी और जो दण्ड दिया था, वह माफ कर दिया।

गुरु सन्निधि और लम्बी यात्राएं

साध्वी सोनांजी पूज्य कालूगणी की मेवाड़, मालवा यात्रा में साथ रही और

आचार्य श्री तुलसी की लगभग सभी लम्बी यात्राओं का उन्होंने आनन्द लिया। उनका स्वास्थ्य प्रायः स्वस्थ था, लम्बे विहार कर आत्मिक सुख का अनुभव करती। उन्होंने कलकत्ता, कन्याकुमारी आदि सुदूर क्षेत्रों की लगभग 50 हजार माइल की यात्रा का कीर्तिमान स्थापित किया। गुरु सन्निधि में निश्चिंत भाव से कार्य सम्पादन करना उनका सहज स्वभाव था। बहिनों को तत्त्वज्ञान सीखाना तथा संघीय संस्कार देना, उनकी रुचि का विषय था। प्रतिदिन दोपहर के समय बहिनों के झुंड के झुंड उनके पास बैठे रहते। उनके आत्मीय व्यवहार से सभी बहिनें बंधी रहती।

यात्रा के समय जिन शहरों, नगरों गांवों में जाना होता, वे दर्शनीय स्थल, प्रसिद्ध मंदिर तथा प्राकृतिक सुषमा वाले मनोहारी दृश्यों को अवश्य देखतीं। उनमें उत्साह अद्‌भुत था। अपने साथ में रहने वाली साध्वियों को भी ज्ञान ध्यान करने के लिए, कार्य निपुण बनने के लिए उत्साहित करती रहती। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि – संयम साधना और गुरुदृष्टि की आराधना में सदा आत्मस्थ और मस्त रहतीं। वे आचार्यों की प्रतिलेखना आदि कार्यों में बहुत लम्बे समय तक नियोजित रहीं और वे हर कार्य को जिम्मेदारी के साथ करतीं रहीं। समय–समय पर आचार्यश्री तुलसी ने उनको पुरस्कृत भी किया। सं. 2001 में आचार्यवर ने उन्हें पांच हजार गाथाएं बक्सीस की। सं. 2017 तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह के अवसर पर पांच बारी की बक्सीस की।

साध्वी सोनांजी से उपवास आदि तपस्या कभी नहीं हो पाई। उन्होंने पूज्य कालूगणी की पावन सन्निधि में रहते हुए जब कभी उपवास का प्रयत्न किया, उन्हें बहुत उल्टियां होती। देखने वालों के मन में उस समय ग्लानि–सी होती। वे प्रायः एक ही उपवास संवत्सरी का करती थी। परमपूज्य कालूगणी के स्वर्गस्थ होने के पश्चात उनके मन में दृढ आस्था का भाव जागा और जिस दिन भाद्रवशुक्ला छठ को स्वर्गवास हुआ, उसके बाद हर शुक्ला छठ का वे उपवास करती। चमत्कार यह था कि उसके बाद उनके उपवास सहजता से होने लगे। उन्होंने अपने जीवन में छठ का उपवास कभी नहीं छोड़ा।

बहिर्विहार

उन्होंने मात्र आठ चातुर्मास अलग किए। उसमें दो चातुर्मास राज में गुरुकुल में रहते हुए किए। सं. 2029 में आचार्यश्री तुलसी ने उनको स्थायी रूप से सिंघाडा बनाकर बाहर भेजा। उन्होंने छह साल विहरण कर लोकोपकार किया। उनका अंतिम चातुर्मास जोजावर में था। वहां से राजलदेसर मर्यादा महोत्सव पर गुरुदर्शन का

उद्देश्य लेकर वे चली, पर सुजानगढ पहुंचते–पहुंचते वे अत्यधिक बीमार हो गई। वहां उनको चिकित्सा की अच्छी सुविधा उपलब्ध थी, पर स्वास्थ्य लाभ नहीं मिला। आखिर सं. 2036 ज्येष्ठ कृष्णा 3 को मध्याह्न के समय वे दिवंगत हो गईं।

वे दीक्षित हुई तब साध्वीप्रमुखा जेठांजी थीं और दिवंगत हुई तब साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी थी – इस प्रकार उन्हें पांच साध्वीप्रमुखा का युग देखने का मौका मिला। दिवंगत होने पर आचार्यश्री तुलसी ने उनकी संघनिष्ठा, गुरुभक्ति, अनुशासन, आचार, मर्यादा में सजगता तथा सहनशीलता की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए एक पद्य कहा –

साजनवासी ग्रामवासिणी सोना सती सुहाई।
शिशुवय संयम साझ संघ में लज्जावती कहाई।।

27. साध्वी मनोहरांजी सुजानगढ़ (826)

साध्वी मनोहरांजी सुजानगढ़ की बेटी और सुजानगढ़ की पुत्रवधु थी। उनका जन्म सं. 1958 द्वितीय श्रावण कृष्णा 12 को हुआ। उनका पीहर कोठारी परिवार में था और ससुराल .....परिवार में। उन्होंने भर यौवन में वैराग्य की दिशा में कदम बढ़ाए और अपने पति जयचंदलालजी के साथ अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के कर–कमलों से सं. 1979 भाद्रव शुक्ला 10 को बीकानेर में दीक्षा स्वीकार की। उस दिन आचार्यश्री कालूगणी ने एक साथ तेरह भाई–बहिनों को दीक्षित किया, उनमें नौ भाई और चार बहिनें थी। तेरापंथ में एक साथ तेरह दीक्षा होने का यह सर्वप्रथम अवसर था। दूसरा कीर्तिमान उस समय तेरापंथ में सर्वप्रथम साधुओं की संख्या 100 हुई।

साध्वी मनोहरांजी ने 38 वर्ष संयम साधना की। उन्होंने बड़ी तपस्या नहीं की, पर उपवास बेले अच्छे करती थी। चोले से आगे तपस्या नहीं की फिर भी अपने जीवन में 2277 दिन की तपस्या करली।

उपवास	–	2100	तेला	–	13
बेला	–	55	चोला	–	7

एक और कीर्तिमान

सं. 2017 तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह का ऐतिहासिक अवसर। तेरापंथ धर्मसंघ में अभिनव उल्लास। विकास के खुलते विविध क्षितिज। नित नए इतिहास का सृजन हो रहा था। तप, जप, स्वाध्याय ध्यान के साथ साहित्य–सृजन और नए–नए कार्यक्रमों से नए स्वस्तिक रचे जा रहे थे। तपस्या के क्षेत्र में तो नए प्रयोग हो रहे थे। एक दिन आचार्यप्रवर श्री तुलसी के मुखारविन्द से सहज शब्द निकले – इस चातुर्मास में अर्थात द्विशताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में अभी तक संथारा नहीं हुआ।

इस प्रसंग के दो चार दिन के बाद अचानक आश्विन शुक्ला सातम को प्रातः साध्वी मनोहरांजी ने बेले की तपस्या में अनशन स्वीकार किया। आश्विन शुक्ला आठम को आचार्यवर के मुखारविन्द से मंगल पाठ सुनती–सुनती दिवंगत हो गई। उन्हें मात्र 29 घंटों का संथारा आया। सचमुच वह सौभाग्यशाली साध्वी

थी। गुरु के वचन साकार किए और आचार्यवर के सम्मुख पण्डितमरण को प्राप्त हो गई। आचार्यवर ने उसी समय एक सोरठा कहा –

अनशन कियो अमन्द, द्विशताब्दी उपलक्ष में
मनोहरा सानन्द, जोड़ायत जयचंद की।।

तीसरा महत्त्वपूर्ण काम यह हुआ कि – साधु साध्वियों के दिवंगत होने पर जिस आडम्बर के साथ शोभायात्रा निकलती थी, उस दिन से उसमें एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। आश्विन शुक्ला नवमी को प्रातः उनकी शव–यात्रा निकाली गई। उसमें न बैंड बाजा था, न बैकुंठी, पर स्वर्णरजत के कलश की सजावट थी। न चांदी सोने की मुखवस्त्रिका थी और न रूपयों की उछाल। श्वेत वस्त्र निर्मित सादी बैकुंठी और सब कुछ सीधा सादा। यात्रा में सम्मिलित होने वाले भाई बहिन सभी श्वेत वस्त्र पहने थे। तेरापंथ के इतिहास में पहली बार महिला समाज ने यात्रा में भाग लिया तथा बैकुंठी को कंधा दिया।

28. साध्वी तनसुखांजी लाडनूं (827)

साध्वी तनसुखांजी का जन्म लाडनूं के गुन्देचा परिवार में सं. 1960 मिगसर कृष्णा 5 को हुआ। उनके पिता का नाम रामलालजी था। उनका विवाह तात्कालिक परम्परा के अनुसार बहुत छोटी अवस्था में लाडनूं निवासी भंवरलालजी चौपड़ा के साथ हुआ। उनके ससुर का नाम सूरजमलजी था। नियति का योग कहें या शुभकर्मोदय की परिणति कहें – ससुराल की दहलीज पर पांव रखते ही उनकी भावधारा में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। राग भाव पर वैराग्य ने अपना आसन जमा लिया। साज श्रृंगार की चाह ज्ञान की राह पकड़ने को उद्यत हो गई और विषय वासना की भावना कहां गायब हो गई, वे स्वयं भी नहीं समझ पाई। सुहाग रात में उन्होंने दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया। कुछ समय पश्चात उन्होंने अपनी भावना परिवार जनों के सामने रखी तो वे सब सहमत नहीं हुए। इसीलिए दीक्षा की अनुमति तत्काल नहीं दी। उनके पति भंवरलालजी भी नहीं चाहते थे कि वे दीक्षा लें। उन्होंने अनुकूल प्रतिकूल, कोमल, कठोर बनकर खूब परीक्षा ली। तनसुखांजी के दृढ़ निश्चय के सामने आखिर उनको झुकना पड़ा।

सं. 1979 भाद्रव शुक्ला दशमी के दिन बीकानेर की धरती पर अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के कर–कमलों से तेरह भाई बहिनों ने दीक्षा स्वीकार की। उनमें एक साध्वी तनसुखांजी थी। तेरापंथ धर्मसंघ में एक साथ तेरह दीक्षा होने का यह पहला अवसर था। दूसरी उल्लेखनीय बात उस दिन की यह रही कि तेरापंथ धर्मसंघ में पहली बार साधुओं की संख्या 100 (सौ) हुई। इन तेरह दीक्षाओं की काव्यात्मक प्रस्तुति देते हुए कालूयशोविलास में लिखा है –

बीकाणै उणियासिए सुद परव भाद्रव मास।
तेरह दीक्षा रो बण्यो एक नयो इतिहास।
मोती मुनि वास–निवास, रामसुख जाणी।
हस्ती–मत्तू सुत युत गणेश मालाणी।
मुनि आसकरण, जयचंद–जम्पती, रावत।
जंवरी पांचू सुजानगढ़–वासी साबत।
तनसुख, जतन, बालूजी राजगढ़ी है।
तेरह संख्या श्री सद्गुरु चरण चढ़ी है।।

दीक्षित होने क पश्चात उन्हें गुरुसन्निधि में रहने का मौका कम मिला। साध्वी पेफांजी के पास 19 वर्ष रहकर उन्होंने साध्वाचार का प्रशिक्षण प्राप्त किया। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करती हुई वे संयम यात्रा में आगे बढ़ती रहीं। छह वर्ष वे साध्वी तखतांजी बम्बू वालों के ग्रुप में रहीं। साध्वी तखतांजी ने लाडनूं में दीक्षा ली और लाडनूं में ही उनका स्वर्गवास हुआ। संयोग की बात है कि जिस महीने में जिस तिथि को दीक्षा ली, वही मास और तिथि स्वर्गवास के दिन थी। उसके बाद वे लगभग 25 वर्ष तक साध्वी टमकूजी (लाडनूं) के साथ रही। वे जहां भी रही, सबके लिए साताकारी बनकर रही और साझ की सब साध्वियों से सामंजस्य बनाकर रही। इसलिए वे सबकी प्रिय बनकर भी रही। साध्वी टमकूजी उनकी संसारपक्षीया भतीजी थी।

उनके व्यक्तित्व में कुछ नैसर्गिक विशेषताएं थीं। वे संयम साधना में जागरूक और अप्रमत्त रहतीं। समय का सदुपयोग बहुत अच्छा करतीं। वे स्वाध्याय रूचि वाली साध्वी थीं। प्रतिदिन स्वयं हजारों गाथाओं का स्वाध्याय करना उनके नियम जैसा था। उन्होंने छह हजार गाथाएं कंठस्थ की। नियमित चितारना करने के कारण कभी उन्हें विस्मृत नहीं होने दिया। शारीरिक दृष्टि से जब कभी अस्वस्थता का अनुभव होता तो वे स्वाध्याय में लीन बन जाती और शारीरिक व्यथा भूल जातीं। कहना चाहिए, स्वाध्याय उनके लिए औषधि थी। दूसरी बात बहिनों को स्वाध्याय करवाने में बड़ी तत्पर रहती। जो भी श्राविका उनके पास बैठती, उनको चितारणा करवाती, थोकड़े कंठस्थ कराती। स्वाध्याय चेतना के जागरण से उनकी वैचारिक स्वस्थता अन्तिम समय तक बनी रही क्योंकि आवश्यक कार्य से निवृत्त होते ही वे ज्ञान में रमण करने लग जाती, जिससे मानसिक उलझन उनके पास कम ही फटकती थी। वे सदा प्रसन्न रहती थीं।

उनके दिवंगत होने के कुछ दिन पहले ऑल इंडिया मेडिकल इस्टीटयूट् के कई डाक्टर जैन विश्वभारती में आचार्य तुलसी के पास आए। उन्होंने जैन धर्म और तेरापंथ धर्मसंघ के व्यवस्था पक्ष के विषय में विशद जानकारी की। वे लाडनूं सेवा केन्द्र को देखने आए और वृद्ध साध्वियों से बातचीत की। उन्होंने अस्सी वर्ष की, नब्बे वर्ष की साध्वियों को स्वाध्याय में लीन, प्रसन्न और स्वस्थ

देखकर आश्चर्य व्यक्त किया। उस समय साध्वी तनसुखांजी ने जितने स्पष्ट और स्वस्थ मानसिकता के साथ हर बात का उत्तर देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। वृद्ध साध्वियों को देखकर डाक्टरों ने कहा – हमने अनेक देशों में भ्रमण किया है और अनेक वृद्धाश्रम देखे हैं। प्रायः इतनी लम्बी उम्र तक पहुंचते–पहुंचते वृद्ध निराश, कुण्ठित और कम संज्ञान वाले हो जाते हैं। उनकी मस्तिष्कीय क्षमता क्षीण प्रायः हो जाती है, पर इन वृद्ध माताओं को देखकर तो हम आश्चर्य चकित हो गए हैं। लगता है, इनकी मानसिक प्रसन्नता, निर्मलता और सचेतनता का राज इनकी अपनी साधना है और संघीय व्यवस्था है।

स्वाध्याय के साथ–साथ मौन और तपस्या भी उनकी विशेष पहचान थी। वे प्रायः प्रतिदिन पांच घंटे मौन करतीं थीं। वे तपस्विनी थी। उन्होंने अपने जीवन में विशिष्ट तपस्या की। जैसे –

- लघुसिंहनिष्क्रीडित तप की उन्होंने पहली और दूसरी – दो परिपाटी की। पहली परिपाटी सं. 2009 में तथा दूसरी सं. 2011 में सम्पन्न की।
- दो बार धर्मचक्र की तपस्या
- एक बार प्रतर – तप
- एक बार पचरंगी तप
- परदेशी राजा के 12 बेले
- रसों के पांच तेले

उनके तप की समग्र तालिका निम्न प्रकार से है –

उपवास	–	3465	छह	–	2
बेला	–	251	सात	–	1
तेला	–	81	आठ	–	1
चोला	–	29	नौ	–	2
पंचोला	–	19			

साध्वी तनसुखांजी गुणग्राहक और मधुरभाषी साध्वी थी। बात करने की कला भी उनमें अद्‌भुत थी। कोई साध्वी उनका थोड़ा भी काम कर देती, तो वे उसे बहुत अधिक मानती और उनका धन्यवाद करने में बड़ी उदारता का परिचय

देती। उनकी बोली ऊंची और मधुर थी। ओछी जबान बोलने का तो सवाल ही नही था। किसी के मुंह से ओछा शब्द सुनते ही कहती – बाई! इयां नहीं बोलणो। कहने की बात बड़े सौहार्द के साथ मधुर भाषा में कह देती। उनकी वाक्पटुता का उल्लेख करते हुए आचार्यश्री तुलसी ने उनके विषय में दोहा कहा –

सती तनसुखां मनसुखां बोलै मीठा बोल।
वय नयासी वर्ष में, संजम सझे सतोल।।

उनका दृष्टिकोण विधायक था, अतः वे सदा प्रसन्न और आत्मस्थ रहती थी। एक बार लाडनूं सेवा केन्द्र में जब स्थिरवासी थी, अचानक गिर गई। उनके ललाट में काफी चोट आई, खून बहने लगा। साध्वियों ने तत्काल प्राथमिक चिकित्सा की। यद्यपि उस समय उनके दर्द बहुत अधिक था, पर उन्हें अपना दर्द नहीं, साध्वियों की सेवा अधिक दिखाई दे रही थी। वे बार–बार एक बात दोहराती रही – म्हारै असाता रो के काम, छोटी छोटी सत्यां री सेवा मनै घणी साता पहुंचावै। इस प्रकार अनेक विशेषताओं से सम्पन्न साध्वी तनसुखांजी शारीरिक और मानसिक – दोनों दृष्टियों से स्वस्थ रही और उनकी संयम साधना समुज्ज्वल रही।

साध्वी तनसुखांजी सौभाग्यशालिनी थीं। उन्हें इतिहास के दुर्लभ क्षण देखने का अवसर मिला। तेरापंथ धर्मसंघ में अग्रगामी साध्वियों के तथा अनुगामी सभी साध्वियों के लिए वृद्ध साध्वियों की सेवा करना अनिवार्य है, यह तेरापंथ का अपना विधान है। पहले सेवा केन्द्र एक ही था। अब पांच सेवा केन्द्र हैं। संघ की प्रत्येक साध्वी को जीवन में तीन वर्ष की अनिवार्य सेवा देनी आवश्यक है। पर सन् 1991 में आचार्यश्री तुलसी ने एक नए इतिहास का सृजन किया। उन्होंने उस वर्ष लाडनूं सेवाकेन्द्र का दायित्व साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी को दिया। तेरापंथ में इससे पहले की सात साध्वीप्रमुखाओं को यह अवसर नहीं मिला, जो साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी को मिला। इस नए इतिहास का सृजन साध्वी तनसुखांजी ने अपनी आंखों से देखा और लगभग बारह महीने तक साध्वीप्रमुखाजी के सान्निध्य का पूरा–पूरा लाभ उठाया। ज्योही चाकरी का समय सम्पन्न हुआ अर्थात् फाल्गुन कृष्णा 5 को चाकरी पूरी होती है। फाल्गुन कृष्णा 4 को रात्रि में साध्वी तनसुखांजी की संयम यात्रा सानन्द सम्पन्न हो गई। उनकी

मृत्यु बड़ी सहज और सुखद हुई। रात्रि के नौ बजे तक स्वाध्यान करने के पश्चात उन्होंने सबके साथ बात की और नौ बजे अनन्त में विलीन हो गई।

29. साध्वी दीपांजी, सिरसा (960)

जन्म : वैराग्य और दीक्षा

साध्वी दीपांजी का जन्म सं. 1969 में पोष शुक्ला अष्टमी को सिरसा शहर में हुआ। तब सिरसा पंजाब प्रांत में था, वर्तमान में यह हरियाणा प्रांत में है। उनके पिता का नाम केवलचंदजी नवलखा था। वे छह भाई बहिन थे, उनमें उनका दूसरा नम्बर था। संयोग की बात कि उनसे बड़े भाई धनराजजी और छोटे भाई चन्दनमलजी के मध्य वे लाडली बहिन थी और तीनों ने ही संयम जीवन स्वीकार कर कुल का गौरव बढ़ाया। यद्यपि वह युग स्त्री शिक्षा का नहीं था, पर उनके पिताश्री ने उनको सात वर्ष की अवस्था में विद्यालय में प्रवेश दिलाया। उनका नाम भंवरी था। वे शारीरिक दृष्टि से सुन्दर और सहज प्रतिभा सम्पन्न थी। इसलिए स्कूल के अध्यापक, अध्यापिकाओं का ध्यान उन पर केन्द्रित होना स्वाभाविक था। स्कूल के टीचर्स उनको भंवरी न कहकर भोली नाम से पुकारते थे। बालिका की ग्रहणशीलता और स्फुरणशीलता को देखकर राजस्थानी भाषाविद अध्यापक ने कहा – इसका भोली नाम किसने रख दिया, यह तो समझदार और बुद्धिमान लड़की है।

शिक्षा के साथ–साथ धार्मिक संस्कार उन्हें अपनी दादी मां और पिताजी से मिले। उनकी माताजी भी श्रद्धाशील महिला थी। जब वे दश वर्ष की थी, एक बार उनके पिताजी सपरिवार अष्टमाचार्यश्री कालूगणी की उपासना करने के लिए बीदासर गए। अचानक उनकी माताजी को भयंकर बुखार आया। बुखार ने न्यूमोनिया का रूप ले लिया और वे वहीं काल–कवलित हो गईं। नवलखा परिवार के लिए और विशेष रूप केवलचंदजी और उनके बच्चों के लिए बड़ा कठिन समय था। अप्रत्यासित घटना ने सबको अन्तर तक हिला दिया। ऐसे समय में गुरु की प्रेरणा ने व्याकुल और व्यथित मन को अमन चैन की दिशा दी और वैराग्य का बोध पाठ पढ़ाया। केवलचंदजी ने निश्चय कर लिया – आत्मसाधना के पथ पर बढ़ने का। ज्येष्ठपुत्र भी पिता के निर्णय के साथ हो गया। उसने अपनी बहिन को दीक्षा लेने की प्रेरणा दी पर बहिन तो मां की याद में पागल–सी बनी हुई थी। उसकी आंखों के आंसू ही नहीं टूट रहे थे। बीदासर में एक रात मां की स्मृति करते–करते भंवरी निद्रालीन हो गई। स्वप्न में उसे अपनी मां दिखाई दी और कहा – "बेटी! रो मत। मेरा मोह मत कर, धैर्य रख।

तू भी संयम लेने के लिए तैयार हो जा। देख – तेरे पिताजी, तुझे धन, चन्दन, तुम चारों को दीक्षा आएगी पर दादीजी को नहीं आएगी" कहकर अदृश्य हो गई। स्वर्गीय माता की प्रेरणा ने भंवरी के चंचल मन को स्थिर बना दिया और भाई के साथ दूसरे दिन वे भी पहुंच गई गुरुचरणों में दीक्षा की प्रार्थना करने के लिए।

आचार्यवर ने बालिका के वैराग्य की परीक्षा करने के बाद हस्तलिखित पत्र दिखाते हुए पूछा – क्या तुमको "पाना" पढ़ना आता है? बालिका भंवरी "पाना" शब्द को समझ नहीं सकी पर हार्द समझ गई और बोली – गुरुदेव! पानां तो क्या होता है, मैं नहीं जानती, पर पोथी (पुस्तक) तो धड़ाधड़ पढ़ सकती हूँ। स्पष्ट और आत्मविश्वास से भरा उत्तर सुन वहां उपस्थित सभी लोग मुस्कराने लगे। पूज्य कालूगणी ने तत्काल एक प्रकाशित पुस्तक मंगाकर बालिका को पढ़ने के लिए दी। भंवरी ने निश्छल भाव से निःसंकोच अस्खलित रूप से पुस्तक पढ़कर सुना दी। फिर लोगस्स का पाठ सुना, उसका उच्चारण भी स्पष्ट था। आचार्यवर ने संतोष व्यक्त करते हुए कहा – पढ़ने का लहजा स्पष्ट है।

मां को दिवंगत हुए पांच दिन हुए थे। भाई धनराजी को और बहिन भंवरी को आचार्यवर ने श्रमण प्रतिक्रमण सीखने की अनुमति प्रदान की। दोनों भाई बहिन ने दीक्षा ग्रहण करने तक दादी मां के साथ आचार्यवर की सेवा में रहने का निश्चय कर लिया। सिरसा जाने के पश्चात उनके अनुज भाई चन्दन का मन भी दीक्षा लेने को उतावला हो गया। वह भी पिता के सामने दिर–रात एक ही रटन लगाता कि मैं अपनी बहिन और भाई के साथ ही दीक्षा लूंगा। पुत्र की तीव्रभावना देखकर उसे लेकर केवलचंदजी पुनः बीदासर श्री कालूगणी के दर्शन करने आए। उस समय आचार्यश्री कालूगणी चाड़वास में प्रवास कर रहे थे। पिता के आग्रहपूर्ण निवेदन पर बालक चन्दन को भी आचार्यवर ने दीक्षा की अनुमति प्रदान की।

<u>दीक्षा और शिक्षा</u>

पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार सं. 1980 प्रथम ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा के दिन तीनों भाई बहिन की दीक्षा पूज्य कालूगणी के कर–कमलों से सुजानगढ़ में सानन्द सम्पन्न हुई। बहिन भंवरी का नाम रखा गया – साध्वी दीपाजी।

साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी की देखरेख में साधु जीवन की चर्या, साधना और ज्ञानाराधना का क्रम प्रारंभ हुआ। साध्वी दीपाजी ने थोड़े समय में दशवैकालिक सूत्र कंठस्थ कर कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया। पूज्य कालूगणी ने उनकी प्रतिभा को देखकर सारस्वत व्याकरण का अध्ययन प्रारंभ करवाया। साध्वी समाज में व्याकरण शिक्षण का वह प्रवेश काल था। चूरु चातुर्मास में साध्वियों ने सारस्वत व्याकरण की साधनिका प्रारंभ की। उनमें एक साध्वी दीपांजी थी। अध्ययन–काल में एक दिन आचार्यवर ने अध्ययन–रत छोटे साधु साध्वियों को हरेः शब्द को सिद्ध करने के लिए कहा। साध्वी दीपांजी ने उसे सिद्ध किया, तथा एक–एक सूत्र का प्रमाण सुनकर आचार्यवर को प्रसन्नता हुई।

उनके अध्ययन क्रम को गति देने में एक निमित्त बनी उनकी संसार–पक्षीया स्वर्गीय माताजी। चूरु का ही प्रसंग है। एकांत में बैठी साध्वी दीपांजी सूत्र–स्वाध्याय कर रही थी तभी उन्हें एक सुन्दर बालक उज्ज्वल परिधान में दिखाई दिया और बोला – लो यह एक पत्र, इसे याद कर लो, तुम्हें सब कुछ याद हो जाएगा। साध्वी दीपाजी अचानक अद्‌भुत–सा दृश्य देखकर विस्मित हो गई और सोचने लगी – यह बालक कौन है? तभी उस दिव्याकृति ने कहा – मैं तुम्हारी मां हूँ, दर्शन करने आई हूँ और तुम्हारी दादीजी को सेवा की प्रेरणा देकर यहां आई हूँ.....। इतना कहकर वह आकृति अन्तर्धान हो गई। एक दिन उनका ऊहापोह में व्यतीत हो गया। दूसरे दिन उनकी दादी मां दर्शन करने पहुंच गई। जब उन्हें अपनी दादी मां से ज्ञात हुआ कि तुम्हारी मां का दरसाव हुआ और उन्होंने दर्शन की प्रेरणा दी, इसलिए तत्काल यहां आने का मन बना लिया। दादी मां की बात सुन साध्वी दीपांजी को पूरा विश्वास हो गया कि मुझे जो आभास हुआ उसकी प्रामाणिकता निस्सन्देह है। जब कभी वे इस बात की स्मृति करती, वे बताती – पहले तो मेरे मन में एक भय व्याप गया पर कुछ समय पश्चात मुझे लगा मेरी अभय वृत्ति का विकास हो गया।

<u>सेवा का सौभाग्य : विकास का वरदान</u>

सं. 1982 का वर्ष साध्वी दीपांजी के जीवन में एक शुभ मोड़ लेकर आया। उस वर्ष आचार्यवर का चातुर्मास बीदासर में था। उस समय साध्वी दीपांजी भी आचार्यश्री के साथ थीं। साध्वी दीपांजी को उस चातुर्मास में मातुश्री छोगांजी के पास रहने का सौभाग्य मिला। गुरुकृपा से मातुश्री की सेवा का

वरदान साध्वी दीपांजी के लिए जीवन का वरदान साबित हुआ। वे सोलह वर्ष तक मातुश्री के पास बीदासर रहीं और जीवन का सर्वतोमुखी विकास किया। शैशव अवस्था, प्रतिभा सम्पन्नता और अनुकूल प्रेरणादायी वातावरण का सुखद संयोग उनको मिला, जिससे उन्होंने व्याख्यान, आगम–अध्ययन, तत्त्वज्ञान व्याकरण आदि में विशेष दक्षता प्राप्त की।

उन्होंने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प कंठस्थ किया। आगम बत्तीसी का वाचन किया। भ्रमविध्वंसन तथा तात्त्विक ग्रन्थों का अध्ययन करने का उन्हें अवसर मिला। दीक्षा के पश्चात बीस वर्षों तक वे नियमित एक हजार गाथाओं का स्वाध्याय करतीं। उसके पश्चात शारीरिक अस्वस्थता के कारण उनका स्वाध्याय क्रम अव्यवस्थित हो गया।

संस्कृत भाषा में उनकी सहज रूचि थी और भ्रातृ–युगल की प्रेरणा से उसे पल्लवित होने का अवसर मिला। जब–जब भ्रातृयुगल का सान्निध्य उपलब्ध होता वे संस्कृत के गंभीर ग्रंथों का वाचन करतीं, जिससे संस्कृत भाषा का अध्ययन उनका अच्छा बन गया। वे उत्तराध्ययन की टीका, षड़दर्शन–समुच्चय एवं उसकी टीका, स्याद्वाद मंजरी जैसे अनेक ग्रन्थों का अध्ययन अपनी सहगामी साध्वियों को कराती रहती थीं। सारस्वत व्याकरण, कालुकौमुदी, भक्तामर, शान्तसुधारस, सिन्दूरप्रकर, कल्याणमंदिर, षड़दर्शन समुच्चय आदि संस्कृत ग्रन्थ उन्हें अस्खलित कंठस्थ थे।

तात्त्विक ग्रन्थों की श्रृंखला में उन्हें पच्चीस बोल, जाणपणा के पच्चीस बोल, हेमराजजी स्वामी कृत पच्चीस बोल, पाना की चर्चा, लघुदण्डक, इक्कीस द्वार, तेरहद्वार, बावन बोल, संजया, नियंठा, गतागत, गमा, खण्डाजोयण, इकतीसद्वार आदि याद थे। रामचरित्र, नलदमयंती आदि 80 व्याख्यान (छोटे बड़े) उन्होंने कंठस्थ किए। उनको तत्त्वज्ञान की गंभीरता में बीदासर के श्रावक श्राविकाओं का महत्त्वपूर्ण योग मिला। उस समय बीदासर में तत्त्व के अच्छे जानकार श्रावक श्राविकाएं थी। उनके साथ तत्त्वचर्चा करने का उन्हें बार–बार अवसर मिलने से धारणाएं स्पष्ट होती रही। व्याख्यान में आगम, टीका और टब्बे को आधार लेकर साध्वी दीपांजी बीदासर के श्रावकों को संतुष्ट बना देती थीं। नवयुवनितयों को तत्त्वज्ञान सिखाने में वे विशेष जागरूक रहती थीं, यही कारण था कि बीदासर की कई बहिनें ज्ञानार्जन के क्षेत्र में उनका आभार मानती थी।

तत्त्वज्ञान के साथ–साथ संगीत कला में भी वे दक्ष थीं। रामायण, चंद–चरित्र, हरिवंश, पाण्डव चरित्र, जयजश दीपजस आदि प्राचीन काव्य ग्रन्थों की राग–रागनियां प्रामाणिक रूप से उनकी धारी हुई थी। उनकी कण्ठकला भी मधुर थी। श्रोता उनकी गायन कला से भी अच्छे प्रभावित होते।

अग्रगण्या के रूप में

सं. 1998 में जब मातुश्री छोगांजी ने अनशन पूर्वक स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया, आचार्यश्री तुलसी ने उस समय उनकी सेवा में रहने वाली साध्वी खूमांजी, साध्वी निजरकुमारीजी और साध्वी दीपांजी को अग्रगण्या के रूप में वन्दना कराई। साध्वी दीपांजी उस समय मात्र अट्ठाइस वर्ष की थी और उनमें सबसे छोटी थीं। वे पहला चौमासा करने खिंवाड़ा (मारवाड़) गई, उस चातुर्मास में वे संग्रहणी रोग से आक्रान्त हो गई। उसके बाद जीवन भर वह बीमारी उनके साथ रही, जिससे दूर देशों की यात्राएं नहीं कर पाईं। उन्होंने मारवाड़, मेवाड़, थली, हरियाणा और पंजाब में विहरण किया।

निर्भयता की नजीर

भारत पाकिस्तान के विभाजन के समय तेरापंथ धर्मसंघ के साधु–साध्वियों के लिए पंजाब नया क्षेत्र था। उन्हीं वर्षों में पंजाब को कार्यक्षेत्र बनाया था, इसलिए उस क्षेत्र में साधु–साध्वियों की शक्ति का अच्छा नियोजन किया जा रहा था। साध्वी दीपांजी का चातुर्मास संगरूर के लिए घोषित था। वे विहार करती–करती टोहाना पहुंची थी कि हिन्दू–मुस्लिम दंगों की तीव्र संभावना बन गयी। स्थिति की विकटता को देखकर आचार्यवर ने सभी सिंघाडों को राजस्थान में वापिस बुला लिया। साध्वी दीपांजी जब हिसार पहुंची, भिवानी के श्रावकों ने आकर निवेदन किया कि भिवानी में साध्वी गौरांजी प्रवास कर रही है, उनकी सहगामी साध्वी उपद्रव–ग्रस्त है। वे वहां से विहार करने में असमर्थ हैं। देश का वातावरण अत्यन्त भयावह है, अतः वहां अकेले सिंघाड़े का रहना चिन्तनीय है। इसलिए आप वहां पधार जाइए। संघीय अपेक्षा को ध्यान में रखकर साध्वी दीपांजी गुरु–आज्ञा से भिवानी पहुंच गई। साहस और निर्भयता की प्रतीक साध्वी दीपांजी ने सबसे पहले उपद्रव ग्रस्त साध्वी की आध्यात्मिक–चिकित्सा करने का प्रयत्न किया। गुरु–कृपा से जप आदि के प्रयोग से उपद्रव से आक्रान्त साध्वी स्वस्थ बन गई।

भिवानी के श्रावकों ने स्पष्ट शब्दों में निवेदन किया – अभी तक चातुर्मास प्रारंभ होने में देरी है। यदि आपकी मानसिकता हो तो हम आचार्यश्री से चातुर्मास के लिए निवेदन करें? साध्वी दीपांजी ने दृढ़ता भरे स्वरों में कहा – मैं नितान्त अभय हूँ। देव गुरु और धर्म की शरण में रहते हुए मुझे किंचित भी भय नहीं है। गुरुदेव जैसा उचित समझे, मुझे जो भी आदेश देंगे, शिरोधार्य है। श्रावक समाज का हौसला साध्वीजी की दृढ़ता से बढ़ गया और वे अपनी जिम्मेदारी पर चातुर्मास की अनुज्ञा ले आए।

श्रावण का महीना प्रारंभ हुआ। जहां एक ओर त्याग तपस्या का वातावरण बनने लगा तो दूसरी ओर हिन्दू मुस्लिम दंगों ने भयानक मोड़ ले लिया। दोनों सम्प्रदाय के लोग आमने–सामने आ डटे। भीषण विग्रह की संभावना ने समूचे शहर को दहशत के आगोश में ले लिया। मुसलमानों ने तीन महत्त्वपूर्ण स्थानों पर मोर्चा बन्दी करली। उन मोर्चों को तोड़ने के लिए हजारों–हजारों हिन्दू लोहड़ बाजार में एकत्रित हो गए। वहीं सतियों का प्रवास था। साध्वी दीपांजी ने स्थिति की विकटता को भांप लिया था फिर भी निर्भीक बनकर हिन्दूओं के बीच जा खड़ी हुई और मंगल पाठ सुनाते हुए कहा – तुम्हें धर्म की शरण है। जहां धर्म होता है, वहां सदा विजय होती है। कुछ ही समय पश्चात परस्पर भीषण संघर्ष प्रारंभ हो गया, परन्तु न जाने क्या दैविक चमत्कार हुआ कि हिन्दुओं के सारे दांव सही पड़ते गए और सायं 5 बजे तक भयंकर लड़ाई के बाद विजय हिन्दुओं की हुई। लगभग दस हजार मुसलमान उनकी गिरफ्त में आ गए।

उस भयानक दृश्य को देखकर साध्वी गौरांजी ने एक बार साध्वी दीपांजी से कहा – संयोगवश हिन्दुओं की जीत होने से हम सुरक्षित बच गए। अगर प्रतिद्वन्द्वी विजयी बन जाते तो हमारी क्या स्थिति होती? साध्वी दीपांजी ने वीरत्व जगाते हुए कहा – जब सत्य शील हमारे साथ है, तो ऐसा अवसर आएगा ही क्यों? यदि नियति योग से ऐसे क्षण जीवन में आ जाए तो हमें धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान देने के लिए तैयार रहना चाहिए। हमारे सामने महासती धारिणी का आदर्श है।

उस समय वहां डिप्टी कमिश्नर जैन था। इसलिए कर्फ्यू में उन्होंने शौचार्थ और भिक्षार्थ जाने आने की अच्छी व्यवस्था कर दी। श्रावक समाज

साध्वियों की सुरक्षा में जी जान से समर्पित था ही, वे साध्वियों की जिम्मेदारी से सार संभाल कर रहे थे। यद्यपि संघर्ष पूरे चातुर्मास में चला, शहर के बाहर का दृश्य तो इतना हृदय द्रावक बन गया कि जहां देखो लाशों के ढ़ेर दिखाई देते थे।

अनुकूल–प्रतिकूल हवाओं से अप्रतिहत रहकर साध्वियों ने चातुर्मास सम्पन्नकर राजलदेसर में आचार्यवर के दर्शन किए। उस समय आचार्यवर ने कहा – संघर्ष की उस विकट बेला में मुझे लगभग दस दिनों तक सतियों के बिलकुल समाचार नहीं मिले। कभी–कभी रात में नींद उड़ जाती थी। फिर एक छोटी–सी चिट्ठी मिली तब कहीं जाकर विश्वास हुआ कि सतियां जीवित तो है।

साध्वी दीपांजी ने निवेदन करते हुए कहा – गुरुदेव! आपकी असीम कृपा से भिवानी में संघर्ष से विषाक्त बने वातावरण में एक दिन भी भूख व नींद निकालने का मौका नहीं आया। हम तो निर्भय और निश्चिंत थीं क्योंकि चिन्ता स्वयं गुरु कर रहे थे। भिवानी के सच्चे संघभक्त, श्रद्धानिष्ठ, सेवानिष्ठ श्रावक हैं। इन्होंने हमारी जो सेवा और संभाल की, वह बेजोड़ है। सचमुच इनकी संघभक्ति इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णिम अक्षरों से लिखने जैसी है।

भिवानी के श्रावकों ने भी साध्वीजी के धैर्य, हिम्मत और साहस की सराहना करते हुए कहा – गुरुदेव! धर्म के प्रताप से हमारी भिवानी बच गई। यह भिक्षु शासन का प्रताप है, शासनपति का प्रभाव है, इन सतियों की साधना का असर है।

<u>निस्पृह मनोवृत्ति</u>

जब साध्वी दीपांजी मातुश्री छोगांजी की सेवा में बीदासर प्रवास कर रही थी, एक दिन गोचरी जा रही थी। रास्ते में बहुमूल्य हीरों का कंगन उनके पैर से टकराया। देखा तो धूलि में दबा कंगन दिखाई दिया। वे उसे अनदेखा कर आगे बढ़ गई। साथ वाली साध्वी ने उसे देख लिया, उन्होंने कहा – देखो! कितना मूल्यवान हीरों का कंगन है, लगता है किसी का खो गया। तत्काल साध्वी दीपांजी ने कहा – हमें इससे क्या प्रयोजन है। हमारे लिए धूल और कंगन दोनो समान है। जिस गांव में जाना ही नहीं, उस गांव का रास्ता क्यों पूछना चाहिए। हम अपरिग्रही है, अतः हमें निस्पृह वृत्ति रखनी चाहिए।

आज बोधपाठ मिल गया

एक बार वे विहार करती हुई मेवाड़ के मन्दार गांव में पहुंची। वहां उन्हें ठहरने के लिए एक मंदिर बताया गया। वहां एक बाबा रहता था, इसलिए साध्वी दीपांजी ने वहां ठहरना उचित नहीं समझकर उस स्थान में रहने का निषेध कर दिया। मंदिर के सामने एक श्रद्धालु भाई का मकान था, साध्वियों ने उनको ठहरने के लिए पूछा। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में इन्कार कर दिया। यद्यपि मकान खाली था। साध्वियां एक घंटे तक स्थान की गवेषणा करती रही, पर स्थान उपलब्ध नहीं हुआ। आखिर साध्वियों ने पुनः उसी भाई से मकान न देने का कारण जानना चाहा। उसने रहस्य खोलते हुए कहा – मैं आपको मकान दे दूंगा तो आप मेरे घर से रोटी पानी नहीं लेंगी.....। साध्वियों ने आहार से अधिक स्थान दान का महत्त्व समझाया, तब उसने स्थान दे दिया।

संयोग की बात थी कि मकान मालिक उसी दिन भयंकर बुखार से पीड़ित हो गया। सारी रात अत्यधिक बेचैनी एवं पीड़ा में बिताई, दूसरे दिन धीरे–धीरे ज्वर शान्त हुआ। स्वस्थ होने पर उस भाई ने भूल महसूस करते हुए कहा – जिस प्रकार भगवान ऋषभ को बेल के मुख पर झींकी बनाने का दुष्परिणाम बारह वर्ष तक भोगना पड़ा उसी प्रकार एक घंटा यानि साठ मिनिट मैंने साध्वियों को खड़ा रखा, स्थान नहीं दिया, उसका दुष्परिणाम साठ घड़ी यानि एक दिन रात भयंकर वेदना के साथ भोगना पड़ा। आज मुझे यह बोध पाठ मिल गया कि साधु साध्वियों को आहार की तरह स्थान देना भी महत्त्वपूर्ण है।

साध्वी दीपांजी ने उपवास से लेकर अठाई तक तपस्या की।

उपवास	–	608	छह	–	1
बेला	–	36	सात	–	1
तेला	–	4	आठ	–	1
पांच	–	1			

उन्होंने दस प्रत्याख्यान लगभग पच्चीस बार किए।

बेजोड़ शारीरिक कष्ट सहिष्णुता

अस्वस्थ अवस्था में उनकी कष्ट सहिष्णुता गजब की थी। अन्तिम चातुर्मास उनका अबोहरमंडी में था। उस समय वे कई महीनों से भयंकर रोगों

से आक्रान्त हो गई। संग्रहणी के साथ पीलिया और जलोदर जैसी भयावह बीमारियों ने उन पर आक्रमण कर दिया। ऐसी कष्टपूर्ण शारीरिक स्थिति में उन्हें अपवादिक चिकित्सा पथ स्वीकार नहीं था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा – साधु जीवन की सीमा में रहते हुए जो भी चिकित्सा हो सकती है, वह मुझे स्वीकार है, पर उसके अतिरिक्त साधु के लिए अविहित चिकित्सा करवाना मैं नहीं चाहती।

उन्होंने शान्त भाव से असात वेदनीय कर्म से संघर्ष कर खूब कर्म निर्जरा की और सहगामी साध्वियों ने सेवा कर खूब समाधि उपजाने का प्रयत्न किया। संतुष्टि और समाधि के साथ संयम साधना में लीन रहने वाली उस महान आत्मा ने सं. 2029 मृगसर कृष्णा 8 के दिन दस बजकर 16 मिनिट पर अल्पकालीन अनशन के साथ इस औदारिक शरीर को सदा–सदा के लिए छोड़ दिया।

साध्वी दीपांजी निर्भयता, साहस, धैर्य, वाकचातुर्य, तटस्थता, संघ–संघपति के प्रतिनिष्ठा आदि गुणों के साथ 50 वर्ष संयम साधना कर तेरापंथ धर्मसंघ में अमर बन गई।

आचार्य तुलसी ने उनकी स्मृति सभा में कहा – साध्वी दीपांजी बहुत अच्छी साध्वी थी। तत्त्व की पक्की जानकार थी। व्याख्यान बहुत सुन्दर देती थी। अपने जीवन में उन्होंने बहुत अच्छी प्रगति की और अन्त में समाधि मृत्यु को प्राप्त कर लिया।

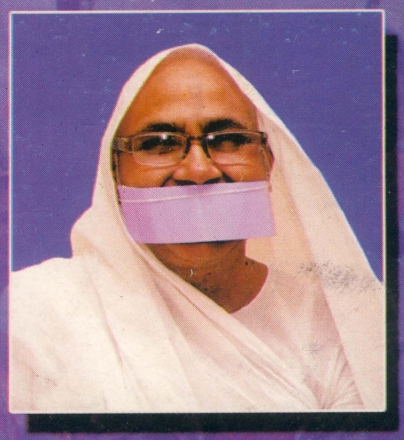

साध्वी कल्पलता

जन्म : वि. सं. २००५, वैशाख कृष्णा २, लाडनूं (राजस्थान)

दीक्षा : वि. सं. २०२३, कार्तिक कृष्णा ८, बीदासर (राजस्थान)

सेवा-निकाय-व्यवस्थापिका : वि. सं. २०३८, माघ शुक्ला ७, गंगाशहर (राजस्थान)

प्रकाशित कृतियां :

- आस्था के चमत्कार, भाग-१
- आस्था के चमत्कार, भाग-२
- आस्था के चमत्कार, भाग-३
- इतिहास के नूपुर
- संस्मरणों का वातायन